Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन

(मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पीएच०डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो० प्रभात कुमार

प्रोफेसर

शोधार्थी

[illegible]

पंजीकरण सं० [illegible]

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय),

हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 249[illegible]

[illegible]

... Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन

(मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पीएच०डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो० प्रभात कुमार
प्रोफेसर

शोधार्थी

गौरव सिंह
पंजीकरण सं –19042

प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय),
हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 249404

2023

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन

(मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पीएच०डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो० प्रभात कुमार

प्रोफेसर

शोधार्थी

गौरव सिंह

पंजीकरण सं –19042

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय),

हरिद्वार, उत्तराखण्ड, 249404

2023

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CANDIDATE'S DECLARATION

I hereby declare that the work which is being presented in the thesis entitled **"राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन (मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)"**, in fulfillment of requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy in Ancient Indian History, Culture and Archaeology of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar is an original work carried out by during a period from .... to .... under the supervision of **Prof. Prabhat Kumar**, Professor, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

The matter presented in the thesis has not been submitted by me for the award of any degree/diploma of this University or any other University/ Institute. I have properly acknowledged the material collected from the secondary sources wherever required. I solely own the responsibility of Ph. D. thesis as per prescribed norms in the research rules & regulation of the University/UGC.

Date : ....

(GAURAV SINGH)

Research Scholar

Enrolment No 19042

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

SUPERVISOR'S CERTIFICATE

This is to certify that Mr. **Gaurav Singh** has worked under my supervision on **"राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन (मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)"**, for his Degree of Doctor of Philosophy in Ancient Indian History, Culture and Archaeology of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar. He fulfills the eligibility criteria for submission of Ph.D. thesis as per research rules & regulation of the University/UGC. It is also certified that the candidate has incorporated the suggestions given in the pre-submission presentation before DRC.

The candidate has fulfilled the necessary residency requirements for full time/part time Ph.D. Programme as per rules of the University.

I recommend the thesis for evaluation for the award of the degree of Doctor of Philosophy of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

Date : 23-9-23

(Prof. Prabhat Kumar)
Supervisor

PROF. PRABHAT KUMAR
Professor
Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology
Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar, 249404

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PROF. PRABHAT KUMAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

H.O.D.'S CERTIFICATE

The Ph.D. thesis submitted by Mr. **Gaurav Singh** in the subject of Ancient Indian History, Culture and Archaeology under the supervision of **Prof. Prabhat Kumar** is hereby forwarded for evaluation for the award of the Degree of Doctor of Philosophy of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

It is also certified that the candidate has made pre-submission presentation before DRC and fulfills necessary residency requirement of full time Ph. D. Programme as per the rules of the University.

Date : 23-9-23

(Prof. Prabhat Kumar)
Head of Department

Head
Department of Ancient Indian History,
Culture and Archaeology
Gurukul Kangri Vishwvidhyalaya, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड
Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar,
Uttarakhand, 249404

CERTIFICATE OF PLAGRISM CHECK

1.	Name of the Research Scholar	:	**Gaurav singh**
2.	Course of Study	:	**Ph. D.**
3.	Title of thesis	:	**राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन (मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)**
4.	Name of the Supervisor	:	**Prof. Prabhat Kumar**
5.	Department / Subject	:	**Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology**
6.	Acceptable Maximum Limit	:	**10%**
7.	Percentage of similarity of Contents Identified	:	**0%**
8.	Software Used	:	**URKUND (D173626348)**
9.	Date of verification	:	**09-09-2023**

23-9-22

Signature of the supervisor **Signature of the Scholar**

22-9-23

Head of the Department
(Seal)

Head
Department of Ancient Indian History,
Culture and Archaeology
Gurukul Kangri Vishwvidhyalaya, Haridwar

University Coordinator
Shodhganga

03/10/23

Co-ordinator, Shodhganga
Gurukul Kangri (Deemed to be University)
Haridwar - 249404 (Uttarakhand)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Ouriginal
by Turnitin

Document Information

Analyzed document	गौरव सिंह - राजप��त कालीन स्थापत्य कला में मंदिर ��वं मूर्तियों का अध्ययन.docx (D173626348)
Submitted	9/9/2023 11:35:00 AM
Submitted by	Sachin Kaushik
Submitter email	9927884477sk@gmail.com
Similarity	0%
Analysis address	9927884477sk.gkv@analysis.urkund.com

Sources included in the report

Entire Document

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभार

"ओउम् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव यद् भद्रन्तन्नऽआसुव।।"

(यजुर्वेद, 30/3)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "राजपूत कालीन स्थापत्य कला में मन्दिर एवं मूर्तियों का अध्ययन (मुरैना जनपद के विशेष सन्दर्भ में 8वीं-12वीं शताब्दी तक)" के प्रति मेरी भावनाओं को उद्वेलित करने के निमित्त मात्र एवं शोध के प्रथम प्रेरणास्त्रोत के एकाकी आधार पर्यवेक्षक श्रद्धेय पूज्य गुरुवर्य **प्रोफेसर प्रभात कुमार**, विभागाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार, जिन्होंने न केवल विषय में मेरी अभिरूचि का सृजन किया बल्कि उनके कुशल निर्देशन एवं विद्वतापूर्ण स्फूर्तिदायिनी प्रेरणा की स्नेहिल छाया में यह शोध प्रबन्ध पूर्णता को प्राप्त हुआ। मैं उनके पादपद्मों पर मौन भाव से ही आत्मिक श्रद्धा की पुष्पांजलि अर्पित करता हूँ, क्योंकि जिस प्रकार से उन्होंने मेरे शोध-पथ के "अथ" से "इति' तक अपने ज्ञान-प्रकाश से आलोकित किया उसे शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है, इस हेतु मैं परम पूज्य गुरुदेव को हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। साथ ही गुरुमाता **डॉ० अनीता स्नातिका** जी के चरणकमलों में भी हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। सम्पूर्ण शोध यात्रा के दौरान आपके प्रेरणादायी व्यक्तित्व, आशीर्वचनों एवं स्नेह-वात्सल्य को प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहा है। अपने पुत्र की भांति ही आपने मुझे सदा सन्मार्गी होने की शिक्षा प्रदान की है। जिसका लाभ न केवल शोध कार्य के दौरान अपितु जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर मुझे मिल रहा है।

तदुपरांत मैं आदरणीय गुरुवर **डॉ० दिलीप कुमार कुशवाहा** (एसोसिएट प्रोफेसर), **डॉ० हिमांशु पंडित** (अस्सीस्टेंट प्रोफेसर), **डॉ० मनोज कुमार** (क्यूरेटर, संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय), **डॉ० सत्येंद्र सिंह** (असिस्टेंट क्यूरेटर, संग्रहालय, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय) के प्रति भी अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोधकार्य हेतु अपनी रचनात्मक प्रेरणा एवं विषय विशेषज्ञता से न केवल मेरा मार्गदर्शन किया अपितु इस पूरे शोध काल में मुझै सदैव आप सभी का स्नेह एवं सहयोग पूर्ण रूप से प्राप्त होता रहा। मैं आपको बारंबार प्रणाम करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपने आचार्य **डॉ० उमेश कुमार शुक्ल** (असिस्टेंट प्रोफकसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार) के चरणकमलों में प्रणाम करते हुए हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। अपका अपार स्नेह, मार्गदर्शन न केवल शोधयात्रा के दौरान प्राप्त हुआ अपितु जीवन के सभी उतार-चढ़ाव के मध्य आपके आशीर्वचनों द्वारा मेरी इच्छाशक्ति में वृद्धि होती रही है। भाषा पर अच्छी पकड़, रचनात्मक लेखन क्षमता को विकसित करने एवं निरन्तर अध्ययनरत रहने की प्रेरणा आपसे सदैव प्राप्त होती रही है। जिसका लाभ मुझे इस शोध प्रबन्ध को लिखने के दौरान सर्वाधिक मिला है। में पुनः आपके चरणकमलों में नमन करता हूं।

मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों, विशेषकर परम पुनीत श्रद्धेय पिताजी **श्री देवेंद्र सिंह भदौरिया** एवं अविरल स्नेह प्रदान करने वाली माता **श्रीमती कुसुम देवी** के चरण कमलो में आभार निवेदित कर गौरव का अनुभव करता हूं जिनके आशीर्वचनों ने इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने एवं शोध क्षेत्र में प्रवेश करने का स्वप्न वास्तव में माता जी ने ही मुझे दिया है और इस मार्ग में आने वाली बाधाओं से लड़ने की शक्ति का स्रोत भी आप ही हैं। आपकी सद्प्रेरणा, स्नेह, वात्सल्य का ही परिणाम है कि आज यह शोध प्रबन्ध मूर्त रूप में प्रस्तुत हो सका है। आपके जीवन भर के अथक परिश्रम एवं संघर्षों को सहजरूप से स्वीकारने तथा स्वयं को जीवन्त बनाये रखने की जिजीविषा का ही परिणाम है कि मैं आपके बताए मार्ग पर चलकर इस शोध प्रबन्ध को पूरा कर पाया हूं। इसी क्रम में मैं अपने प्रिय अनुज अभिषेक सिंह भदौरिया एवं उनकी धर्मपत्नी ऋचा सिंह का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली (ICHR) के प्रति भी विशिष्ट आभार प्रकट करता हूँ, जिसने मेरे शोधकार्य हेतु अध्येतावृत्ति प्रदान कर इस कार्य में आने वाले आर्थिक बाधाओं को कम करने में अति सहयोग प्रदान किया।

मैं अग्रज डॉ० बालिष्टर सिंह राठी एवं सौरभ कुमार सिंह कसाना, दिव्यांशु बिष्ट का भी हार्दिक अभिनन्दन एवं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने शोधकार्य हेतु सदैव मेरा सहयोग एवं प्रोत्साहन किया। मैं अपनी मित्र **प्राची सिंह** के प्रति विशेष आभार प्रकट करता हूँ, जिनका अतुलनीय सहयोग सम्पूर्ण शोध कार्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दौरान मुझे प्राप्त हुआ। इसके साथ ही शोध प्रबंध से व्याकरणिक अशुद्धियों को दूर करने में भी आपने पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। मैं पुनः हृदय के पुनीत भावों से आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अंत में मैं उन सभी प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वानों, लेखकों तथा उनके उदार हृदय पूर्ण प्रकाशकों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों एवं संस्थाओं का जिनके प्रकाशित ग्रन्थों और रचनाओं का शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतिकरण में उपयोग किया है, के प्रति अन्तः हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

गौरव सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-अनुक्रमणिका

प्रस्तावना			1-7
प्रथम अध्याय	:	मुरैना जनपद का भौगोलिक, ऐतिहासिक परिचय	8-54
द्वितीय अध्याय	:	राजपूत पूर्वयुगीन प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला	55-113
तृतीय अध्याय	:	मुरैना जनपद में प्रतिहार कालीन मन्दिर एवं मूर्तियां	114-171
चतुर्थ अध्याय	:	मुरैना जनपद में कच्छपघात कालीन मन्दिर एवं मूर्तियां	172-217
पंचम अध्याय	:	उपसंहार	218-225
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची			226-230
चित्र संकलन			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र सूची

1. बटेश्वर मंदिर समूह
2. बटेश्वर के लघु मंदिर
3. द्वितीय श्रेणी के मंडप युक्त मंदिर, बटेश्वर
4. ऊँची जागती पर स्थित मंदिर के भग्नावशेष, बटेश्वर
5. भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर
6. गर्भगृह, भूतेश्वर मंदिर
7. सरोवर किनारे स्थित नरेसर के लघु आकार के मंदिर
8. गर्भगृह की संरचना, नरेसर
9. द्वितीय वर्ग के उत्तरी दिशा में स्थित मंदिर, नरेसर
10. ललाट बिम्ब पर गणेश का अंकन
11. तृतीय वर्ग के ऊंचे शिखर वाले मंदिर, नरेसर
12. चामुंडा देवी मंदिर, नरेसर
13. चांचुल ग्राम स्थित शिव मंदिर का स्थिरांक विवरण चित्र
14. चांचुल ग्राम स्थित शिव मंदिर
15. भद्र, भोग एवं ब्रह्मपीठ युक्त शिवलिंग, बटेश्वर
16. ऊंची योनि से युक्त शिवलिंग, बटेश्वर
17. पंचमुखी शिवलिंग, बटेश्वर
18. जटाजूट आकृति का भद्रपीठ युक्त शिवलिंग, बटेश्वर
19. चौदह शिवलिंगों से युक्त योनिपीठ, नरेसर
20. द्वारशाखा पर अंकित शिव का मानवरूप, बटेश्वर
21. वीरभद्र, बटेश्वर
22. लकुलीश, बटेश्वर
23. स्थानक विष्णु, नरेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24. गरुड़ासीन विष्णु, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

25. आसनस्थ विष्णु, बटेश्वर

26. दशावतार फलक, बटेश्वर

27. नृवराह अवतार, बटेश्वर

28. कृष्ण जन्म, चांचुल

29. वसुदेव को नवजात शिशु कृष्ण सौंपती हुई देवकी, बटेश्वर

30. दधि मंथन, चांचुल

31. पूतना वध, बटेश्वर

32. गोवर्धन धारण, चांचुल

33. तृणावर्त वध, बटेश्वर

34. प्रलंबासुर वध, बटेश्वर

35. अरिष्टासुर वध, बटेश्वर

36. केशी वध, बटेश्वर

37. सूत लोमहर्षण वध, बटेश्वर

38. तपस्यारत पार्वती, बटेश्वर

39. महिषासुरमर्दिनी, बटेश्वर

40. सप्तमातृका फलक, बटेश्वर

41. द्विभुजी स्थानक गणेश, बटेश्वर

42. अष्टभुजी नृत्यरत गणेश, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

43. षटभुजी नृत्यरत गणेश, बटेश्वर

44. स्थानक चतुर्भुजी कार्तिकेय, बटेश्वर

45. मयूरासीन चतुर्भुजी कार्तिकेय, बटेश्वर

46. नवग्रह फलक, बटेश्वर

47. सूर्य, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

48. सूर्य, बटेश्वर

49. सूर्य , बटेश्वर

50. इन्द्र, भूतेश्वर मन्दिर, बटेश्वर

51. अग्नि, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

52. यम, भूतेश्वर मन्दिर, बटेश्वर

53. वरुण, बटेश्वर

54. वायु, बटेश्वर

55. कुबेर, बटेश्वर

56. ईशान, बटेश्वर

57. गंगा-यमुना, बटेश्वर

58. ककनमठ मंदिर, सिहोनिया

59. स्तंभों पर आधारित मंडप एवं शिखर,ककनमठ मंदिर

60. मुख्य मंदिर के बाहर स्थित मंदिर के भग्नावशेष, ककनमठ मंदिर

61. ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

62. ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

63. ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

64. विष्णु,ककनमठ मंदिर

65. विष्णु,ककनमठ मंदिर

66. गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग,ककनमठ मंदिर

67. मंदिर के भग्नावशेषों पर स्थित शिवलिंग,ककनमठ मंदिर

68. आसनस्थ शिव,ककनमठ मंदिर

69. स्थानक शिव, ककनमठ मंदिर

70. पार्वती परिणय मूर्ति,ककनमठ मंदिर

71. पार्वती,ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

72. माहेश्वरी, ककनमठ मंदिर

73. माहेश्वरी,ककनमठ मंदिर

74. दुर्गा,ककनमठ मंदिर

75. दुर्गा,ककनमठ मंदिर

76. गजलक्ष्मी, ककनमठ मंदिर

77. सरस्वती,ककनमठ मंदिर

78. सरस्वती,ककनमठ मंदिर

79. कौमारी, ककनमठ मंदिर

80. वारुणी, ककनमठ मंदिर

81. कार्तिकेय, ककनमठ मंदिर

82. गणेश, ककनमठ मंदिर

83. इन्द्र, ककनमठ मंदिर

84. अग्नि, ककनमठ मंदिर

85. यम, ककनमठ मंदिर

86. निऋति, ककनमठ मंदिर

87. वरुण, ककनमठ मंदिर

88. वायु, ककनमठ मंदिर

89. कुबेर, ककनमठ मंदिर

90. ईशान, ककनमठ मंदिर

91. व्याल मूर्तियाँ, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में राजपूत काल अथवा पूर्व मध्यकाल से उस युग का बोध होता है जो सातवीं से बारहवीं शताब्दी तक विस्तृत था। भारतीय इतिहास में राजपूत काल का विशेष महत्व है। वास्तव में इस काल में हिंदू संस्कृति का ही विस्तार रहा। तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक विचार धाराएं आज भी भारतीय समाज में दिखाई पड़ती हैं। सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ सांस्कृतिक क्षेत्र में भी जो परम्पराएं इस काल में अस्तित्व में आई वे सुदीर्घ काल तक भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती रहीं।

कला मनुष्यों की भावना की अभिव्यक्ति का एक साधन है। धार्मिक भावना से उसका निकटतम सम्बन्ध माना गया है। समयानुकूल कला में परिवर्तन तथा परिवर्धन भी होते रहे हैं। ललित कला के इतिहास में पूर्व मध्ययुग की कला अपना विशेष स्थान रखती है। इससे पूर्व गुप्त स्वर्णयुग में कला उन्नति की चरम सीमा को सीमा को पहुंच गई थी। कुछ विद्वान मध्ययुगीन कला को गुप्त कालीन कला का अनुगामी मानते हैं। परन्तु गहन अध्ययन के पश्चात यह देखने को मिलता है कि गुप्त काल के अवसान के पश्चात राजपूत काल ने कला के क्षेत्र में एक नया मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि सातवीं - आठवीं शताब्दी के दौरान निर्मित मन्दिर एवं मूर्तियों में गुप्तकालीन अंश देखने को मिलता है, तथापि राजपूत काल की कला की अपनी निजी विशेषताएं एवं व्यवस्थित विकासक्रम है।

कला और मानव की नैसर्गिक मित्रता सदा से ही चली आ रही है। विभिन्न कलाओं में से स्थापत्य कला सदैव से ही मानव के मन में व्याप्त सौन्दर्यात्मकता, भावनात्मकता, विषालता, संस्कृति बोध एवं स्वादर्शों के प्रतिरूप बनाने का साधन रही है। भारतीय मंदिर स्थापत्य कला का आधार जितना अधिक कलात्मक और धार्मिक है उतना ही वैज्ञानिक भी है। अनेकों सदियों के अनवरत प्रयास एवं विभिन्न राजवंशों की दृढ़ इच्छाशक्ति ने स्थापत्य एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में ऐसे प्रतिमान स्थापित किये हैं, जो आज भी अमूल्य धरोहरों के रूप में विराजमान हैं। ऐसी ही बहुमूल्य स्थापत्य धरोहरों के धनी स्थानों में से एक है - मुरैना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्तकाल के बाद मन्दिर-स्थापत्य के कतिपय मुख्य लक्षणों का विकास हुआ, जिन्हें हम उत्तर तथा दक्षिण भारत में थोड़े-बहुत विभेदों के साथ पाते हैं। राजपूत काल में अनेकों कला केन्द्रों पर विषाल नागर शैली के मन्दिरां एवं मन्दिर समूहों का निर्माण किया गया। इन मन्दिरों के दो प्रमुख लक्षण हैं। प्रथम उनकी योजना तथा द्वितीय ऊँचाई। इस समय मन्दिर की उपमा मानव-षरीर से की गई। भूमितल से लेकर ऊपर के शिखर तक मन्दिर के जिन मुख्य अंगां का निर्माण किया गया वे हैं- अधिष्ठान या चौकी, वेदिबन्ध, अन्तरपत्र, जंघा, वरंडिका, शुकनासिका, ग्रीवा, शिखर। सम्पूर्ण शिखर में भी अनेक अवयवों का निर्माण किया जाता था, जिसमें उरुश्रृंग, रथिका, प्रतिरथ, अनुरथ, भद्र, स्कन्ध, आमलक, चन्द्रिका, कलश प्रमुख हैं। मन्दिर वास्तु के ये अष्टांग देशव्यापी बन गये। मन्दिर के द्वार मुख या प्रवेश-द्वार को गंगा-यमुना, द्वार-रक्षकों एवं कीर्तिमुख आदि अलंकरणों आदि से सजाया जाता था। इस काल के मन्दिरों में 'सप्तशाखाद्वार' की अवधारणा भी देखने को मिलती है। ऐसे द्वार सात उत्तरंग वाले होते थे। उनके नाम नागशाखा, रूपशाखा, व्यालशाखा, मिथुनशाखा आदि मिलते हैं। इन विभिन्न शाखाओं पर मुख्य देवप्रतिमा के अतिरिक्त सप्तमातृका, नवग्रह, यक्ष, गन्धर्व, सुपर्ण, किन्नर, नाग आदि के रोचक आलेखन किये जाते थे। अलंकरणों के रूप में वृक्षों लताओं तथा पशु-पक्षियों की सज्जापट्टियां विकसित हुई। मन्दिरों के अन्य भागों एवं बाह्य दीवारों को विविध अलंकरणों से मण्डित करने की परम्परा देखने को मिलती है। ये अलंकरण धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही प्रकार के हैं। प्रतीकों की जो दीर्घ परम्परा भारतीय धर्मों में मिलती है उसको कलाकारों ने मन्दिरों में मूर्तरूप देकर अमर बनाया। मुरैना जनपद के मन्दिरों में वास्तुशास्त्र के नियमों की अभिव्यक्ति हुई है। जहां एक ओर नरेसर एवं बटेसर के मन्दिर प्रारम्भिक अवस्था के है, वहीं सिहोनियां के ककनमठ मन्दिर में नागरषैली के विषाल मन्दिरों के वास्तु नियमों को देखा जा सकता है।

भारतीय मूर्तिकला का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। आद्यैतिहासिक कालीन हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न स्थलों से भी मूर्तियों की प्राप्ति होती है। वहीं ऐतिहासिक काल में मूर्तिकला के सुन्दर प्रमाण मौर्य युग से मिलने प्रारम्भ होते हैं। मौर्य युगीन राजकीय कला एवं लोक कला दोनों में ही मूर्तिशिल्प को स्थान दिया गया था। मौर्य-शुंग काल में मूर्तिकला का प्रधान विषय बौद्ध धर्म एवं यक्ष-यक्षिणी थे। प्राचीन भारत में यक्ष पूजा का विभिन्न क्षेत्रों में प्राधान्य था। इसी कारण विभिन्न यक्ष-यक्षिणियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तियां हमें अवशेष के रूप में प्राप्त होती हैं। पटना से प्राप्त यक्ष मूर्तियाँ एवं दीदारगंज की चामरवाहिनी यक्षिणी की मूर्ति अत्यन्त विशिष्ट है। ये तद्युगीन कला के उत्कृष्ट नमूनों में से एक हैं। मौर्य-शुंग काल में मूर्तियों का निर्माण स्वतन्त्र रूप में तथा स्तूपों पर भी किया गया था। सांची, अमरावती, भरहुत, बोधगया, मथुरा, उदयगिरी, खण्डगिरी, सारनाथ जैसे कलाकेन्द्रों में इस युग की उन्नत मूर्तिकला के दर्शन होते हैं। स्तूपों के तोरणद्वारों पर सज्जा हेतु बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं एवं कथानकों का मूर्तांकन किया गया है। जिनमें बुद्ध के जन्म के प्रतीकों का अंकन, जातक कथाओं का अंकन, यक्ष-यक्षिणी का अंकन, देवता, नागराज, पशु-पक्षियों का अंकन प्रमुख है। भरहुत के स्तूप से प्राप्त मूर्तिशिल्प में बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं (जन्म, ज्ञान, धर्मचक्रप्रवर्तन एवं महापरिनिर्वाण) का अंकन विशेष है। कुषाण शासक कनिष्क का काल भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में महत्वपूर्ण सोपान है। मथुरा एवं गांधार दो प्रमुख मूर्तिशिल्प शैलियों का विकास इस समय हुआ। प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्म-धाराओं की संगम स्थली के रूप में मथुरा का विकास हुआ, जिसका परिणाम यह रहा कि कुषाण काल तक आते-आते यहां ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्म का भलिभांति प्रभाव स्थापित हो चुका था। जिसकी पुष्टि यहां से प्राप्त मूर्तियों के द्वारा होती है। मथुरा कला के रचनात्मक आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता 'मूर्ति' अर्थात् पूजा के उद्देष्य से निर्मित देव प्रतिमाओं का विकास होना है। जनमानस की धार्मिक भावनाओं एवं कला कौषल का प्रदर्शन इन मूर्तियों में हुआ है। कुषाण काल में पूर्व के परम्परागत आलंकारिक साज-सज्जा एवं बेल-बूटों के उत्कीर्णन के स्थान पर मानव स्वरूप को प्रतिमा का विषय बनाकर विभिन्न मुद्राओं एवं भाव-भंगिमाओं से आबद्ध किया जाने लगा। इस समय में आकर शिल्प अब वास्तु की आलंकारिक सजावट न रहकर पूर्ण मूर्तिशिल्प का रूप ग्रहण करने लगा।

मौर्य-शुंग-सातवाहन काल में मूर्तिकला का प्रधान विषय बुद्ध एवं यक्ष थे। कुषाण काल में विषय से सम्बन्धित आयामों में वृद्धि देखने को मिलती है। बुद्ध मूर्तियों का निर्माण इस काल में पूर्व की भांति सुचारू रूप से चलता रहा तथापि इसके साथ ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवताओं यथा- विष्णु, ब्रह्मा, शिव (लिंगविग्रह, पुरुष विग्रह), कार्तिकेय, गणपति, सूर्य, इन्द्र, बलराम, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, सप्तमातृका, कुबेर आदि की मूर्तियों का निर्माण भी होने लगा था। ये सभी मूर्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्र रूप से निर्मित की जा रही थीं। इस काल में मूर्तिकारों ने देवी-देवताओं के मस्तक, हाथ, आयुध एवं वाहन आदि पर ध्यान दिया। साथ ही उनके आभूषणों के अलंकरण को और अधिक स्पष्ट और विशिष्ट बनाने का प्रयास किया। कुषाण काल में विष्णु की अधिकांष मूर्तियां चतुर्भुजी ही प्राप्त होती हैं। गुप्तकाल की मूर्तिकला अपनी सजीवता, विविधता एवं स्वाभाविकता से भरपूर है। साथ ही विषय की उदात्तता एवं मूर्तियों का आकार गुप्त कालीन मूर्तियों का विशेष पक्ष रहा है। इस काल में बनी मूर्तियों ने आने वाले शिल्पियों हेतु दिशा-निर्धारण का कार्य किया। गुप्त नरेष ब्राह्मण धर्मानुयायी थे, इस कारण यह काल ब्राह्मण धर्म के पुनरूत्थान का काल सिद्ध हुआ। इस समय से ही भारत में मन्दिरों के अवशेष मिलने प्रारम्भ होते हैं, जो कि शैव एवं वैष्णव धर्मों से सम्बन्धित हैं। मन्दिरों के निर्माण से निष्चित रूप से मूर्तिकला को और अधिक बल मिला। अब हिन्दू देव मूर्तियां स्वतंत्र रूप से निर्मित होने के साथ-साथ मन्दिरों के गर्भगृहों एवं बाह्य दीवारों पर भी बनने लगीं थीं। गुप्तयुगीन मूर्तिशिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काल में भारतीय मूर्तिकला को निष्चित मानक प्राप्त हो चुके थे। मूर्तियों में वेश-भूषा, आभूषण, आयुध, सहायक देव, वाहन एवं अन्य प्रतीकों को भी निष्चित किया गया। राजपूत काल में पौराणिक धर्म का अत्यधिक प्रभाव रहा। विष्णु, सूर्य, शिव, षक्ति तथा गणेष की पंचदेवोपासना अत्यधिक विकसित हो चुकी थी। इन मुख्य देवों के अतिरिक्त अनेक पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा का विकास भी इस काल में हुआ। उक्त पौराणिक धर्म प्राचीन वैदिक धर्म की विभिन्न शाखाओं के रूप में थे। मन्दिर वास्तु के साथ-साथ मूर्तिकला के क्षेत्र में भी यह काल समृद्धषाली रहा। धार्मिक और लौकिक दोनों ही पक्षों को मूर्तिकला में पर्याप्त स्थान दिया गया एवं इनका अंकन हमें राजपूत कालीन मन्दिरों की भित्तियों पर प्राप्त होता है। जहां देवों और ऋषियों के बीच ही अलस कन्याएं, अप्सराएं, साधारण मानवों के क्रियाकलाप, गंधर्व, व्याल, वनस्पति, पषु जगत, नृत्य, गायन, वादन, आखेट, पूजन के साथ-साथ रामायण एवं महाभारत के कथानकों से सम्बन्धित दृष्यों का मूर्तांकन किया गया है। किन्तु इस काल की मूर्तिकला गुप्तयुगीन कला से भिन्नता लिये है। इस समय पर अलंकरण की भावना बलवती होती गयी है। मूर्तियों के शरीर, सौन्दर्य, आभूषण आदि को सूक्ष्मता से अंकित किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार शासकों का काल राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से परिवर्तन का काल था। गुप्त शासकों के बाद क्षीण होती राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव कला के क्षेत्र में भी व्यापक स्तर पर मिलता है। गुप्त काल में मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का भारतीय स्वरूप देखने को मिलता है। इनके पश्चात एक लम्बे अंतराल तक इस प्रकार के कलावशेषों का नितांत अभाव प्राप्त होता है। गुप्तों के पश्चात प्रतिहार शासकों ने ही अपनी मजबूत राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति के कारण कला को प्रश्रय प्रदान किया।

ग्वालियर-मुरैना क्षेत्र पर प्रतिहार शासकों का सुदृढ शासन रहा, जिसके चलते इस क्षेत्र में बटेश्वर, नरेसर जैसे विशाल मन्दिर समूहऔर मूर्तिकला केंद्रों की स्थापना हुई। प्रतिहार शासकों के पतन के पश्चात् इस क्षेत्र में कच्छपघात शासकों ने आधिपत्य स्थापित किया। इस काल में भी कला को पूर्ण प्रश्रय प्रदान किया गया। मुरैना जनपद में इस काल में पडावली, ककनमठ एंव मितावली के मंदिर अस्तित्व में आये।

शोध विषय का उद्देष्य एवं महत्व -

1. मुरैना जनपद के प्रतीहार कालीन एवं कच्छपघात कालीन मन्दिरों एवं मूर्तियों के विकास का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत करना।
2. मुरैना के मंदिरों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं कलात्मक दृष्टिकोणों से समग्र अध्ययन प्रस्तुत करना।
3. मन्दिरों की आधार संरचना एवं ऊर्ध्वाधर संरचना को रेखाचित्रों के माध्यम से स्पष्ट कर स्थापत्य का विस्तृत अध्ययन करना।
4. मंदिर निर्माण की नागर शैली के विकासक्रम को मुरैना स्थित राजपूत कालीन मन्दिरों के माध्यम से समझना।
5. मुरैना के मन्दिरों में निर्मित मूर्तियों के कलापक्ष, भावपक्ष एवं सौन्दर्यपक्ष को उद्घाटित करना। यहां प्रतीहार कालीन मूर्तियों के अतिरिक्त कच्छपघात कालीन प्रतिमाएं मिलती हैं। जो कि कला, भाव एवं सौन्दर्य की दृष्टि से उत्तम कोटि की हैं। कच्छपघात राजवंष एक क्षेत्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजवंष था। इस कारण इस शोध विषय में कच्छपघात कालीन मन्दिरों एवं मूर्तियों को शामिल कर उनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

विषम भौगोलिक परिस्थितियों एवं दस्युओं के भय के कारण मुरैना जनपद के सभी मन्दिर बहुत जल्दी प्रकाष में नहीं आ पाये थे। यहां तक कि बटेसर के विषाल मन्दिर समूह का संरक्षण कार्य भी कुछ वर्ष पहले ही पुरातत्वविद् के. के. मोहम्मद द्वारा सुचारू रूप से प्रारम्भ किया गया था। सम्भवतः इसी कारण मुरैना जनपद के सभी मन्दिरों के विकासक्रम और विशेषताओं का अध्ययन एक साथ पहले नहीं किया गया। कच्छपघात कालीन मन्दिरों एवं प्रतिमाओं पर अभी तक कोई विशेष कार्य प्रकाष में नहीं आया है। जबकि शेष मन्दिरों का वर्णन प्रतीहार कालीन स्थापत्य कला के प्रसंग में अनेक विद्वानों ने पृथक-पृथक रूप से किया है। त्रिवेदी, डॉ0 आर0 डी0 द्वारा लिखित ''प्रतीहार टेम्पल्स ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया'' पुस्तक में प्रतीहार काल की स्थापत्य व मूर्तिकला पर उल्लेखनीय कार्य किया गया है। त्रिवेदी, सुधीर कुमार द्वारा लिखित पुस्तक ''मध्य भारत की प्रतीहार कालीन कला एवं स्थापत्य'' में मुरैना के कुछ मन्दिरों का वर्णन किया है। त्रवेदी, संजीव, मध्य भारत की गुर्जर प्रतिहार कला पुस्तक में प्रतिहार कालीन स्थापत्य कला का वर्णन किया गया है। द्विवेदी, हरिहर निवास ने अपनी पुस्तक गोपक्षेत्र के कच्छपघात, ग्वालियर दर्शन में मुरैना जनपद के कच्छपघात वंषीय मंदिरों का उल्लेख किया है। यद्यपि यह पुस्तक कच्छपघात वंष का राजनीतिक विवरण अधिक प्रस्तुत करती है। गुप्ता, कृष्णा, शोधार्थी, जीवाजी विष्वविद्यालय, ग्वालियर द्वारा 'ग्वालियर संभाग की ब्राह्मणीय मूर्तियों की वृहद विवेचना' विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है। जिसमें ग्वालियर-मुरैना की ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित विभिन्न मूर्तियों पर प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा हेतु पांच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में मुरैना जनपद का भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिचय प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय के अंतर्गत राजपूत पूर्वयुगीन मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का विकासक्रम प्रस्तुत किया गया है। गुप्त काल तक कला का स्वरूप भारतीय गुणों एवं शास्त्रीय विधानों को प्राप्त करने लगा था। इसके पश्चात् राजनीतिक अस्थिरता के कारण कला के विकास के क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न हुआ। तृतीय अध्याय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतर्गत मुरैना जनद में प्रतिहारकालीन मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तियों के विकास का विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रतिहार शासकों के पश्चात् मुरैना-ग्वालियर क्षेत्र पर कच्छपघात शासकों का आधिपत्य स्थापित हुआ। चतुर्थ अध्याय में कच्छपघात कालीन मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला का विवरण प्रस्तुत किया गया है। पंचम अध्याय उपसंहार के रूप में है, जिसमें सम्पूर्ण शोध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। साथ ही मुरैना जनपद के मंदिरों एवं मूर्तिकला की सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपादेयता को भी उद्घाटित किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

मुरैना जनपद का भौगोलिक-ऐतिहासिक परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

मुरैना जनपद का भौगोलिक-ऐतिहासिक परिचय

मुरैना जनपद भारत के मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है। चम्बल नदी के किनारे बसा यह जिला संस्कृति के अटूट क्रम से सभी प्रमाण प्रस्तुत करता है। महाभारत में ब्रज क्षेत्र के चार वनों का उल्लेख किया गया है - मधुवन, वृन्दावन, अग्रवन एवं मयूरवन। इनमें से मयूरवन को ही वर्तमान मुरैना कहा जाता है। मोरों की अधिकता के कारण इस स्थान का नाम मुरैना/मोरेना रखा गया, जिसका शाब्दिक अर्थ है मयूरों का वास स्थल।

भौगोलिक परिचय -

मुरैना मध्यप्रदेश के सर्वाधिक उत्तर में स्थित जिला है। यह राज्य के चम्बल सम्भाग के अन्तर्गत आता है। यह ग्वालियर से 39 किलोमीटर तथा आगरा से 82 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मानचित्र में इसका प्रसार 26^0 49’ से 260 29’ उत्तरी अक्षांश तथा 77^0 99’ से 77^0 59’ पूर्वी अक्षांश तक है। समुद्रतल से इसकी औसत ऊँचाई 177 मीटर (580 फीट) है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 3 पर स्थित है। जो कि भारत के बड़े एवं व्यवस्ततम व्यावसायिक मार्गों में से एक है। इसकी सीमाएं राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश राज्यों तथा श्योपुर, शिवपुरी, ग्वालियर एवं भिण्ड जिले से लगती हैं। इसका कुल क्षेत्रफल 4998 वर्ग किलोमीटर है। मुरैना को प्रशासनिक दृष्टि से छः तहसीलों में विभाजित किया गया है जिनमें पोरसा, अम्बाह, मोरेना, जौरा, कैलारस, सबलगढ शामिल हैं।

मुरैना जनपद का भू-भाग मध्यभारत के पठार के अन्तर्गत आता है। यह पठार उत्तर में यमुना के मैदानी क्षेत्र, दक्षिण में मालवा के पठार, पूर्व में बुन्देलखण्ड के पठार एवं दक्षिण में मालवा के पठार से घिरा है। यहां का धरातलीय उच्चावच अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ व विषम है। जिसकी औसतन ऊँचाई 150-300 मीटर है। समस्त पठारी भूमि का ढलान दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम दिशा से उत्तर तथा उत्तर-पूर्व की ओर है जिससे इस क्षेत्र की नदियां उत्तर तथा उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बहती है। उदाहरणार्थ - चम्बल नदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

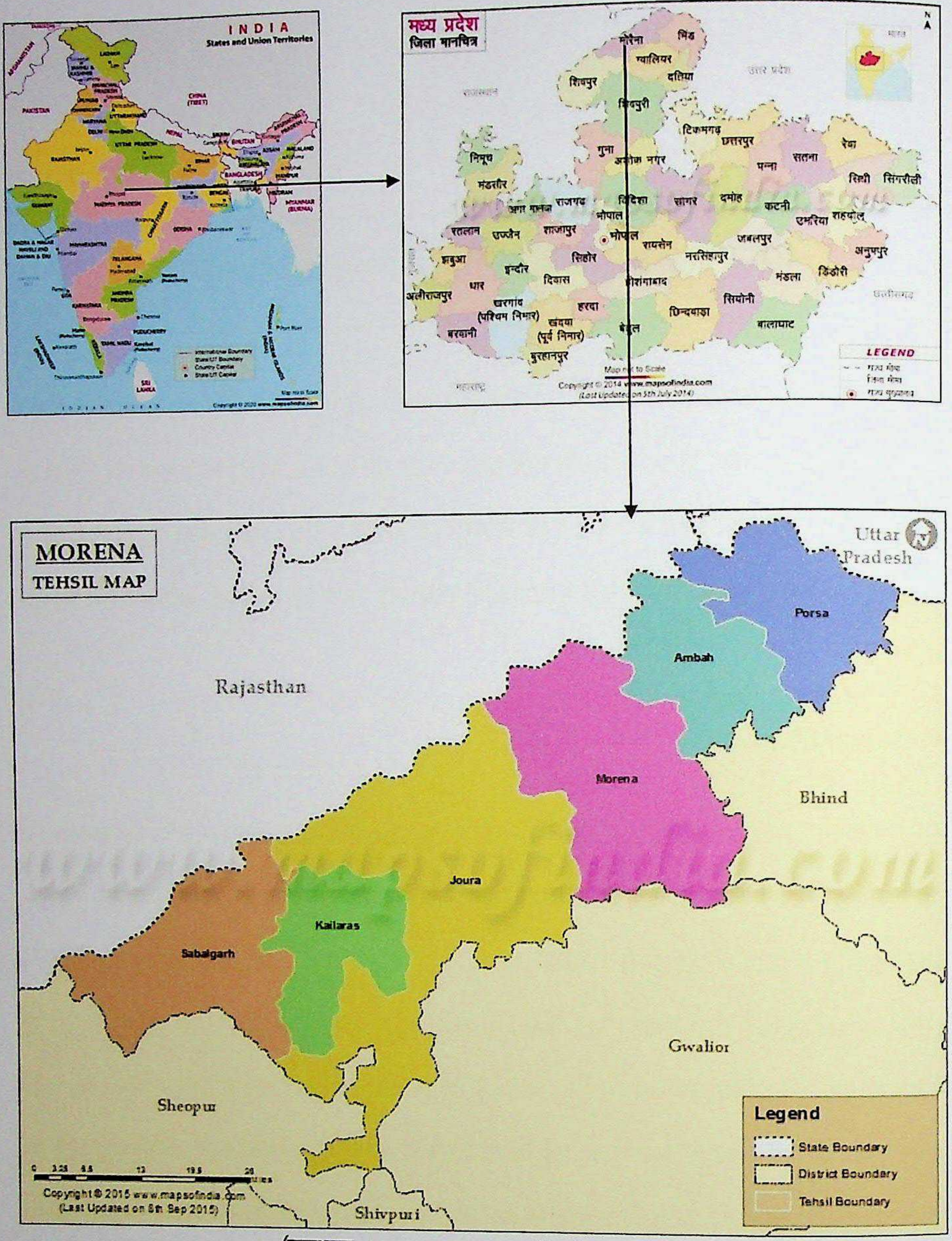

(साभार : www.mapsofindia.com)

प्रमुख नदियाँ –

आदि काल से ही मानव सभ्यताएं नदियों के किनारे वाले भू-भागों में पल्लवित होती आयी हैं। नदियां किसी भी क्षेत्र के निवासियों को न सिर्फ जल प्रदान करती हैं बल्कि अपने साथ बहाकर लायी ऊर्वर पदार्थों को मैदानों में निक्षेपित कर निकटवर्ती भूमि को उपजाऊ बनाने का कार्य भी करती हैं। मुरैना जनपद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चम्बल, पार्वती, आसन, क्वारी आदि महत्वपूर्ण नदियां प्रवाहित होती हैं। जिनके तटों पर प्रागैतिहासिक काल से मानव सभ्यता फलती-फूलती आयी है।

चम्बल नदी -

चम्बल नदी मुरैना की प्रमुख एवं सबसे बड़ी नदी है। जिसका उद्गम स्थल इंदौर जिले के महू नामक स्थान से 9 मील दूरी पर स्थित विन्ध्याचल श्रेणी की जानापाव की पहाड़ियां हैं।[1] पी0 वी0 काणे महोदय भी महू नामक स्थान को इस नदी का उद्गम स्थल मानते हैं।[2] चम्बल मध्यप्रदेश के पश्चिमोत्तर, उत्तर एवं पूर्वोत्तर दिशा में प्रवाहित होती है। यह राज्य की विन्ध्य पर्वत की उत्तरी ढलान पर धार, रतलाम, उज्जैन, मन्दसौर जिलों से 195 किमी0 प्रवाहित होकर राजस्थान के कोटा जिले में बहती है एवं पुनः मध्यप्रदेश के मुरैना जनपद में प्रवेश करती है। कालीसिंध, बनास तथा मेज चम्बल की सहायक नदियां है। बनास एवं चम्बल नदी के मिलन स्थल को रामेश्वर-संगम के नाम से जाना जाता है जो कि एक पवित्र धार्मिक स्थल भी है। यह भिण्ड एवं मुरैना जिले की उत्तर-पश्चिम एवं उत्तरी सीमा का निर्माण कर यह उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में यमुना नदी के साथ संगम बनाती है।[3] चम्बल अपने धरातल से 130 मीटर की ऊँचाई तक बहती है। इसकी उत्तरी घाटी में स्थित मुरैना में लगभग 30 से अधिक पुरातत्त्व स्थल हैं। चम्बल का उल्लेख मार्कण्डेय पुराण, वायुपुराण, मत्स्य पुराण एवं कूर्म पुराण में भी मिलता है।[4] महाभारत के कथानकानुसार राजा रंतिदेव ने यज्ञ के समापन पर बड़ी संख्या में गौ-बलि दी थी जिसके कारण इस नदी का पानी रक्त के समान लाल रंग का हो गया था एवं इसका नाम चर्मावती पड़ा।[5] वहीं दूसरे आख्यानानुसार विदित होता है कि यह नदी पांचाल राज्य की दक्षिणी सीमा का निर्धारण करती है।[6] ठीक ऐसा ही विवरण कालिदासकृत मेघदूत में मिलता है।[7] पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में भी चर्मावती नदी का उल्लेख हुआ है।[8] साथ ही रायचैधरी महोदय चर्मावती नदी की पहचान पुण्या नाम से करते हैं।[9]

क्वारी नदी -

क्वारी नदी का उद्गम स्थल शिवपुरी जिले का पठारी भाग है। यह सिंध की प्रमुख सहायक नदी है एवं चम्बल से समानान्तर बहती है। यह मुरैना जिले में जल विभाजक का कार्य करती है तथा भिण्ड जिले में आकर यह सिंध नदी में मिल जाती है। आसन नदी इसकी एकमात्र सहायक नदी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसन नदी -

आसन नदी का उद्गम स्थल मुरैना जनपद ही है जो कि पीपल झील से दक्षिण दिशा में बहकर ग्वालियर जिले में प्रविष्ट होती है जो ग्वालियर एवं मुरैना की सीमा का निर्धारण भी करती है। पगारा बांध इस नदी पर ही बनाया गया है।

इसके अतिरिक्त डंक तथा पारा नदियां भी मुरैना के भूगोल में प्रमुख स्थान रखती हैं।

मृदा -

मुरैना जनपद के उत्तर-पश्चिम एवं उत्तर दिशा में जलोढ़ मृदा पायी जाती है। चम्बल नदी के अपवाह के कारण इस क्षेत्र की मृदा अत्यधिक उपजाऊ है। यह मिट्टी चम्बल नदी द्वारा वर्षा काल में निक्षेपित की जाती है। इसका रंग भूरा तथा पीलापन लिए हुए मिलता है एवं इसमें पर्याप्त क्षेत्रीय भिन्नता भी पायी जाती है। मुरैना के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा इस क्षेत्र की मृदा अधिक उपजाऊ है। स्थानीय भाषा में इस मिट्टी को कधार कहा जाता है। इस मृदा महीन कणों से निर्मित होती है जिसमें रेत का भी कुछ अंश पाया जाता है। जबकि इसमें नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की मात्रा कम पायी जाती है। पुरानी जलोढ़ मृदा मुरैना जनपद की अम्बाह एवं पोरसा तहसीलों में विशेष रूप से पायी जाती है जिससे यह क्षेत्र फसलोत्पादन हेतु महत्वपूर्ण है।

मुरैना जनपद की कैलासर, मुरैना एवं सबलगढ़ तहसीलों में बलुई मिट्टी का प्रसार देखने को मिलता है। चम्बल नदी में प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ के कारण यह मृदा बनती है एवं इसी उर्वरा शक्ति भी अधिक है। यह मृदा भी फसलोत्पादन हेतु उपयोगी है।

लाल दोमट मिट्टी का रंग लाला होता है क्योंकि यह मृदा पठारी क्षेत्र की रवेदार तथा रूपांतरित चट्टानों में लोहे के मिश्रण से होता है। यह मृदा अत्यधिक उपजाऊ नहीं होती। इस मृदा में नाइट्रोजन, जैव पदार्थ तथा फास्फोरिक एसिड की कमी होती है। मुरैना जिले में भी इस मिट्टी को देखा जा सकता है।

कछारी मृदा जो कि नदियों द्वारा बाढ़ के दौरान अपने अपवाह क्षेत्र में बिछायी जाती है, कछारी मृदा कहलाती है। यह मृदा भिण्ड-मुरैना जनपदों में चम्बल तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा निक्षेपित की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। मुरैना जनपद की सबलगढ, जौरा, मुरैना तथा अम्बाह तहसीलों में अधिकतर पायी जाती है। इसके साथ ही यह चम्बल संभाग के श्योपुर तथा भिण्ड जिले में भी पायी जाती है।

मृदा अपरदन - किसी भी भू-खण्ड कोई भी एक स्थाई कारक ही मृदा अपरदन हेतु उत्तरदायी नहीं होता वरन् उस भू-खण्ड की भूगर्भिक संरचना, भूआकृति, जल की मात्रा, ढ़लान, वायु प्रवाह की गति, वर्षा की तीव्रता तथा वायु एवं जल प्रवाह के मध्य उपस्थित अवरोधकों यथा- पहाड़, जंगल, बांध इत्यादि भी मृदा अपरदन की दर को प्रभावित करते हैं। मुरैना जनपद में मृदा अपरदन के निम्नलिखित सम्भावित कारण दिखाई देते हैं[10]-

1. नदी तल की संरचना।
2. नदी जल का आयतन।
3. वानस्पतिक आवरण।
4. नदी तल का ढ़ाल।
5. नदी में जलोढ़क की मात्रा।

मुरैना जनपद में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदी चम्बल मध्यप्रदेश के मध्य उच्च भू-भाग में स्थित मालवा के पठार तथा मध्य भारत के पठारों से उद्गमित हुई है अर्थात इसके अपवाह क्षेत्र का ऊपरी भाग कठोर चट्टानों से निर्मित है। जिस कारण यह दक्षिण-पश्चिमी भाग में गहरी घाटयों का निर्माण करती है। दक्षिणी-पश्चिमी भाग से आगे उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम में जलोढ़ मृदा से निर्मित विशाल उपजाऊ मैदान आरम्भ होता है। यह भाग मुरैना जनपद की उत्तर-पश्चिम सीमा से आरम्भ होता है एवं उत्तर तथा उत्तर-पूर्व की दिशा में आगे बढ़ते हुए निरन्तर चैड़ा होता जाता है। इस सम्पूर्ण भू-भाग में कठोर चट्टानों से निर्मित संरचनाएं प्राप्त नहीं होती हैं। इस क्षेत्र में अधिक गहराई तक काली, लाल, रेतीली, कंकरीली मृदा की सतहें पायी जाती है। क्योंकि यह भू-भाग बहुत ही महीन पदार्थों से बना है जिसके कारण चम्बल, आसन एवं क्वारी तीनों ही नदियाँ बहुत विशाल स्तर पर अपरदन करके यहां बीहड़ों का निर्माण करती हैं। साथ ही नदी जल द्वारा अत्यन्त तीव्र गति से मृदा अपरदन का एक कारण यह भी है कि यहां की मृदा में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक पायी जाती है जिससे कंकरीले पदार्थों की मोटी परत जम जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलवायु -

वर्षा-

मध्यप्रदेश में अधिकांश वर्षा जून से सितम्बर माह में मानसून द्वारा होती है।[11] मुरैना जनपद में भी वर्षा जल की 80 से 90 प्रतिशत की प्राप्ति इन तीन माह में ही होती है। चक्रवातों के कारण कुछ वर्षा दिसम्बर-जनवरी माह में भी होती है। शेष माह शुष्क वातावरण में गुजरते हैं। प्रायद्वीपीय पश्चिमी क्षेत्र जब अरब सागर की मानसूनी पवनों से जल प्राप्त करते है। तब ही पूर्वी तट पर बंगाल की खाड़ी से आने वाली पवनें यहां वर्षा करती हैं। मानसूनी पवनों की उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी भारत के क्षेत्रों में आते-आते जलधारण क्षमता कम रह जाती है। जिससे इन इलाकों में शेष भागों की अपेक्षा कम वर्षा होती है। चम्बल संभाग में भी औसत वार्षिक वर्षा का स्तर अपेक्षाकृत निम्न ही रहता है। संभाग में सबसे अधिक वर्षा श्योपुर जिले में 822.4 मिमी, मध्यम वर्षा मुरैना जिले में 707.1 मिमी., तथा सबसे कम वर्षा भिण्ड जिले में 668.4 मिमी. पाई जाती है। मुरैना जनपद में मानसून का आरम्भ जून के अंत में हो पाता है क्योंकि धरातलीय ढलान की दृष्टि से मुरैना जनपद उत्तर-पूर्व दिशा की ओर है, जिससे यहां दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनें सीधे प्रवेश नहीं कर पाती और उन्हें पूर्व एवं उत्तर पूर्व से आगे बढ़ना पड़ता है।

तापमान - मुरैना जनपद का तापमान भी अनियमित है, यहाँ ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी तथा शीत ऋतु में बहुत सर्दी पड़ती है। यहां अधिकतम तापमान 48.49 °C तथा न्यूनतम तापमान 1.2 °C तक दर्ज किया जाता है।[12]

वनस्पति - यहां की भूमि पहाड़ी, कंकरीली-पथरीली एवं पठारी होने के कारण यहां अधिकांश कंटीली झाड़ियाँ पाई जाती हैं। यहां पाये जाने वाले प्रमुख वृक्षों में सागोन, आम, महुआ, नीम, बीजा, साज, सीताफल, पीपल, बरगद, इमली, कैथ, जामुन, अमरूद, नींबू, आंवला, पाखर, बिल्व, पलास, छेंकुर, रैवर आदि शामिल हैं। यहां के लगभग एक चैथाई भाग पर वन पाये जाते हैं जिनमें से 70 प्रतिशत वन निम्न कोटि के हैं जिसमें झाड़ियाँ तथा घास हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरैना जनपद का ऐतिहासिक परिचय -

मध्य प्रदेश का इतिहास पाषाण युग से आरम्भ होता है। पाषाण युग वह युग है जब मानव वनों, कन्दराओं एवं घाटियों में निवास करता था तथा आखेट एवं संग्रहण द्वारा उदर पूर्ति करता था। मूलादि को खोदने तथा मांस को फाड़ने के लिए वह यथा उपलब्ध पत्थरों को तोड़कर, उन्हें नुकीला बनाकर औजार के रूप में प्रयोग करता था। जिस युग में मानव इन पाषाण उपकरणों का प्रयोग करता थ उसे ही पाषाण काल कहा जाता है। पुरातात्विक अन्वेषणों में मध्यप्रदेश के अनेक जिलों से पाषाण कालीन मानव सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए है। जिनमें सीधी, सागर, निमाड़, शहडोल, होशंगाबाद, दमोह, छतरपुर, मण्डला, रीवा, नरसिंहपुर, सिवनी, राजगढ़, पन्ना, सिहोर, धार, रायगढ़, रायसेन, जबलपुर, इन्दौर, गुना, विदिशा तथा बस्तर आदि प्रमुख हैं।

पाषाण औजारों के अतिरिक्त प्रागैतिहास कालीन मानव संस्कृति के अवशेषों के रूप में हमें गुहा चित्रों की प्राप्ति भी होती है। पुरातात्विक खोजों से भारत में जितने भी शिलाश्रय एवं शिलाचित्र प्राप्त हुए हैं उनमें से सर्वाधिक मध्यप्रदेश में ही मिले हैं। सागर, मन्दसौर, होशंगाबाद, सिहोर, रायगढ़, ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी, पन्ना, छिन्दवाड़ा नरसिंहपुर तथा छतरपुर वे प्रमुख जिले हैं जहां से शैलचित्रों की प्राप्ति होती है।[13] मुरैना जनपद में आसन नदी के घाटी में स्थित प्रागैतिहासिक गुहाएं पहाड़गढ में मिलती है। यह स्थल मुरैना जिला मुख्यालय से 50 किमी0 दूरी पर स्थित है। यहां से प्राप्त 86 गुफाओं और शैलाश्रयों का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है जिन्हें भीमबेटका के समकालीन माना गया है। ये शैलचित्र तत्कालीन मानव के जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हैं, जिसमें आखेट, भोजन संग्रहण, नृत्य आदि सम्मिलित है। आखेटक ही आदिम चित्रकार था तथा आखेट-पशु एवं आखेट-दृश्य ही उसकी कला के सर्वप्रमुख विषय थे।[14] जिससे यह भी स्पष्ट होता है कि इन चित्रकारों के पूर्वज भी आखेटक ही थे। यह चित्रण कृषि से पूर्व की मानव सभ्यता का वास्तविक चित्रण है।

इस युग में मानव की दो सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताएं थीं- एक भोजन हेतु शिकार करना एवं दूसरा प्राण रक्षा हेतु हिंसक जानवरों से बचना। स्वाभाविक ही है कि जब मानव ने अपने हृदय की भावनाओं को चित्रकला के माध्यम से प्रस्तुत करना आरम्भ किया तो उसने अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण दो पक्षों को ही प्रमुख विषय बनाया।[15] पहाड़गढ के शैलाश्रयों में चित्रित आखेट के दृश्यों में चित्रित पशुओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूअर, हिरन, व्याघ्र, सांभर, चीतल, कुत्ता आदि प्रमुख हैं। पहाड़गढ़ की शिलाओं पर चित्रित एक चित्र विशेष उल्लेखनीय है जिसमें दो मयूरों के मध्य एक सर्प दिखाया गया है। दायीं ओर स्थित मयूर ने सर्प फण को अपनी चोंच में दबा रखा है। मयूरों द्वारा सर्प का शिकार किये जाने का दृश्य अत्यंत ही रोचक है। साथ ही यह तत्कालीन मानव की सजगता को भी प्रदर्शित करता है। वह न केवल अपने भोजन हेतु शिकार पर ध्यान देते थे अपितु मयूरादि अन्य जीवों द्वारा किये जाने वाले शिकार से भी परिचित थे। इस चित्र को बनाने का एक कारण यह भी हो सकता है कि मयूर एक ऐसे जीव का शिकार कर रहा है जो कि मानव के लिए मृत्यु का कारण बन सकता है। अतः इस प्रकार के दृश्य को चित्रण के लिए उपयुक्त समझना सहज ही था। इस चित्र से मुरैना में मयूरों की उपस्थिति का भी प्रमाण मिलता है।

एक अन्य चित्र में शिकार का बहुत ही सुन्दर चित्रांकन किया गया है। चित्र में एक ओर हिरनों का झुण्ड दर्शाया गया है तथा दूसरी तरफ एक आखेटक को दिखाया गया है, जिसके एक हाथ में शस्त्र तथा दूसरी में रस्सी के फन्दे के समान आकृति वाली वस्तु है जो कि शिकार के लिए प्रयोग की जा रही है। वहीं एक अन्य दृश्य में कुछ व्यक्तियों के हाथ में शिकार करते हुए धनुष दिखाया गया है। दूसरी तरफ एक स्थान पर हिरनों का एक झुण्ड चित्रित है जिसमें सबसे आगे वाले हिरन की ग्रीवा पर तीर लगते हुए दिखाया गया है। यह दृश्य अत्यन्त ही रोचक है। एक अन्य शिला पर त्रिशूलनुमा अस्त्र का चित्रण भी देखने को मिलता है। तीन त्रिशूलों में से एक को एक अस्पष्ट पशु की ग्रीवा पर लगते हुए दिखाया गया है। यह पशु कौन सा है इसकी सही पहचान नहीं हो सकी है। किन्तु चित्र से स्पष्ट होता है कि मानव इस समय बड़े तथा छोटे सभी प्रकार के जानवरों का शिकार करने में निपुण हो चुका था।

आखेटकों के एक अन्य चित्र में व्यक्तियों का एक समूह दर्शाया गया है जिसमें दो व्यक्तियों के हाथ में परषु दिखाया गया है। व्यक्ति गतिमान अवस्था में है तथा उनके साथ अन्य व्यक्ति निःशस्त्र ही दिखाये गये हैं। प्रतीत होता है कि शस्त्रधारी व्यक्ति समूह के मुखिया अथवा कुशल शिकारी रहे होंगे जिस कारण उनका चित्रांकन विशेष रूप से किया गया है। इस चित्र के ठीक नीचे दो पशुओं का लड़ते हुए दिखाया गया है। चित्र में दोनों की आक्रामकता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। दायीं ओर स्थित पशु की पहचान कुत्ते के रूप में की जा सकती है जिसके पीछे एक व्यक्ति धनुष लिए खड़ा है। जबकि दूसरा पशु संभवतः कोई क्षेत्रीय जंगली पशु रहा होगा। चित्र को देखकर अनुमान होता है कि तत्कालीन समय में शिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति अपने साथ कुत्ते को भी शिकार के समय साथ ले जाते थे। जो कि शिकार के समय उनकी सहायता करता होगा एवं जंगली जानवरों से प्राणरक्षा भी करता होगा।

पहाड़गढ़ एवं लिखीछाज के शैलचित्रों में चित्रित मानवाकृतियां भावभंगिमा की दृष्टि से अत्यन्त विशेष हैं। उनमें कल्पनात्मक वैभव के साथ-साथ, कलात्मकता एवं मानवोचित सजीवता स्पष्ट दिखाई देती है। ये मानवाकृतियां सामान्य, अनगढ़ एवं सरल हाने पर भी सप्राण प्रतीत होती हैं। मानव को शिकारी के रूप में विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों के साथ दर्शाया गया है। इनमें धनुर्धरों का अंकन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मध्य प्रदेश के अन्य शैलाश्रयों जैसे पंचमढी में स्थित बनियावेरी, जम्बूद्वीप, मांटेरोजा, इमलीखोह, मेह्यूपीप, माड़ादेव, कोहवर तथा सालई, होशंगाबद में आदमगढ़, भोपाल में धरमपुरी, सागर में नरयावली तथा चम्बल घाटी में माड़ी में भी धनुर्धरों का विशेष अंकन प्राप्त हुआ है।[16] धनुर्धरों के अतिरिक्त दण्डधारी एवं परषुधारी मानवाकृतियां भी दर्शनीय हैं। अतः प्रागैतिहासिक काल में चम्बल घाटी में मानव ने जीवन-यापन करना आरम्भ कर दिया था और उसने अपने क्रिया-कलापों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु पक्के रंगों को भी ढूंढ निकाला था। इनकी प्राचीनता निश्चित रूप से मुरैना के इतिहास को और अधिक प्रगाढ़ करती है।

प्रागैतिहासिक कालीन सभ्यता के साथ ही मुरैना जनपद में आद्यऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक संस्कृतियों के प्रमाण भी प्रचूर मात्रा में प्राप्त होते हैं। पुरातात्त्विक अन्वेषणों से विभिन्न पुरास्थल प्रकाश में आये हैं जो कि विभिन्न ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों जिनमें कायथा संस्कृति, कृष्ण एवं रक्त मृदभाण्ड संस्कृतियां प्रमुख हैं। इसके साथ लौहकाल अथवा ऐतिहासिक काल की भी अनेक संस्कृतियों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं जिनमें चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति तथा उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड संस्कृति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मुरैना जनपद में उत्खनन से प्राप्त प्रमुख पुरास्थलों में निम्न स्थलों का उल्लेख किया जा सकता है- कुतवार, रूपेहाती, सिहोनियां, तुतवस, अरोन, इकेहरा, नूनेहरा, रूरिया, पहाड़गढ, बसईया, बिजोलीपुरा, देओरी, जरार, करहरी, खेड़ामहादेव, निबि, ऐतौरा, रानीपुरा, रूर, भौंदरी, छौंदा, हुराई, पिपरसा, रपटा का पुरा, अटा, गुलैथा, बागचीनी व सेहराना।[17]

ऐतिहासिक विवरणानुसार आर्य लोग मध्यदेश में 'जन' अथवा 'समुदाय' के रूप में एकत्रित थे। इन जनों का जितनी भूमि पर अधिकार होता था वह 'जनपद' के नाम से विख्यात हुई। शूरसेन महाजनपद और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भद्रक प्रदेश का उल्लेख रामायण[18] एवं महाभारत[19] दोनों ही महाकाव्यों में मिलता है। ब्रह्मवर्ता के प्रमुख देशों में भी शूरसेन महाजनपद को सम्मिलित किये जाने का विवरण मनुस्मृति में मिलता है।[20] वासुदेवशरण अग्रवाल[21] के मतानुसार चम्बल तथा यमुना नदियों के मध्य प्राचीन 'कुंती प्रदेश' था। जिसे वर्तमान समय में कुतवार या कोतवार कहा जाता है। यह मुरैना जनपद में स्थित प्राचीन ऐतिहासिक क्षेत्र है। महाभारत काल में इस क्षेत्र का स्वामी दन्तवक्र था। कृष्ण एवं दन्तवक्र के युद्धोपरान्त कुंती प्रदेश यादवों के सौराष्ट्र प्रदेश के साथ जा मिला। तभी कृष्ण के अनुगत नायाण गोपाल इस भूमि पर बस गये, जिससे यह क्षेत्र (ग्वालियर-मुरैना) 'गोपालगिरि' कहा जाने लगा।[22]

बौद्ध साहित्य के अनुसार आर्यवर्त में अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, मल्ल, वत्स, चेदि, अवन्ति, अश्मक, कम्बोज और गांधार इन सोलह महाजनपदों का विवरण मिलता है। इनमें से चेदि एवं अवन्ति महाजनपदों का सम्बन्ध मध्यप्रदेश से है। जो कि मगधनरेश शिशुनाग के समय तक उसके आधिपत्य में थे।[23] शिशुनाग के बाद मगध की सत्ता पर नन्द वंश ने आधिपत्य जमाया। कुरु, पांचाल, शूरसेन, अश्मक तथा हैहय क्षत्रिय राज्यों को विजित कर नन्दों ने इन्हें मगध साम्राज्य का हिस्सा बना लिया था।[24] इस प्रकार छठी शताब्दी ई.पू. से चली आ रही महाजनपदों का स्वतन्त्र शासन नन्दों द्वारा समाप्त कर दिया गया। किन्तु नन्द शासक अपनी प्रजा के मध्य लोकप्रिय न थे। उनकी नीतियों से असंतुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के माध्यम से नन्दों को सत्ताच्युत कर दिया तथा मगध पर मौर्य साम्राज्य की स्थापना हो सकी। चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य की सीमाएं मध्य देश तक सीमित न रहीं, इसके अतिरिक्त सौराष्ट्र तथा दक्षिण में मैसूर तक का सम्पूर्ण भाग मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद बिन्दुसार ने पच्चीस वर्ष शासन किया तथा उसके बाद अशोक मौर्य सम्राट बने। मौर्य युग में मध्य प्रदेश का मुरैना क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत ही था। जिसकी पुष्टि मुरैना के समीप दतिया जिले के गुर्जरा से प्राप्त अषोक के अभिलेख से होती है। जिसमें अशोक का परिचय उसके व्यक्तिगत नाम से मिलता है।[25] वहीं गुलाब खां गोरी ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि ग्वालियर दुर्ग के समीप धनोली गांव की पहाड़ी पर एक मौर्य कालीन दुर्ग था। जिसके अवशेषों के रूप में वर्तमान समय में पचास मीटर लम्बी दीवार मिलती है। जिसमें जल निकासी हेतु प्रत्येक सात फिट पर छिद्र बने हुए हैं। यहां पर एक कमरा भी मिला है। दुर्ग के प्रांगण में मूर्तियों के अवशेष भी मिले हैं। संभवतः मौर्य शासकों ने यहां पर किसी प्रशासक को नियुक्त किया होगा।[26]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट अशोक के बाद उनके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों के समान शक्तिशाली न हो सके। अंतिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा कर दी गई। इस परिवर्तन काल में कलिंग सहित उत्तर एवं दक्षिण के अनेक राज्यों से अपनी स्वतन्त्रता स्थापित की। पुष्यमित्र शुंग का साम्राज्य पश्चिम में स्यालकोट तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक रह गया था।[27] विदित होता है कि इस समय पर मध्य प्रदेश के सम्पूर्ण भू-क्षेत्र पर शुंग शासकों का अधिकार रहा। पुष्यमित्र शुंग ने अपने उत्तराधिकारी अग्निमित्र को विदिशा का प्रशासक नियुक्त किया था। माल्विकाग्निमित्रम् के अनुसार पुष्यमित्र के पौत्र वसुमित्र में सिंधु नदी के पास यवन आक्रान्ताओं को पराजित किया। सिंधु को विद्वानों ने चम्बल की सहायक नदी काली सिंध माना गया है।[28]

सातवाहन नरेशों के सिक्के मध्यप्रदेश के दक्षिण-पश्चिम एवं पूर्वी भाग में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र सातकर्णी एवं शक क्षत्रपों के मध्य युद्ध भी मध्यप्रदेश के दक्षिण भाग से ही सम्बन्धित है। सातवाहन वंश के प्रतापी राजा यज्ञश्री सातकर्णी के सिक्के बेसनगर, तेवर तथा देवास से प्राप्त होते हैं।[29] किन्तु सातवाहन शासकों की मुद्राएं या अभिलेख उत्तरी मध्यप्रदेश से प्राप्त नहीं हुई हैं। जिससे मुरैना क्षेत्र के सम्बन्ध में इनका आधिपत्य निश्चित नहीं हो पाता है। इसके साथ ही हिन्द-यूनानियों के द्वारा मध्यप्रदेश पर शासन किये जाने का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है।[30]

जायसवाल महोदय के अनुसार कुषाणों ने नाग राजा को परास्त कर पद्मावती को अपने नियंत्रण में लिया था।[31] पद्मावती की पहचान वर्तमान गोपक्षेत्र में स्थित 'पवाया' नामक स्थान से की गई है। जहां से नागवंशीय मुद्राएं समुचित मात्रा में प्राप्त होती हैं। डॉ. हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार यह नाग राजा 'विभुनाग' था। किन्तु प्रतीत होता है कि द्वितीय सदी ई. के अंतिम चरण तक कुषाणों की क्षीण होती शक्ति का पूर्ण लाभ उठाकर नागवंशीय राजाओं ने पुनः उत्तरी मध्यप्रदेश पर अधिकार स्थापित कर लिया। यह नया साम्राज्य नवनाग वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[32] नाग वंश के साम्राज्य के अनंतर्गत ग्वालियर, मुरैना-शिवपुरी एवं विदिशा का क्षेत्र शामिल था।[33] नागवंशीय शासन के सम्बन्ध में जानकारी का प्रधान स्रोत उनके द्वारा जारी की गई मुद्राएं हैं। जबकि इनसे सम्बन्धित एक मात्र अभिलेख मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा की चैकी पर मिलता है।[34] मुद्राओं के अध्ययन के आधार पर अधिकांश विद्वान् एकमत हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागवंश की स्थापना विदिशा में हुई थी जिसके बाद ये साम्राज्य विस्तार करते हुए ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी तथा मथुरा गये थे। इन सभी स्थानों के नाग एक ही शाखा के थे।

विदिशा से प्राप्त मुद्राओं के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि इस वंश का प्रथम शासक वृषनाथ था।[35] वृषनाथ का उत्तराधिकारी भीमनाग हुआ जिसने अपनी राजधानी विदिशा से पद्मावती (पवाया) स्थानान्तरित कर दी थी। इसके बाद के शासक स्कन्दनाग, वसुनाग तथा वृहस्पतिनाग हुए जिनकी मुद्राएं भी पवाया से मिली है। विदिशा एवं पद्मावती के साथ-साथ नागवंशीय मुद्राएं कान्तिपुर (आधुनिक कुतवार, जिला मुरैना) से भी मिलती है। कुतवार से नाग शासकों की 18959 मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। जिनसे स्पष्टतः यह स्थान नाग शासन का महत्वपूर्ण स्थान था।[36] अंतिम नाग नरेश गणपतिनाग का उल्लेख गुप्त शासकों के अभिलेखों में भी मिलता है।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना श्री गुप्त ने प्रयाग तथा इसके आस-पास के क्षेत्र में की थी। इसके बाद चन्द्रगुप्त प्रथम ने अनेक वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा अपने साम्राज्य का प्रसार किया। चन्द्रगुप्त प्रथम के उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त ने गुप्त राज्य को वास्तविक रूप से साम्राज्य का आकार प्रदान किया। प्रयाग प्रशस्ति समुद्रगुप्त की दिग्विजयों का विषद वर्णन प्रस्तुत करती है। इस विजययात्रा के दौरान समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के नौ तथा दक्षिणापथ के बारह राज्यों से समर्पण करवाया। मध्य भारत के समस्त वन प्रदेशों के राजाओं से उसने सेवा प्राप्त की एवं सीमा प्रदेशों तथा गणराज्यों से करों का उपभोग किया।[37] प्रयाग प्रशस्ति में आर्यवर्त के राजाओं के नाम भी मिलते हैं जिनमें रूद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्म, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नन्दि तथा बलवर्मा शामिल हैं। रैपसन के अनुसार ये नौ राजा विष्णुपुराण में वर्णित नवनाग राजा हैं।[38] किन्तु यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता है। प्रयोग प्रशस्ति में उल्लिखत गणपति नाग तथा नागसेन दोनों ही नागवंशीय शासक क्रमषः विदिशा एवं पद्मावती शाखा से सम्बन्धित थे। जिन्हें पराजित किये बिना समुद्रगुप्त का दक्षिण अभियान सफल नहीं हो सकता था। प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने दक्षिण के राज्यों के प्रति 'राज्यग्रहणमोक्षानुग्रह' की नीति अपनाई तथा इन दक्षिण प्रदेशों को अपनी अधीनता स्वीकार कराकर उनके शासकों को वापस दे दिया।[39] किन्तु आर्यवर्त पर समुद्रगुप्त का सीधा नियंत्रण था। इन राज्यों को बलपूर्वक साम्राज्य में मिलाया गया था। यह नीति राजप्रसभोद्धरण कहलाई। समुद्रगुप्त के पश्चात् भी यह सम्पूर्ण क्षेत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त के नियंत्रण में रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसकी पुष्टि तुमैन स प्राप्त कुमारगुप्त के अभिलेख से होती है, जिसमें घटोतकचगुप्त को वहां का शासक बताया गया है।[40]

स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गयी। निरन्तर हो रहे हूण आक्रमणों तथा अयोग्य शासकों के कारण साम्राज्य निरन्तर छोटा होता गया। हूणों का प्रथम आक्रमण 460 ई. में हुआ जिसमें उन्हें स्कन्दगुप्त ने बुरी तरह से परास्त किया। किन्तु पांचवी सदी के अंतिम व छठी सदी के आरम्भिक वर्षों में हुणों ने तोरमाण के नेतृत्व में पुनः आक्रमण कर पंजाब तथा पश्चिम भारत सहित मध्यप्रदेश के सागर जिले तक विजय प्राप्त की। जिसकी पुष्टि एरण से प्राप्त वराह मूर्ति पर उद्धरित लेख से होती है, जो कि तोरमाण के शासनकाल के प्रथम वर्ष से सम्बन्धित है।[41] इस अभिलेख में तोरमाण का उल्लेख 'महाराधिराज' की उपाधि के साथ मिलता है। तोरमाण का उत्तराधिकारी उसका पुत्र मिहिरकुल हुआ। वह भी अपने पिता की भांति बलशाली था। उसके विस्तृत साम्राज्य की पुष्टि साहित्य एवं अभिलेखों से होती है। ह्वेनसांग ने मिहिरकुल का उल्लेख करते हुए बताया है कि इसकी राजधानी पंजाब में स्थित साकल में थी। वहीं ग्वालियर से मिले मिहिरकुल के अभिलेख से इसके मध्यभारत में शासन होने का भी प्रमाण मिलता है। यह लेख उसके राज्य काल के 15वें वर्ष का है।[42] जिसमें एक सूर्य मंदिर के निर्माण का उल्लेख किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि मिहिरकुल का मध्यदेश पर वर्चस्व अधिक समय तक नहीं रह पाया। मन्दसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि औलिकर वंश के राजा यशोधर्मा ने मिहिरकुल को परास्त किया था।[43] अभिलेख के अनुसार विख्यात विख्यात नरेश मिहिरकुल भी उसके चरणों में सम्मानोपहार लेकर आया था। सम्भव है कि कुछ समय के लिए ग्वालियर-मुरैना क्षेत्र यशोधर्मा के अंतर्गत आ गया हो। किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि मध्य भारत से मिहिरकुल का आधिपत्य स्थाई रूप से समाप्त हो गया था। यशोधर्मा उत्थान अल्पकालिक ही प्रतीत होता है। मिहिरकुल की मृत्यु के पश्चात् हूणों का कोई बलशाली एवं योग्य नेतृत्वकर्ता न हुआ।

उत्तर भारत में हर्षवर्धन के अवसान के पश्चात कन्नौज के सिंहसन पर मौखरी वंश का वीर राजा यशोवर्मन बैठा। यह वीर एवं विजेता पुरुष था। वाक्पति एवं भवभूति जैसे विद्वान एवं साहित्यकार उसके संरक्षण में थे। यशोवर्मन के विषय में अधिकांश विवरण साहित्यिक ही हैं। वाक्पतिराज द्वारा रचित ग्रन्थ गौडवहो में इसकी विजयों का उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार यशोवर्मन ने बंग, गौड़ और नर्मदा से दक्षिण व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूताने को अपने अधिकार में ले लिया था। किन्तु यह साहित्यिक कथन कितना सत्य है इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।[44] यशोवर्मा के विशाल शासित क्षेत्र के विषय में चीनी यात्री ह्वेन सांग ने भी विवरण देते हुए लिखा है कि 'उस मध्यभारतीय राजा के शासित क्षेत्र अत्यन्त विशाल थे, राजा प्रायः स्वयं युद्धों में सेनाओं का नेतृत्व करता था। उसकी अन्य राजाओं से प्रायः मुठभेड़ होती थी और उन युद्धों में वह सर्वदा विजयी रहता था।[45] यशोवर्मन के कुल 25 वर्ष के कार्यकाल में ग्वालियर-मुरैना क्षेत्र पर अवश्य ही यशोवर्मन का आधिपत्य रहा होगा। सम्भवतः इसी कारण कवि भवभूति द्वारा मालती माध्सव नाटक की रंगस्थली के रूप में पद्मावती (पवाया) को चुना। जो कि इस काल में महत्वपूर्ण नगर था।

ग्वालियर क्षेत्र पर यशोवर्मन एवं उसके उत्तराधिकारियों के आधिपत्य के विषय में विद्वानों द्वारा ग्वालियर में रनोड़ से मिले अवन्तिवर्मा के अभिलेख का जिक्र किया है, जिसे यशोवर्मा का ही सम्बन्धी बताया गया है। इसके अतिरिक्त वप्पभट्टसूरिचरित और प्रबन्धकोश नामक जैन ग्रन्थ सूचना देते हैं कि यशोवर्मा की पत्नी यशोदेवी के पुत्र 'आम' ने ग्वालियर एवं कन्नौज पर शासन किया था। साथ ही आम या अम्म द्वारा गोपगिरी में अपना दरबार लगाया गया।[46]

यशोवर्मन की मृत्यु के बाद कन्नौज पर उसके तीन और उत्तराधिकारी आसीन रहे। किन्तु वे शक्तिहीन ही थे। सम्भवतः आठवीं सदी के अंत तक उनके शासन का अवसान हो गया। यह समय उत्तर भारत में राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त अस्थिरता का रहा। कन्नौज अब उत्तर भारत के शासन का केन्द्र बन चुका था, अतः सभी राजवंश कन्नौज को अपने अधिकार क्षेत्र में लेना चाहते थे। इस दौरान कन्नौज पर वज्रायुद्ध का शासन रहा, जिसे कष्मीर के शासक जयापीड़ विनयादित्य के हाथों परास्त होना पड़ा। इसके बाद इसका उत्तराधिकारी इन्द्रायुद्ध शासक बना, जिसके समय में भारत के अनेक राजवंश कन्नौज पर अधिकार हेतु संघर्षरत रहे। दक्षिण से राष्ट्रकूट एवं पूर्व से पालों के मध्य प्रत्यक्ष संघर्ष का प्रारम्भ तब हुआ जब पाल नरेश धर्मपाल ने कन्नौज पर आक्रमण कर इन्द्रायुद्ध के स्थान पर चक्रायुद्ध को शासक बना दिया। इससे पूर्व राष्ट्रकूटनरेश ध्रुव ने इन्द्रायुध को अपने आधिपत्य में लिया था। अतः यह आक्रमण राष्ट्रकूटों के समक्ष चुनौती के समान था। अमोघवर्ष के अभिलेख से यह जानकारी प्राप्त होती है कि ध्रुव के पुत्र गोविन्द तृतीय ने धर्मपाल तथा चक्रायुध की सेनाओं को परास्त किया।[47] इस आक्रमण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामस्वरूप भी उत्तरभारत में राजनीतिक अस्थिरता समाप्त न हो सकी जिसका पूरा लाभ प्रतिहार नरेश नागभट्ट द्वितीय ने उठाया, जिसने चक्रायुध को पदच्युत कर दिया।

इस विजय के साथ ही अगली एक शताब्दी तक उत्तर भारत में प्रतिहार राजाओं की शक्ति की धमक बनी रही। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् वास्तव में प्रतिहारों ने ही उत्तर भारत में राजनीतिक स्थिरता व्याप्त कर हिन्दू संस्कृति की रक्षा की। प्रतिहार साम्राज्य की सीमा पंजाब से मध्य भारत तथा काठियावाड़ से उत्तरी बंगाल तक विस्तृत थी। जिसकी आधारशिला प्रतिहार वंश के प्रथम प्रतापी राजा नागभट्ट द्वारा रखी गयी। नागभट्ट प्रथम द्वारा अरबों के सफल प्रतिरोध ने उसकी प्रतिष्ठा एवं शक्ति को और ऊंचा उठा दिया। इसके बाद वत्सराज का शासनकाल भी शक्ति सम्पन्न व विजयों वाला रहा। राष्ट्रकूटों के लेखों से ज्ञात होता है कि वत्सराज ने गौड़ पर भी आक्रमण किया तथा वहां के राजा को परास्त किया।[48] इस कथन से यह प्रतीत होता है कि वत्सराज के काल में ग्वालियर क्षेत्र समेत कन्नौज एवं उत्तर भारत पर प्रतिहारों की सत्ता रही। वत्सराज के उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय का काल भी युद्धों से परिपूर्ण रहा।

उज्जैन के प्रतिहारों के समक्ष राष्ट्रकूट एवं पालों के रूप में प्रस्तुत चुनौती को नागभट्ट द्वितीय ने स्वीकार किया। दक्षिण से राष्ट्रकूटों के हो रहे निरन्तर आक्रमणों का प्रतिरोध करते हुए भी उसने अपना साम्राज्य विस्तार किया एवं साम्राज्य के केन्द्र के रूप में कन्नौज पर अधिकार स्थापित किया। उसकी सैन्य सफलताओं के विषय में जानकारी मिहिर भोज की ग्वालियर प्रशस्ति से मिलती है। जिसमें उल्लिखित है कि पहले उसने कन्नौज नरेश चक्रायुध को परास्त किया और उसके बाद गौड़ नरेश धर्मपाल का दमन किया एवं अपनी शक्ति के बल पर मालव, आनर्त, तुरुष्क, किरात, वत्स व मत्स्य प्रदेश को अपने अधिकार में ले लिया।[49] किन्तु राष्ट्रकूट अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसकी साम्राज्य विस्तार भी यात्रा को राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने आक्रमण कर बाधित कर दिया। गोविन्द तृतीय को क्षणिक विजय के पश्चात् पुनः दक्षिण में लौटन पड़ा। इससे प्रतीत होता है कि नागभट्ट द्वितीय परास्त तो हुआ किन्तु राष्ट्रकूट उसकी शक्ति कुचल न सके।

गोविन्द तृतीय अपने राज्य के आपसी मामलों में इतना अधिक फंस गया कि वह पुनः उत्तर भारत की ओर आक्रमण न कर सका। फलस्वरूप नागभट्ट द्वितीय के चक्रायुध पर आक्रमण कर उसे अपदस्थ कर कन्नौज को अपने स्वामित्व में ले लिया। इसके बाद उसने बंग नरेश धर्मपाल को भी मुंगेर के पास परास्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया।[50] नागभट्ट के उत्राधिकारी रामभद्र के समय में ही अवश्य ही शासन अस्थित एवं अशांतिपूर्ण रहा। जिसकी पुष्टि मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख से भी होती है। किन्तु यह कहना उपयुक्त होगा कि रामभद्र के काल में भी ग्वालियर-मुरैना क्षेत्र प्रतिहार शासन में ही था। क्योंकि इस समय ग्वालियर पर बाइलभट्ट नाम अधिकारी शासन कर रहा था जो प्रतिहारों का प्रतिनिधि था।[51] इस कथन की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि वराह अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि रामभद्र के पुत्र मिहिरभोज ने पुनः बुन्देलखण्ड को अपने आधिपत्य में लिया। जो कि पाल वंश के आक्रमण के कारण उनके हाथ से निकल गया था। अतः मिहिर भोज से पूर्व तथा उसके काल में ग्वालियर क्षेत्र पूर्णता प्रतिहारों के अधीन रहा।

रामभद्र का उत्तराधिकारी रानी अप्पदेवी से उत्पन्न पुत्र भोज था जिसका नाम अभिलेखों में अनेक उपाधियों के साथ मिलता है। ग्वालियर प्रशस्ति में मिहिरभोज, दौलतपुर अभिलेख में प्रभास तथा ग्वालियर के चतुर्भुज अभिलेख में आदिवराह की उपाधियों से उसका नामोल्लेख किया गया है। मध्यप्रदेश से भोज के तीन अभिलेख मिलते हैं। जिनमें से दो अभिलेख क्रमश: वि. सं. 832 तथा वि. सं. 833 के ग्वालियर से तथा तीसरा ग्वालियर जिले के सागर ताल नामक स्थान से मिला है। इन तीनों ही अभिलेखों से यह पुष्ट हो जाता है कि ग्वालियर-मुरैना सहित मध्यप्रदेश का उत्तरी भू-भाग निश्चित रूप से मिहिर भोज के अधिकार में रहा। मिहिर भोज ने अपने शासनकाल में अनेकों सैनिक अभियान किये। उत्तर भारत की विजय में उसकी सहायता गुहिल हर्षराज नामक सामंत ने की थी, जिसके विषय में चाटसू अभिलेख में कहा गया है कि हर्षराज ने उत्तर के सभी राज्यों को विजयकर भक्तिपूर्वक भोज को अनेक अश्वों के उपहार समर्पित किये। मिहिरभोज दक्षिण में राष्ट्रकूटों के साथ भी संघर्षरत रहा। राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष एवं उसका उत्तराधिकारी कृष्ण द्वितीय दोनों ही भोज के समकालीन थे। उज्जैन पर आधिपत्य की लड़ाई इस काल में अनिर्णित रही। कभी विजय प्रतिहारों को मिली तो कभी राष्ट्रकूटों को। बंगनरेश देवपाल के साथ संघर्ष में यही स्थिति विद्यमान रही। भोज के साम्राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय की तलहटी से दक्षिण में बुन्देलखण्ड एवं कौशाम्बी तक तथा पूर्व में पाल राज्य की पश्चिम सीमा से पश्चिम में सौराष्ट्र तक विस्तृत थी।

मिहिर भोज निश्चित रूप से अत्यंत शक्तिशाली, प्रतापी तथा धर्म की रक्षा करने वाला शासक था। उसके अभिलेखों के अतिरिक्त उसके पराक्रम एवं गुणों की चर्चा अरब यात्री सुलेमान ने भी अपने विवरण में की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उसके अनुसार[52] इस राजा के समान अन्य किसी के भी पास अश्व सेना नहीं थी। भारतवर्ष के राजाओं में उससे बढ़कर इस्लाम का अन्य कोई शत्रु नहीं था। धनादि से सम्पन्न उस राजा के पास बहुसंख्यक ऊंट व घोड़े हैं। उसके सिक्कों पर उद्धरित आदिवराह विरुद से प्रतीत होता है कि वह वराहवतार की ही भांति भारत भूमि को म्लेच्छों से रहित करना चाहता था।[53] निश्चित रूप से मिहिर भोज का काल ग्वालियर क्षेत्र के लिए उन्नति का काल रहा।

मिहिर भोज का उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल प्रथम हुआ। संख्या की दृष्टि से महेन्द्रपाल के अभिलेख भोज से अधिक मिले हैं। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि उसने विरासत में विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य की रक्षा ही नहीं की बल्कि उसे विस्तार भी दिया। उत्तरी बंगाल में राजशाही तथा बिहार के गया, पटना एवं हजारी बाग से प्राप्त दानपरक लेखों में उसे परमभट्टारक महाराधिराज परमेश्वर कहा गया है।

महेन्द्रपाल ने पंजाब के थक्किय वंश को पराजित कर उसके राज्य पर अधिकार किया था किन्तु कल्हण की 'राजतरंगिणी' से विदित होता है कि कश्मीर के राजा शंकरवर्मन की सहायता से थक्किय वंश ने अपने राज्य को प्राप्त करने हेतु संघर्ष किया। इस संघर्ष के फलस्वरूप शंकरवर्मन कुछ भाग पर थक्किय वंश के अधिकार को बनाये रखने में सफल रहा किन्तु करनाल जिले के अधिकांश भाग पर महेन्द्रपाल का अधिकार बना रहा।

बिहार तथा बंगाल के राजशाही जिले के उत्तरी भाग में महेन्द्र पाल के अनेक शिलालेख मिले हैं जो इस तथ्य का सूचक हैं कि बिहार के अधिकांश भाग पर महेन्द्रपाल का अधिकार हो गया था। हजारी बाग के इराखोरी अभिलेख तथा गुनेरिया अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि महेन्द्रपाल ने प्रारम्भिक नौ वर्षों तक अभियान कर समस्त बिहार तथा बंगाल के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। चाटसु अभिलेख से पता चलता है कि गुहिल द्वितीय ने महेन्द्रपाल की पूर्वी अभियानों में सहायता की।

ऊना शिलालेख में उल्लेख है कि सूरक्षेत्र का शासक बलवर्मन तथा उसका पुत्र प्रवनिवर्मन द्वितीय महेन्द्रपाल के सामन्त थे। अतः सूरक्षेत्र पर महेन्द्रपाल का अधिकार बना रहा।

उपरोक्त विवरण से यह प्रकट होता है कि मिहिर भोज के साम्राज्य में महेन्द्रपाल ने पश्चिमोत्तर प्रदेश में कुछ भाग खोया किन्तु पूर्वी प्रदेश में बंगाल तथा बिहार के कुछ प्रदेशों को जीत कर साम्राज्य में मिलाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोज द्वितीय (903-913 ई०) महेन्द्रपाल की अंतिम ज्ञात तिथि 907 ई० है। अतः 908 ई० के लगभग उसका पुत्र भोज द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने 913 ई० तक राज्य किया। भोज द्वितीय एक निर्बल शासक सिद्ध हुआ क्योंकि पूर्वी प्रदेश उसकी साम्राज्य सीमा से विलग हो गये।

पाल शासक नारायण पाल के 54वें वर्ष का बिहार में उछान्तपुर नामक स्थान पर एक शिलालेख से पता चलता है कि उत्तरी बंगाल के जिस भू-भाग पर महेन्द्रपाल ने अधिकार किया था उस पर नारायण पाल ने पुनः अधिकार कर लिया। यह घटना भोज द्वितीय के समय की है। अतः प्रतिहार साम्राज्य की सीमा उत्तर प्रदेश तक सीमित रह गई 1

कलचुरि नरेश कोक्कल ने भोज पर माक्रमरण कर उसके कोष को लूट लिया। बिल्हरी शिलालेख से कोकक्ल द्वारा भोज तथा राष्ट्रकूट कृष्णराज को पराजित करने का तथ्य प्रकट होता है। एक अन्य शिलालेख से ज्ञात होता है कि कोक्कल ने भोज, वल्लभ, चित्रकूट नरेश, श्रीहर्ष तथा शंकरगण को अभयदान दिया। इन अभिलेखों में उल्लिखित भोज द्वितीय ही प्रतिहार शासक था।

भोज द्वितीय के बाद उसका सौतेला भाई महीपाल 913 ई० में शासक बना। यद्यपि राष्ट्रकूटों से उसे पराजय मिली किन्तु अपने अभियानों के कारण उसने भोज द्वितीय गोरवहीन शासन के बाद पराक्रम प्रदर्शित किया। डॉ० प्रभा भोज द्वितीय के शासन काल से महेन्द्रपाल द्वितीय तक की अवधि को गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य के चरमोत्कर्ष काल का अवसान तथा मध्यान्ह काल मानते हैं। भोज द्वितीय के समय से ही साम्राज्य संकुचित होने लगा था। अतः महीपाल प्रथम को शासन सम्भालते ही बाह्य एवं आन्तरिक संकटों का सामना करना पड़ा। खजुराहो अभिलेख से विदित होता है कि भौज द्वितीय के बाद वह चन्देल नरेश हर्षदेव की सहायता से गद्दी पर बैठा।

महीपाल को सर्वप्रथम अपने परम्परागत शत्रु राष्ट्रकूटों के भीषण आक्रमण का सामना करना पड़ा। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ के काम्बे ताम्रपत्र के आधार पर पता चलता है कि राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने " महोदय शत्रु नगर को उन्मूलित कर निर्मूल कर दिया जो नगर कुशस्थल के नाम से विख्यात था।" महोदय गुर्जर प्रतिहार की राजधानी कन्नौज ही थी। आगे इस लेख में कहा गया है कि आक्रमणकारी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग में उज्जैन नगर पड़ा जहाँ पर "कालप्रिय के मंदिर का प्रांगण उन्मत्त हाथियों की सूडों के प्रहार से ध्वस्त हो गया।"

कन्नौज के इस अभियान में इन्द्र तृतीय का सहायक उसका सामन्त नरसिम्ह चालुक्य था। कन्नड़ कवि पम्पा के ग्रन्थ "विक्रमार्जुनविजय" अथवा "पम्पा भारत" में लिखा है कि, "नरसिम्ह ने गुर्जरों के हाथ से विजय देवी को छीन लिया तथा महीपाल वज्रपात से घायल व्यक्ति समान भयभीत हो, बिना खाये-पीये, श्राराम किये तथा अपने को सम्भाले भाग गया जबकि नरसिम्ह ने उसका पीछा करते हुए गंगा-संगम पर पहुँच कर अपने अश्वों को स्नान कराया।" नौसरी ताम्रपत्र डण्डपुर शिलालेख से इस युद्ध की तिथि 916 ई० निर्धारित की जाती है। यह घटना उस समय घटित हुई होगी जिस समय महीपाल प्रथम अपने राज्यारोहण सम्बन्धी आन्तरिक संकट से घिरा हुआा था। उज्जैन के कालप्रिय मंदिर को महाकाल मंदिर से समीकरण किया गया है जिसका उल्लेख काम्बे ताम्रपत्र में हुआ है। इस विवरण से यह तथ्य प्रकट होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय ने कन्नौज पर प्राक्रमरण के लिये अपना अ भियान मार्ग उज्जैन, झाँसी तथा कालपी को चुना था। इस अभियान में उसके सामन्त नरसिम्ह चालुक्य ने साथ दिया था।

महीपाल के अंतिम वर्षों में भी राष्ट्रकूटों ने उत्तरी भारत में अभियान किया। देवली तथा कर्हद लेखों से ज्ञात होता है कि कृष्ण तृतीय ने 940 ई० में यह अभियान किया जिससे महीपाल कालिंजर तथा चित्रकूट की रक्षा न कर सका।

राष्ट्रकूटों से पराजय के बाद महीपाल ने अपनी शक्ति का संगठन किया और विजय अभियान अन्य प्रदेशों की ओर किये। राजशेखर महीपाल प्रथम का राज कवि था। उसके रचित ग्रन्थ 'प्रचण्ड पांडव' या 'बाल भारत' में महीपाल द्वारा विजित प्रदेशों में मुरल, कलिंग, केरल, कुन्तल, रमठ और कुलूत का उल्लेख है। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी ने इनका समीकरण करते हुए कहा है कि मुरल नर्मदा तट के या केरला के निकटवर्ती प्रदेश के निवासी थे जिन्होंने मेखला (अमरकन्टक पहाड़ी जहाँ से नर्मदा निकलती है) के लोगों को सताया था; कलिंग उड़ीसा तट के निवासी थे, केरला, पश्चिमी घाट तथा समुद्र तट के मध्य के निवासी थे; कुलूत पंजाब में व्यास नदी-तट के काँगड़ा जिले के निवासी थे; कुन्तल पश्चिमी - दक्षिणी भारत के लोग थे तथा रमठ उत्तरी भारत में कुलूतों के निकट बसते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजशेखर द्वारा दिये गये महीपाल की उक्त विजयों की शिलालेखों से पुष्टि नहीं होती। डॉ० सत्य प्रकाश का कथन है- "इन सभी भौगोलिक इकाइयों एवं जातियों के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल ने बहुत बड़े भू-भाग पर अधिकार किया था, परन्तु राजशेखर के विवरण के आधार पर विजय-क्रम और मार्ग दोनों में से कोई भी निश्चित नहीं किया जा सकता।" परताबगढ़ शिलालेख ते ज्ञात होता है कि 946 ई० में महेन्द्रपाल द्वितीय (महीपाल प्रथम का पुत्र) का सामन्त उज्जैन में राज्य कर रहा था। डॉ० त्रिपाठी का मत है कि उज्जैन को पुनः हस्तगत महीपाल प्रथम ने ही किया। कहला ताम्रपत्र से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें उल्लेख है कि महीपाल प्रथम के सामन्त गोरखपुर के कलचुरि शासक गुण बोधिदेव के प्रपोत्र मामान ने धार को जीतने का यश प्राप्त किया। दूसरा सामन्त जिसने महीपाल के साथ दक्षिण में अभियान किया, वह चाटसु लेख के अनुसार गुहिल वंशी भट्ट था।

इन विजयों तथा राजशेखर द्वारा वर्णित विजयों का राष्ट्रकूटों द्वारा प्रतिरोध न करने का कारण राष्ट्रकूटों की तात्कालिक संकटमय अन्तरिक स्थिति थी। महीपाल के इन अभियानों की सफलता के लिये अनुकूल स्थिति थी। करहद ताम्रपत्र से विदित होता है कि राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय का उत्तराधिकारी गोविन्द चतुर्थ प्रशासन के कार्यों पर ध्यान देने की अपेक्षा भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर रहा था। गोविन्द चतुर्थ की दुर्बलता पम्प कवि के कन्नड़ काव्य-ग्रन्थ 'विक्रमार्जुन विजय' से भी स्पष्ट होती है जिसमें गोविन्द का अपने सामन्त अरिकेसरिन द्वितीय द्वारा पराजय का उल्लेख है।

इस प्रकार महीपाल प्रथम ने राष्ट्रकूटों से पराजय के बाद अपने साम्राज्य को प्रक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयास किया। नये सुदूर दक्षिणी स्थानों को विजित कर उन्हें अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया क्योंकि उन पर शासन करना कठिन था। उत्तर पश्चिम में सिंघ के कुछ प्रदेश (जिनकी पुष्टि अरब यात्री अलमसूदी करता है), पंजाब का भाग व्यास नदी की सीमा तक, दक्षिण में बुन्देलखंड, पूर्व में उत्तर प्रदेश की पूर्वी सीमा तक तथा पश्चिम में सूर क्षेत्र (उत्तरी काठियावाड़) तक के प्रदेश उसकी साम्राज्य-सीमा में सम्मिलित थे।

परताबगढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि महेन्द्रपाल द्वितीय के पिता का नाम विनायकपालदेव तथा माता का नाम प्रसाधना देवी था तथा वह 946 ई० में शासन. कर रहा था। विनायकपाल महिपाल प्रथम का ही दूसरा नाम था। उज्जैन के एक दानपत्र (942 ई०) में उज्जैन के सामन्त माधव तथा तत्कालीन गुर्जर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट श्री विदग्ध का नाम अंकित है। डॉ० ओझा का मत है कि श्री विदग्ध महेन्द्रपाल प्रथम की उपाधि थी जो उसके कवि होने तथा कवियों का श्राश्रयदाता होने के कारण धारण की गई थी। यह लेख इस बात का भी प्रमाण है कि मालवा साम्राज्य का अंग था। डॉ० ओझा कहते हैं कि महेन्द्रपाल के पश्चात गुर्जर-प्रतिहार साम्राज्य मध्यान्ह से संध्या काल की ओर अग्रसर हो रहा था।

सियोडोनी (ग्वालियर) शिलालेख (948 ई०) के अनुसार किस्तीपाल (महीपाल) के बाद उसका उत्तराधिकारी देवपाल हुम्रा। इस लेख में महेन्द्रपाल द्वितीय का नाम न आना, इस तथ्य का सूचक हो सकता है कि देवपाल तथा उसके भाई महेन्द्रपाल द्वितीय में परस्पर कटु सम्बन्ध रहे होंगे। देवपाल के समय कुछ सामन्तों ने स्वाधीन होने का प्रयास किया। बुन्देलखण्ड के चन्देल सामन्तों ने क्षेत्रीय स्वाधीनता स्थापित कर ली थी। खजुराहो शिलालेख चन्देल धन्गदेव के समय उत्कीर्ण कराया गया था। इसमें चन्देल यशोवर्मन को गुर्जरों के लिये प्रचण्ड अग्नि के समान बतलाया गया है। यह चंदेल प्रतिहार वैमनस्य का सूचक है। इस लेख के आधार पर ही यह ज्ञात होता है कि यशोवर्मन ने कालिंजर पर अधिकार कर लिया तथा उसने बैकुंठ की वह प्रतिमा, जो उसने हेरम्बपाल महीपाल के पुत्र पति देवपाल से प्राप्त की थी, अपने द्वारा निर्मित मंदिर में स्थापित की। मेवाड़ के गुहिल सामन्त-उदयपुर के निकट अहाड़ से डॉ० ओझा को प्राप्त एक शिलालेख के आधार पर यह पता चलता है कि गुहिल शासक ऊलट ने अपने शत्रु देवपाल को मौत के घाट उतार दिया।

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से न होने के कारण केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देवपाल के समय गुर्जर प्रतिहारों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी तथा सामन्तों की स्वाधीनता प्रयासों के कारण साम्राज्य संकुचित होता जा रहा था।

चंदेल धंग के खजुराहो शिलालेख (954 ई०) में सर्वप्रथम विनायकपाल का नाम मिलता है जिसमें अंकित है कि, "विनायकपाल पृथ्वी की रक्षा कर रहा है और शत्रु उस पर अधिकार करने में विवश है।" अतः देवपाल के बाद महेन्द्रपाल द्वितीय का पुत्र विनायकपाल द्वितीय गद्दी पर आसीन हुआ। खजुराहो लेख में उल्लेख है कि "विनायकपाल शत्रु को पथ भ्रमित करने वाला था" जब कि चदेलों के पूर्व लेखों में उन्हें गुर्जरों के लिये अग्निपुंज के समान माना है। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि विनायकपाल ने शत्रुओं का प्रतिरोध सफलता से किया था। इसके अतिरिक्त उसके समय के अन्य कोई तथ्य ज्ञात नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनायकपाल द्वितीय के बाद राजोर शिलालेख के अनुसार उसका भाई विजयपाल 959 ई० में शासक बना। ग्वालियर अभिलेख के आधार पर वह महीपाल प्रथम का पुत्र था। उसके समय साम्राज्य का विघटन तीव्र गति से हुआ।

कृष्ण के गोहरवा अभिलेख से विदित होता है कि त्रिपुरी के कलचुरि नरेश लक्ष्मणराज ने जांगल पांडेय, लाट, गुर्जर तथा कश्मीर पर विजय प्राप्त की। लक्ष्मणराज लगभग 965 ई० में विजयपाल का समकालीन शासक था। गुर्जर की पराजय का विजयपाल की पराजय से समीकरण किया जाता है।

अनहिल पट्टम के चालुक्यों (सोलंकियों) से संघर्ष - प्रतिहार साम्राज्य के दक्षिण में अनहिल पट्टम को राजधानी बना कर मूलराज ने चालुक्य (सोलंकी) राज्य की स्थापना की। खादी ताम्रपत्र तथा गुजरात के इतिहासकार मूलराज को महाराजाधिराज राजी का पुत्र बतलाते हैं जिसने बलपूर्वक सारस्वत मण्डल पर अधिकार किया। वड़नगर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मूलराज ने चपोत्कर नरेश को पराजित कर बन्दी बनाया। इस प्रकार सौराष्ट्र, गुजरात तथा दक्षिणी गुजरात प्रतिहारों के हाथ से निकल गया।

जेजाकभुक्ति के चन्देलों से संघर्ष - 950 से 1000 ई० की अवधि में बंग के शासन काल में जैजाक मुक्ति राज्य शक्ति सम्पन्न हो गया तथा महू अभिलेख के अनुसार उसने कान्यकुब्ज के सम्राट (प्रतिहार विजयपाल) को परास्त कर वह स्वतन्त्र शासक बन गया। धंग की राज्य सीमा में कालिंजर, भास्वत व यमुना नदी का मध्य क्षेत्र तथा चेदि राज्य सीमा से लेकर गोपाद्रि पर्वत तक का भू-भाग सम्मिलित था। सासबाहु प्रभिलेख से विदित होता है कि चन्देलों का सामन्त कच्छपघाट नरेश ने ग्वालियर पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार इतने बड़े भू-भाग का गुर्जर साम्राज्य से निकल जाने पर प्रतिहारों की शक्ति को बड़ा प्राघात लगा। धंग नें 998 ई. में एक ताम्रपत्र के अनुसार बनारस पर भी अधिकार किया था।

विजयपाल के पश्चात् राज्यपाल गुर्जर प्रतिहारों के संकुचित एवं विघटित साम्राज्य की राजधानी कन्नौज की गद्दी पर बैठा। जब वह शासक बना उस समय वह ऐसी स्थिति में नहीं था कि अपने वंश की खोई हुई राज्य लक्ष्मी को पुनः प्राप्त कर सके क्योंकि उसके संकुचित राज्य की सीमा न केवल चारों ओर से शक्तिशाली राज्यों से घिरी हुई थी बल्कि गजनी के मुसलमानों की भारत आक्रमण की योजना, भारतीय राजनैतिक स्थिति को और भी जटिल बना रही थी। डॉ० ओझा का कथन है कि - " प्रतिहार साम्राज्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहासन पर बैठने वाले सम्राटों में राज्यपाल अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण शासकों में से एक था। यद्यपि नाम से वह 'राज्य' का 'पाल' अर्थात् राज्य का रक्षक होना चाहिए था किन्तु वह दुर्भाग्य से राज्य को खोने वाला सिद्ध हुआ।

एक अन्य प्रतिहार शासक यशपाल का पता कड़ा अभिलेख से चलता है। जिसकी तिथि 1036 ई० है। साहेर-माहेर अभिलेख (1118 ई०) से विदित होता है कि यशपाल के बाद गोपाल नामक शासक गाधिपुर में राज्य कर रहा था। चन्द्रदेव गहड़वाल द्वारा कन्नौज पर अधिकार करने के समय गोपाल सम्भवतः वहाँ का शासक था।

त्रिलोचनपाल के बाद गुर्जर प्रतिहारों के उत्तराधिकारियों का कोई विश्वस्त विवरण नहीं मिलता। अतः यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि महमूद गजनवी के कन्नौज धाक्रमण के बाद प्रतिहार वंश का अवसान हो गया।

राजपूताना के स्वाधीन सामन्त –

गुर्जर प्रतिहार राजाओं की क्षीण होती राजनीतिक शक्ति के कारण उनके अनेक सामन्तों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता घोषित कर स्वयं के राजवंशों की स्थापना की। इस क्रम में निम्नलिखित क्षेत्रों में सामंतों द्वारा नये राज्यों का गठन किया गया-

1. राजौर का मथनदेव

2. शाकुम्भरी के चाहमान

4. मेवाड़ के गुहिल

4. पंजाब का स्वतन्त्र राज्य

5. जेजाक्भुक्ति के चंदेल

6. ग्वालियर के कच्छपघात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्छपघात राजवंश -

कच्छपघात राजवंश के उद्भव के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मत-मतान्तर देखने को मिलते हैं। टाड महोदय के अनुसार कच्छपघात राजवंश की उत्पति श्री राम के पुत्र कुश से हुई है। वे कहते हैं कि 'कछवाहा वंश की उत्पति कोशल नरेश राजा राम जिनकी राजधानी अयोध्या थी, उनके पुत्र कुश से हुई है।'[54] परन्तु मनोज माहेश्वरी के मतानुसार ''भाटों एवं चारणों की बहियों का अनुसरण करते हुए यह मत स्थापित हो गया कि राम के पुत्र कुश से कछवाह राजवंश की उत्पति हुई है, किन्तु यह विवरण साहित्यिक स्रोतों पर ही आधारित है।[55] सासबहू मन्दिर के अभिलेख के श्लोक क्रमांक 109 में उल्लिखित 'सौयवंशतिलकाचार्य' के आधार पर कीलहार्न महोदय ने महीपाल को 'सूर्य वंश' का तिलक संबोधित किया है।[56] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कच्छपघात सूर्यवंशी राजा थे।

वैदिक परम्परानुसार नल को कछवाहों का पूर्वज स्वीकार किया जाता है और नरवर को उनकी प्रारंभिक राजधानी माना जाता है। इस मत का समर्थन करते हुए अहमद अली ने नल को नागों का पूर्वज स्वीकार किया है। जिन्होंने पद्मावती, कुन्तलपुरी, विदिशा पर चैथी सदी ई. तक शासन किया था। वे कुन्तपुरी के शासक सूरजसेन को प्रथम कच्छपघात नरेश स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार नाग और कच्छपघात वंश की उत्पति में समानता दिखती है। जब समुद्रगुप्त द्वारा नाग राजाओं को पराजित किया गया तब वे अपना स्थान त्याग कर शूद्रों एवं निषाधों की भांति जीवन-यापन करने लगे एवं अपनी आजीविका हेतु मछली एवं कछुओं का शिकार करने लगे।[57]

अभिलेखों के अध्ययन के आधार पर भी अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं। गंगोलाताल एवं वाच्छिल के अभिलेखों के आधार पर संतलाल कटारे महोदय ने यह मत दिया है कि सन् 977 और 981 के मध्य ग्वालियर पर कच्छपान्वयों का अधिकार था।[58] इस मत का समर्थन करते हुए द्विवेदी जी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सन् 981 ई. के आस-पास दो जनसमूहों में इस क्षेत्र में भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें परास्त होने वाला समूह 'कच्छपान्वय' और विजयश्री पाने वाला समूह 'कच्छपारि' या 'कच्छपघात' था। यह विरुद उन्होनें विजय के उपरांत धारण किया था।[59]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विवेदी जी आधुनिक कुशवाह को ही कच्छपघात स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि कुश से कुशवाह शब्द की उत्पति मानना कठिन है। कुशवाह का शाब्दिक अर्थ होगा 'कुश का हनन करने वाला' इस प्रकार 'कच्छपघात' और 'कछवाह' का शाब्दिक अर्थ समान है।[60]

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर कच्छपघातों की तीन शाखाओं के विषय में जानकारी मिलती है-

1. ग्वालियर की कच्छपघात शाखा

2. दूबकुण्ड की कच्छपघात शाखा

3. नरवर की कच्छपघात शाखा

ग्वालियर की कच्छपघात शाखा -

ग्वालियर के कच्छपघात राजवंश सम्बन्धी इतिहासक्रम पर प्रकाश डालने हेतु हमारे पास किसी प्रकार के समकालीन ऐतिहासिक साहित्य का अभाव दिखता है। फिर भी जिन ग्रन्थों में कच्छपघात राजवंश का उल्लेख हुआ है उनमें फजल अली की रचना कुलियाते ग्वालियर है, जिसमें 82 कछवाहा राजाओं के नाम व उपलब्धियों का वर्णन प्राप्त होता है।[61] इसमें प्रथमतः सूरजसेन का उल्लेख एक जमींदार के रूप में किया गया, जिसका नाम ग्वालिपा सिद्ध द्वारा सूरजपाल रख दिया गया। ग्वालिपा सिद्ध के आशीर्वाद से कोढ से मुक्त हुए सूरजपाल ने सिद्ध के आदेश से ग्वालियर दुर्ग का निर्माण तथा सूजरकुण्ड की स्थापना की। तब सिद्ध ने यह आशीर्वाद दिया कि तेरे औलाद मुद्दत तक इस किले पर हुकुमत करेगी, जब तक खुद को पाल के नाम से कहलाए।[62] फजल अली के ग्रन्थ में मुख्यतः सूफी संतों की जीवनियों का संग्रह किया गया है। अकबर के काल में रचित इस ग्रन्थ का आधार ब्राह्मणों से प्राप्त राजवलियां एवं पूर्वजों से सुनी कथाएं हैं।

इसके अतिरिक्त मूलतः तोमर राजवंश का इतिहास लिखने वाले लेखक खड्गराय द्वारा रचित गोपाचल आख्यान में भी यह विवरण मिलता है कि गोपाचल का इतिहास सूर्यपाल से प्रारम्भ होता है इसका मूल नाम सोनपाल था, जिसे ग्वालिपा सिद्ध ने सूर्यपाल कर दिया था। सोनपाल को इस ग्रन्थ में सूर्यवंशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कछवाहा कहा गया है, जिसने गोपाचलगढ़ तथा सूर्यकुण्ड की नींव रखी थी। इस ग्रन्थ में सूर्यपाल के बाद 84 राजाओं की सूची दी गई है। जिसमें अंतिम राजा का नाम तेजपाल या दूल्हाराजा दिया गया है।

द्विवेदी महोदय के अनुसार फजलकृत कुलियाते ग्वालियरी में तोमरों के पूर्व के राजाओं की वंशावलियां बहुत अधिक प्रमाणिक नहीं हैं।[63] साथ ही खड्गराय मूलतः तोमरों के इतिहासकार हैं। अतः ग्वालियर के तोमरों के पूर्व ग्वालियर के इतिहास की प्रामाणिकता की खोज गोपाचल आख्यान में करना उचित प्रतीत नहीं होता है।[64] इस कारण ग्वालियर के कच्छपघात सम्बन्धी इतिहासक्रम की जानकारी हेतु हमें पुरातात्विक स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है। ग्वालियर एवं उसके आस-पास के स्थानों से प्राप्त अभिलेखों के द्वारा हमें ग्वालियर के कच्छपघात राजवंश की जानकारी मिलती है। जिनमें निम्नलिखित अभिलेख प्रमुख हैं -

- वि. सं. 1034 का सिंहोनिया से प्राप्त जैन प्रतिमा लेख (977 ई.)
- वि. सं. 1150 का सास-बहू मंदिर प्रस्तरलेख (1093 ई.)
- वि. सं. 1161 का ग्वालियर से प्राप्त प्रस्तर लेख (1104 ई.)
- वि. सं. 1165 का ग्वालियर से प्राप्त प्रस्तर लेख (1108 ई.)
- तिथिवहीन ग्वालियर दुर्ग से प्राप्त प्रस्तर लेख

उपरोक्त अभिलेखों के अतिरिक्त वि. सं. 1038 का अभिलेख भी महत्वपूर्ण है। 25 पंक्तियों के इस लेख का संपादन के. वी. रमेश द्वारा एपिग्राफिक इण्डिका भाग XL में किया गया है।[65] अभिलेख में कच्छपवंश का उल्लेख मिलता है। इस कच्छपवंश के मंत्री के रूप में गुग्गा का उल्लेख किया गया है, जो नन्दकुल से संबंधित था। अभिलेख में नंदकुल का वंशक्रम भी प्राप्त होता है। जिसमें माधव, गुग्गा, जुम्भिल, कक्कुक, वाच्छिल के नाम शामिल हैं। वाच्छिल की ज्ञात तिथि 981 ई. पू. है। इस प्रकार गुग्गा की संभावित तिथ नवीं सदी का अंतिम चरण प्रतीत होती है। इससे कच्छपघात राजवंश की प्राचीनता के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मण -

सास-बहू मंदिर अभिलेख में प्रथम राजा के रूप में लक्ष्मण का उल्लेख हुआ है। अभिलेख के श्लोक संख्या पांच में लक्ष्मण की प्रषंसा की गई है। अभिलेख में इसे 'कच्छपघात वंश तिलकः क्षोणीपतिल्लक्ष्मणः' कहा गया है। अभिलेख की इस पंक्ति को आधार बनाकर ही अनेक विद्वानों ने लक्ष्मण को कच्छपघात वंश का संस्थापक राजा स्वीकार किया है। अभिलेख में अन्य उल्लेख में उसे अपने पराक्रम से इन्द्र के पुत्र को छोटा बनाने वाला, संपूर्ण पृथ्वी के राजाओं में पूजनीय, अपने धनुष से असहायों की सहायता करने वाला, प्रजा का हित करने वाला, पृथु के समान पृथ्वी को अपने संकल्प से आज्ञाकारी बनाने वाला, अपनी सैन्य शक्ति के बल पर बड़े-बड़े राजाओं को जड़ से उखाड़ फेंकने वाला कहा गया है।[66] किन्तु अभिलेख से इसकी किसी स्पष्ट राजनैतिक उपलब्धि का ज्ञान नहीं हो पाता है, न ही उसके द्वारा शासित राज्य की सीमा का विवरण अभिलेख में दिया गया है। सिंहोनिया से कच्छपघात वंश का प्रथम एवं प्राचीनतम अभिलेख मिलता है इसे आधार बनाकर द्विवेदी महोदय कहते हैं कि लक्ष्मण ने अपने साम्राज्य का आरम्भ कुतवार एवं सिंहोनिया क्षेत्र से ही किया होगा।[67] प्रतीत होता है कि सिंहोनिया में शक्ति अर्जित करने के बाद लक्ष्मण द्वारा ग्वालियर पर अधिकार किया गया था।

एक अन्य तिथि विहीन अभिलेख में भी लक्ष्मण का नामोल्लेख प्राप्त होता है। ए. के. सिंह द्वारा संपादित इस अभिलेख में लक्ष्मण नाम दो बार पढ़ा गया। जिसमें लक्ष्मण प्रथम वज्रदामन का पिता तथा लक्ष्मण द्वितीय वज्रदामन का पुत्र बताया गया है।[68] वहीं इनसे पहले विजया केशव सिंन्हा द्वारा संपादित इसी अभिलेख में लक्ष्मण का उल्लेख वंश के संस्थापक एंव वज्रदामन के पिता के रूप में मिलता है।[69] अन्य किसी लक्ष्मण क उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। सास-बहू मंदिर अभिलेख से लक्ष्मण की पहचान वज्रदामन के पिता के रूप में होती है, जबकि लक्ष्मण द्वितीय कौन था ? यह कहना अत्यन्त कठिन था। क्योंकि सास-बहू मंदिर के अभिलेख में वज्रदामन के उत्तराधिकारी के रूप में मंगलराज का नाम मिलता है। कैलाषचन्द्र जैन ने अपने ग्रन्थ मध्यप्रदेश थ्रो द एजेज के द्वितीय भाग में मत्ततयूर के चालुक्य शासक नरसिंह के पुत्र केसरी द्वारा लाट एवं कछवाहा राजा को पराजित करने का उल्लेख किया है। यह विजय उसने राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय के निर्देष पर की थी। कछवाहा राजा की पहचान यहां पर ग्वालियर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मणराज से की गई है। एच. सी रे[70], बी. डी. मिश्रा[71], हरिहर निवास द्विवेदी[72], माइकल डी. विलिस[73] आदि परवर्ती इतिहासकार लक्ष्मण का शासन काल 950-975 ई. स्वीकार करते हैं।

वज्रदामा/वज्रदामन -

लक्ष्मण के पश्चात् उसका पुत्र वजदामा शासक हुआ। महीपाल के वि. सं. 1150 (सन् 1093 ई.) के सास बहू मंदिर अभिलेख (श्लोक 6-7) से इसका प्रशंसात्मक विवरण प्राप्त होता है। अभिलेख में इसे 'क्षितिपति विशेषण से संबोधित किया गया है। अभिलेख में इसकी राजनीतिक उपलब्धियों में गाधिनगर (कन्नौज) के राजा को अपने अपराजित बाहुदण्ड से पराजित कर गोपाद्री दुर्ग पर विजय दुम्दुभी बजाने का श्रेय देता है मैं (वजदामा) किसी राजा से इस संसार में तोला नहीं जा सकता. इस उत्कण्ठा से शुद्ध सोने से अपने को स्वयं तौलवाया। इसकी अन्य किसी राजनीतिक उपलब्धि की सूचना अभिलेख से ज्ञात नहीं है। सुहानिया लेख में इसके लिए महाराजाधिराज उपाधि का प्रयोग इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वि. सं. 34 (977 ई.) तक इसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी।

गोपाद्रि दुर्ग विजय-

गुर्जर प्रतिहारों की राजनीतिक अस्थिरता, सामंतो की स्वतंत्रता, कमजोर शासन सत्ता का लाभ उठा। लगभग सन् 954-977 ई. के मध्य वज्रदामा द्वारा गोपाद्रि दुर्ग पर अपना अधिकार स्थापित किया गया। रे, के अनुसार पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में वज्रदामा द्वारा पराजित गाधिनगर के राजा की सही पहचान मुश्किल है। संभवतः यह कन्नौज का कोई कमजोर शासक था, जो महीपाल प्रथम (लगभग सन 914-43 ई.) का उत्तराधिकारी था। इसकी पहचान विजयपाल (तिथि सन् 960 ई.) से की है। रे कच्छपघातों को गुर्जर प्रतिहारों का सामंत मानते है। जिसे प्रमाणित करने हेतु साक्ष्यों का अभाव है। द्विवेदी जी गाधिनगर के राजा की पहचान विनायकपाल से करते है, तथा इसकी ओर से दुर्ग पर किन्ही कच्छपान्वयो का अधिकार, वि. सं. 1038 के शिलालेख के आधार पर स्वीकार करते है। किन्तु इस अभिलेख से कच्छपान्वयो का अधिकार दुर्ग पर सिद्ध नही होता।" पीछे इसका वर्णन किया जा चुका है।

विनायक पाल (प्रथम महीपाल) के वि. स. 999-1000 (सन् 942-43) के रखेतरा शिलालेख के आधार पर शिशिर कुमार मित्र ने ग्वालियर दुर्ग पर सन् 942-43 ई. तक गुर्जर प्रतिहारों का अधिकार स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। सन् 944-977 ई. के मध्य दुर्ग इनके हाथ से निकला होगा।[74] धंग के खजुराहो अभिलेख (सन् 954 ई.) से ज्ञात होता है कि उस समय गुर्जर प्रतिहारों का अधिकार दुर्ग पर नहीं था। गुर्जर प्रतिहारों का लगभग सन् 750-943 ई. तक दुर्ग पर अधिकार रहा। विनायक पाल देव के समय दुर्ग इनके हाथ से निकल गया। संभवतः सन् 954 ई. के कुछ पहले गोपादि दुर्ग पर कच्छपघात राजवंश के वज्रदामा ने अधिकार किया हो।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि कच्छपघात वज्रदामन ने यह विजय स्वतंत्र रूप से नहीं प्राप्त की बल्कि यह विजय एक सामंत के रूप में अपने अधिपति की ओर से प्राप्त की। शिशिर कुमार मित्र ने अपने लेख "द कान्क्वेस्ट ऑफ गोपादि बाई द कच्छपघातास में यह मत व्यक्त किया है कि कच्छपघातों द्वारा गोपाद्रि दुर्ग विजय, परतंत्र रूप से, चंदेलों की ओर से उस समय की गयी, जब वे गुर्जर प्रतिहारों से स्वतंत्र होना चाहते थे। इस मत के समर्थन में वे निम्न तर्क देते है-

वि. सं. 1011 (सन् 954 ई.) के चंदेल शिलालेख में धंग के राज्य की सीमा का उल्लेख किया गया है।

आकालंजरमाच मालवनदी तीरास्थिते भास्वतः
कालिन्दीसरितस्तटादित इतोप्याचेदि देशावधेः ।
आतस्मादपि विस्मयैकनिलयाद् गोपाभिधानाद्गिरेर्यः
शास्तिक्षितिमायतोर्जित भुज व्यापार लीलार्जिताम् ।।[75]

अर्थात् "धंग ने अपने आयत भुजाओं के व्यापार से लीला में ही कालिंजर तक तथा बेतवा (मालव नदी) के किनारे स्थित भास्वत (भेलसा-विदिशा) तक और वहां से यमुना के किनारे तक और फिर यहां से चेदि देश की सीमा तक और गोप नामक 'विस्मय के निलय पर्वत तक की भूमि को प्राप्त कर लिया है। उपर्युक्त समस्त क्षेत्र अपनी भुजाओं से खेल-खेल में ही जीत लिया। तथापि यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह प्रतीत होगा कि इस उल्लेख के अधिकांश क्षेत्र यशोवर्मा द्वारा जीते जा चुके थे और धग को उन्हें पुनः जीतने की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित ग्वालियर का किला उसकी नवीन उपलब्धियों में प्रमुख था।[76]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपरोक्त विवरण में जिस प्रकार वह अपनी सीमा रेखा में यशोवर्मा द्वारा जीते हुए क्षेत्र शामिल किए है उसी प्रकार संभावना है कि ग्वालियर गढ़ पर आक्रमण के समय उसने वज्रदामा के सहयोगी के रूप में साथ दिया हो और मित्र राज्य को अपनी सीमा रेखा में शामिल कर लिया हो। यदि उसने यह विजय स्वतंत्र रूप से की होती तब इतने ख्याति प्राप्त दुर्ग की विजय का उल्लेख अन्य शब्दों में किया जाता।

आर. के. दीक्षित, शिशिर कुमार मित्र आदि अनेक विद्वान धंग के इस दावे को सही मानते हुए कच्छपघातों को चंदेलो के अधीनस्थ स्वीकार करते है।[77] जबकि इसी अभिलेख में वह आगे विनायकपालदेव को अपना स्वामी स्वीकार करता है। धंग का दावा छत्रसाल के दावे जैसा ही है। छत्रसाल बुन्देला की प्रभाव सीमा के विषय में निम्न दोहा मिलता है-

इत जमुना उत नर्मदा, इत चबल उत टाँस।
छत्रसाल सो लरन की परी न काहू हाँस ।।

गोपगिरि न छत्रसाल के कब्जे में रहा और न धंग के ऐसे कई उदाहरण प्राप्त है. जब राजकवियों ने अपने अधिपतियों की प्रशंसाएं बढ़ा चढ़ा कर की है।

सास-बहू मंदिर अभिलेख वि. स. 1150 (सन् 1093 ई.) में महीपाल के समय लिखा गया, चूंकि वज्रदामा, महीपाल से छः पीढ़ियों के अन्तर से था और औसत 25 वर्ष के अन्तराल पर लगभग 950-980 ई. में वह शासक हुआ। इस समयान्तराल में तथ्यों के उलटफेर की संभावना बढ़ जाती है। यह सत्य है कि वज्रदामा और महीपाल के शासनकाल में कई पीढ़ियों का अन्तर है और तथ्य बदल भी सकते है, पर यदि वज्रदामा का वि. स. 1034 (सन् 977 ई.) का सिहोनिया (मुरैना) से प्राप्त जैन प्रतिमा अभिलेख देखें जिसमें वजदामा की उपाधि महाराजाधिराज प्राप्त होती है जिससे वह परतंत्र या सामंत शासक प्रतीत नहीं होता। मथनदेव के राजौर अभिलेख से स्पष्ट है कि उस समय महाराजाधिराज किसी सामंती शासक की उपाधि न थी।

सास बहू मंदिर अभिलेख में आगे उसके द्वारा शुद्ध सोने से स्वयं को तौलवाने की सूचना ज्ञात है इस आधार पर कुछ विद्वान उन्हें प्रारंभ में चंदेलो की ओर से पुनः स्वतंत्र रूप से शासन करने की बात स्वीकारते हैं, किन्तु किसी भी अभिलेख में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। संभावना यह अधिक है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चंदेल राजा, जो कि गुर्जरो के सामत थे, स्वतंत्र होना चाहते थे और वज्रदामा के कुशल नेतृत्व में उन्होंने उसका साथ दिया हो, दूसरी तरफ यदि धंग ने वजदामा की सहायता अधिपति के रूप में की होती तब निश्चित ही इस सैनिक महत्व वाले दुर्ग की विजय का उल्लेख अपने अभिलेख में तो अवश्य ही करता जबकि ऐसा कोई उल्लेख उसने नहीं किया सिर्फ अपनी सीमा में उस क्षेत्र को शामिल कर संतुष्टि प्राप्त की। चंदेल धंग और वज्रदामा कच्छपघात गुर्जर प्रतिहार के विरूद्ध हुये युद्ध में एक साथ सम्मिलित हुये।[78] वज्रदामा ने यह विजय स्वतंत्र रूप से प्राप्त की और इस कार्य में उसका सहयोग महत्वाकांक्षी चंदेल राजा धंग ने संभवतः मित्र के रूप में स्वार्थवश किया।

एक अन्य तिथि विहीन लेख (लिपि आधारित तिथि बारहवी शता. ई.) में वज्रदामा का उल्लेख लक्ष्मण के पुत्र के रूप में प्राप्त होता है। एच.सी. रे[79] माइकल डी विलिस[80], बी.डी. मिश्रा[81] आदि विद्वान लगभग सन् 975-95 तक इसका शासनकाल निर्धारित करते हैं। इसके विपरीत एच. व्ही. त्रिवेदी" लगभग सन् 950-980 ई. के मध्य इसका शासनकाल स्वीकार करते हैं।

मंगलराज-

वज्रदामा के पश्चात् उसका पुत्र मंगलराज शासक हुआ। सास बहू मंदिर अभिलेख (श्लोक 8) में उससे संबंधित निम्न प्रशंसात्मक उल्लेख वर्णित है। "उन (वजदामा) महाराज से शत्रु अन्धकार को सहस्र किरणों से दूर करने वाले मंगलराज नाम के राजा हुये, जो ईश्वर के प्रति एक प्रणाम के द्वारा अनेकों राजाओं को झुका सके।" अभिलेख से इसकी उपाधि नृप ज्ञात होती है।[82] इसकी किसी भी राजनीतिक उपलब्धि की सूचना अभिलेख से ज्ञात नहीं होती। त्रिवेदी इसे 'शिवभक्त' मानते हैं। द्विवेदी जी के अनुसार वे 'यज्ञेश्वर' की पूजा करते थे।" अभिलेख में महेश्वर शब्द राजाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है जो उसे शिवभक्त सिद्ध नहीं करता है।

अनेक विद्वान बयाना (भरतपुर, राजस्थान) ऊख मंदिर प्रस्तर अभिलेख में वर्णित मंगलराज को कच्छपघात 'मंगलराज' से समीकृत करते है। इस आधार पर हरिहर निवास द्विवेदी ने गोपाचल के कच्छपघातो का राज्य भदानक के श्रीपथ नगर (वर्तमान बयाना) तक स्वीकार किया है।[83] इस मत के समर्थन हेतु पर्याप्त साक्ष्यों का अभाव है। संभवतः भविष्य में कुछ प्रकाश डाला जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तिराज-

सास-बहू मंदिर अभिलेख[84] (श्लोक 9-11) में मंगलराज के उत्तराधिकारी के रूप में कीर्तिराज का उल्लेख ज्ञात है। अभिलेख में उद्धृत पंक्तियाँ निम्नलिखित है –

मंगलराज से कीर्तिराज नाम के राजा हुऐ जो चढ़ाई के समय अपनी सेना द्वारा उड़ाई गई धूल से एक साथ सूर्य देव को तेज विहीन कर अपने शत्रुओं को भी तेज रहित कर दिया ।।9।।

पराक्रम के समुद्र इस (कीर्तिराज) राजा के बारे में क्या कहें ? इनकी कथा आश्चर्यमयी है। युद्ध में मालवपति एवं अनेको दण्डधारी राजाओं को जीत लिया, जिससे भयभीत सैनिक अनेक दिशाओं में भाग गए और उनके द्वारा छूटे असंख्य तीरों एवं मालों को ग्रामीणों ने बीनकर अपने गृहों को आच्छादित (क) कर लिया। ।10।।

कीर्तिराज महाराज ने अद्भुत सिंहपानीय नगर में पार्वती पति (शिव) का मंदिर निर्मित करवाया जो कीर्ति स्तम्भ की तरह है।। 11 ।।

सास-बहू मंदिर अभिलेख कीर्तिराज को मालवपति या मालवभूपति को पराजित करने का श्रेय देता है, किंतु अभिलेख मालवपति के नाम और क्षेत्र के संबंध में मौन है। एच.सी.रे. इसकी (कीर्तिराज) तिथि लगभग सन् 101535 ई. स्वीकरते हुए महमूद गजनवी (सन् 998-1030 ई.). चंदेल विद्याधर (सन् 1019 ई.) और परमार भोज (सन् 1021 ई.) को इसके समकालीन मानते है इसका समर्थन द्विवेदी भी करते है।[85] एच. सी. रे, कीर्तिराज द्वारा पराजित मालवपति की पहचान परमार भोज से करते है, तथा विद्याधर को कीर्तिराज का अधिपति मानते है।[86]

यहां यह उल्लेखनीय है कि ककनमठ मंदिर (सिहोनिया, मुरैना) के गर्भगृह की पिछली दीवार (बाहर की ओर) पर वि. सं. 1044 (सन् 987 ई.) तिथि उत्कीर्ण है।" सास-बहू मंदिर अभिलेख में ककनमठ मंदिर के निर्माता का नाम कीर्तिराज' ज्ञात होता है। इस आधार पर कीर्तिराज सन् 987 ई. के पूर्व शासक बन चुका था। संभवतः वह 1980 या 985 ई. के मध्य शासक बना। इस अभिलेख के प्रकाश में आने पर इस शाखा के राजाओं की तिथि पुनः निर्धारण की आवश्यकता प्रतीत होती है। अनुमानतः इसकी तिथि 980 या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

985-1035 ई. निर्धारित करना उचित प्रतीत होता है। संभावना यह अधिक है कि इसने अन्य शासकों की अपेक्षा अधिक समय तक शासनसत्ता संभाली।

कीर्तिराज को चंदेल राजा विद्याधर का सामंत माना जाता है। चंदेल अभिलेख (महोबा) में विद्याधर यह दावा करता है कि कलचुरि चन्द्र और भोज ने विद्याधर की वैसी ही पूजा की जैसे कोई शिष्य अपने गुरु की करता है। पाठक का मत है कि विद्याधर का विवरण अतिरंजित है। इससे यह सिद्ध होता है, कि भोज को विद्याधर के विरुद्ध कोई सफलता नहीं मिली होगी। मालव राजकुमारों का एक असफल आक्रमण ग्वालियर पर हुआ था। संभवतः इसी अवसर पर विद्याधर ने अपने सामंतो (कच्छवाहों) की सहायता कर भोज के विरूद्ध अप्रत्यक्ष सफलता पायी, जिसका सन्दर्भ चंदेल अभिलेख में आया है।[87] कच्छपघात और चंदेल अभिलेख के अध्ययन से यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि कीर्तिराज की सहायता विद्याधर ने एक सहायक के रूप की हो, जिसका उल्लेख अभिलेख से ज्ञात होता है। दूसरी ओर दूबकुण्ड अभिलेख से अर्जुन कच्छपघात विद्याधर का सामंत नही बल्कि उसका सहयोगी जान पड़ता है। महीपाल के अभिलेख में कीर्तिराज की विजय का उल्लेख सिद्ध करता है कि वह एक महान शासक था। जिस तरह वह सिहोनिया में मंदिर निर्माण कार्य करा रहा था, उससे कही भी वह सामती शासक प्रतीत नहीं होता। एच. सी. रे[88], शिशिरकुमार मित्र[89] एवं हरिहर निवास द्विवेदी[90] आदि विद्वान फारसी इतिहासकारों के विवरण से महमूद गजनी के ग्वालियर गढ़ को घेरे रहने तथा वहां के हाकिम द्वारा संधि की शर्तो के फलस्वरूप उपहार प्राप्त कर वापस लौटने की बात स्वीकारते है।

शिशिर कुमार मित्र, ग्वालियरगढ़ के शासक की पहचान कीर्तिराज से करते हैं।[91] गुलाब खाँ गौरी के मतानुसार मंगलराज कच्छपघात ने सन् 1008 ई. में महमूद गजनवी के विरूद्ध आनंदपाल की मदद की थी, जिस कारण महमूद ने बदला लेने के लिए ग्वालियर गढ़ को घेरा। चार दिन तक गढ़ को घेरे रखने के बाद कीर्तिराज द्वारा संधि स्वरूप दिए गए उपहार लेकर वह वापस लौटा। मिश्रा का मत है कि महमूद का उद्देश्य दौलत प्राप्त करना था, गढ़ जीतना या सल्तनत बनाना नही। इस मुस्लिम वृत्तांत की पुष्टि अन्य किसी लेखक द्वारा नहीं की गई है। संभावना यह हो सकती है कि मालवपति को पराजित करने के उपरांत उसने एक और युद्ध करना उचित न समझा हो और अपने हाकिम को भेज संधि कर ली हो। कीर्तिराज एक प्रभावशाली योद्धा था और ग्वालियर दुर्ग को सुरक्षित रखने के योग्य था।[92] कीर्तिराज के समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कच्छपघातों की राजधानी सिहोनिया थी किन्तु इस मत के समर्थन हेतु ठोस या प्रत्यक्ष प्रमाणों का अभाव है। अन्य अभिलेखों से इसके संबंध में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती।

मूलदेव-

सास-बहू मंदिर अभिलेख[93] (श्लोक 12-14) में मूलदेव का उल्लेख इस प्रकार वर्णित है "उस कीर्तिराज से महान बुद्धिमान पृथ्वीपति भुवनपाल नाम से प्रसिद्ध मूलदेव राजा पैदा हुए, जो प्रशंसनीय चक्रवर्ती चिन्हों से सुसज्जित संसार को आनन्दित करने वाले, महाराज मनु के समान कीर्ति वाले हुए, मूलदेव के अन्य राजाओं से रहित संपूर्ण पृथ्वी के पालक होने से तीनों लोकों में प्रसिद्ध (त्रिलोक्यमल्ल) युद्ध में विजेता होकर संसार को शत्रुविहीन कर दिया उस राजा के देवव्रता नाम की रानी विष्णु भगवान की पत्नि लक्ष्मी की तरह थी, उससे देवपाल नाम के राजा मूलदेव के पुत्र हुये। महीपाल के अभिलेख (सास-बहू मंदिर) से इसकी उपाधि पृथ्वीपति भुवनपाल, त्रैलोक्यमल्ल तथा वि. स. 1161 के शिलालेख में भुवनपाल, क्षितिपाल वर्णित है। इसके द्वारा किए गए अन्य कार्यों व राजनीतिक उपलब्धियों की सूचना अभिलेखों से ज्ञात नहीं होती है। द्विवेदी जी ने गोपक्षेत्र के कच्छपपात लेख में मूलदेव के दो राजकुमारो 'देवपाल' एवं 'सूर्यपाल' का उल्लेख किया है।[94] जबकि इसी लेख में आगे वे देवपाल के पुत्र के रूप में सूर्यपाल का वर्णन करते है।[95] वि. स. 1161 के अभिलेख में मूलदेव के अधिकारी का उल्लेख श्लोक 11-13 में ज्ञात होता है, जो भुवनपाल (मूलदेव) की एक 'सचिव' की तरह सेवा करता था। एक तिथि रहित अभिलेख जिसका संपादन विजया केशव सिन्हा द्वारा किया गया। इस अभिलेख में मूलदेव की त्रैलोक्यमल्ल एवं भुवनमल्ल' 'देव' उपाधि पढ़ी गई। मल्ल उपाधि के आधार पर रे महोदय का मत है कि मल्ल उपाधि कल्याणी के चालुक्यों में प्रयुक्त होती थी। संभवतः इनका कुछ संबंध इनसे रहा हो, परन्तु इसे प्रमाणित करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य नहीं।[96]

देवपाल-

मूलदेव के पश्चात मूलदेव और रानी देवव्रता के पुत्र देवपाल उत्तराधिकारी हुए। अभिलेख (सास-बहू मंदिर अभिलेख, श्लोक - 15) में उसकी प्रशंसा की गई। "वह (देवपाल) राजा दान देने में कर्ण धनुर्विधा में पार्थ (अर्जुन) की तरह, सत्य बोलने में युधिष्ठर और विनयी हुए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवपाल के समय की अन्य किसी घटना का उल्लेख अभिलेख से ज्ञात नहीं होता है। वि. सं. 1161 के शिलालेख में उसे 'अपराजित' उपाधि प्रदान की गई है।[97] अभिलेखों के अध्ययन से इसका औपचारिक एवं प्रशंसात्मक विवरण ज्ञात होता है। सम्भवतः देवपाल ने पदमपाल के ग्वालियर दुर्ग पर राज्यारोहण होने पर सूर्यपाल के साथ सिहोनिया में अपनी निवास स्थली बनाई हो तथा पद्मपाल की असामयिक मृत्युपरांत सूर्यपाल के पुत्र महीपाल ने ग्वालियर दुर्ग पर अपनी राजधानी स्थापित की। कनिंघम इसकी तिथि लगभग 1030 ई स्वीकार करते है।

पद्मपाल-

सास बहू मंदिर अभिलेख में देवपाल के उत्तराधिकारी का नाम पदमपाल वर्णित है अभिलेख में उससे संबंधित विवरण इस प्रकार ज्ञात होता है। उन राजा देवपाल के निर्मल बुद्धि वाले प्रजागणो के पुण्य से चक्रवर्ति राजाओं में श्रेष्ठ पदमपाल नाम के राजा पुत्र रूप में हुए, जिन्होंने सभी राजाओं के स्वामी होते हुए भी कर वसूली शत्रुराजाओं से करते हुए विजय प्रमाणों में बार-बार सेना द्वारा उड़ाई गई धूल से सूर्य को ढक दिया। अपने अधीन दिशाओं को करके उन्होंने अपनी सेना के घोड़ों के समूह द्वारा दक्षिण दिशा भी अनेकों बार रौंदी। पद्मपाल राजा के शासन में भ्रम, लोभ, कठोरता का अभाव है। दुर्गुणों से पीड़ा नहीं, सज्जन सताये नहीं जाते धनुष व असि (तलवार) कोई धारण नहीं करता फिर भी पद्मपाल राजा शत्रुओं को जीत लेता था, आदि प्रशंसात्मक विवरण (श्लोक 16 से 24 तक) किया गया है। श्लोक 25 में उसके धर्म के प्रति झुकाव के संकेत मिलते हैं। श्लोक 26 में हरि के भवन (मंदिर) के निर्माण कराने का वर्णन तथा श्लोक 27-29 तक मंदिर से संबंधित उल्लेख किया गया। है। श्लोक 30 मे वर्णन मिलता है कि ब्राह्मणों में देवताओं की तरह प्रतिष्ठित राजा पद्मपाल युवा अवस्था में ही भाग्य के प्रतिकूल होने से स्वर्गवासी हो गए।[98]

प्रशस्ति में पद्मपाल को 'चक्रवर्तियों का तिलक' तथा प्रजापालन में मान्धाता के समान बतलाया गया है। इसके 'चक्रवर्ति तिलक' विरूद्ध ग्रहण करने से त्रिवेदी का मानना है कि इसने अपने अधिपतियों (चंदेलों) से स्वतंत्रता पा ली थी। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है कि ऐसा कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं, जो इन्हें स्पष्टतः चंदेलों के अधीन सिद्ध करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मपाल ने प्रतिपन्थिन या परिपन्धियों (डाकुओं) का उन्मूलन किया। मध्य युग में व्यापारियों के लिए ये डाकू बहुत बड़ा संकट थे पद्मपाल द्वारा डाकुओं को नष्ट किए जाने से यह प्रतीत होता है कि सुहानिया और ग्वालियर उस समय मुख्य व्यापारिक केन्द्र बन गये थे।[99] उसने पृथ्वी के चारों ओर विविध आक्रमण किए तथा बाद में भारत के दक्षिण की ओर आक्रमण किए। इसने दक्षिण विजय किन राजाओं के विरूद्ध की इसका स्पष्ट साक्ष्यों के अभाव में उल्लेख करना कठिन है। उसने अपने शासन काल में हरि (विष्णु) का मंदिर बनवाया जिसका नाम उसके बाद पद्मनाथ पड़ा।[100] वि. सं. 1161 के शिलालेख में पद्मपाल का भुवनपाल के पौत्र और देवपाल के पुत्र के रूप में उल्लेख किया गया । वि. सं. 1150 के शिलालेख में युवैव' शब्द का प्रयोग उसके युवावस्था में ही संक्रन्दन (इन्द्र) के अंकासन में चले जाने अर्थात स्वर्गवासी होने से संबंधित है।

सूर्यपाल –

महीपाल के वि. सं. 1180 के शिलालेख (श्लोक - 31) में सूर्यपाल का पदमपाल के चाचा तथा महीपाल के पिता के रूप में उल्लेख किया गया है।

तस्य भ्राता नृपतिरभवत्सूर्यपालस्य सुनु

श्री गोपादों सुकृत निलयः श्रीमहीपालदेवः ।[101]

कुछ विद्वानों ने सूर्यपाल को पदमपाल का भाई स्वीकार किया है। अभिलेख से ज्ञात होता है कि सूर्यपाल, मूलदेव का पुत्र तथा पद्मपाल का चाचा था। इससे संबंधित अन्य किसी घटना का उल्लेख अभिलेख में नहीं किया गया है। देवपाल के पश्चात् पुत्र पदमपाल शासक हुआ संभवतः देवपाल के भ्राता सूर्यपाल ने अपना निवास स्थल सिहोनिया को बनाया, जिस कारण पद्मपाल की मृत्यु उपरांत महीपाल ने गोपाद्री पर शासन किया। सिहोनिया का पुरातात्विक वैभव यह संकेत करता है कि इस स्थान को सामरिक महत्व प्राप्त था तथा इस परिवार के कुछ सदस्य जो राजा के संबंधी थे, वहां अवश्य रह रहे थे। अभिलेख में इसकी उपाधि 'नृप' ज्ञात होती है। नृप उपाधि से द्विवेदी जी इसे सामंत या स्वतंत्र राजकुमार नहीं मानते है। आगे वे खडगराय के 'गोपाचल आख्यान के सूर्यपाल की पहचान अभिलेख में वर्णित सूर्यपाल से करते है। इसकी तिथि का निर्धारण कनिंघम ने सन् 1060 ई. किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीपाल-

पद्मपाल का चचेरा भाई, सूर्यपाल का पुत्र महीपाल, पद्मपाल की असामयिक निसंतान मृत्युपरांत शासक हुआ। महीपाल ने अपनी राजधानी गोपाद्री दुर्ग पर स्थापित की।

तस्य भ्राता नृपतिरभवत्सूर्यपालस्य सूनुः
श्री गोपद्रौ सुकृतनिलयः श्रीमहीपाल देवः ।[102]

सन् 1104 ई. के शिलालेख से भी गोपालिकेरा (ग्वालियर) को राजधानी बनाने के संकेत मिलते हैं।

अधिष्ठाय गोपालिकेराधिपत्ये बभौ भूमिपालो महीपालदेवः ।।[103]

सास-बहू मंदिर अभिलेख (वि. स. 1150) में (श्लोक 32-67) उसकी प्रशंसा अनेको पौराणिक उपमा उपमानों से की गयी है। अभिलेख में उसे मंत्रियों को बढ़ाने वाले, ब्राह्मणों को पालने वाले, शत्रुओं पर प्रलय ढाने वाले, तेज के पुंज, सूर्य को छोड़कर उनके सामने कोई तेजस्वी नहीं, अमर देवों से उत्पन्न आप साक्षात वीर रस है, दो भुजाओं से पृथ्वी की रक्षा करने वाले, आप कृष्ण शरीर वाले भगवान कृष्ण के समान है, याचकों की इच्छापूर्ति कर्ता, शत्रुओं की आयु नष्ट करने वाले, स्वयं बलभद्र है, आप हलायुध भगवान बलदाऊ जी के प्रतिरूप है, आपका सौन्दर्य आश्चर्यकारी, मछली चिन्ह वाले पुरुषोत्तम् भगवान के समान, दुश्मन राजाओं की कन्याओं के पति, आप वज्रधारण करने वाले, संपूर्ण देवताओं में वंदनीय गुरु ब्रहस्पति के प्रिय, कुबेर की तरह अच्छे गुणों की निधि (खजाना) है, अपनी विशाल भुजाओं से हठपूर्वक सभी राजाओं को परास्त करने वाले, महान तेजस्वी है, आप समाज के नेत्रों को कमल की तरह आनन्द देने वाले, राजकीय कर की सामान्यता से सभी जनों को संतुष्ट करने वाले, निरन्तर शासकों के मस्तक पर पैर रखने वाले इस मृत्यु लोक के चन्द्र, समाज आपको हरि का अंश कहते है। निर्मल ज्ञान वाले, आप श्यामल सुन्दर शरीर वाले सत्यनिष्ट, आपकी कीर्ति समुद्र तक फैली है, और आपका वंश उन्नति को प्राप्त है, धर्म को पैदा करने वाले, सत्यधनी, अनेको हाथियों की सेना वाले, पृथ्वी के एक मात्र मल्ल (कुश्ती लड़ने वाले) विद्याओं से युक्त शरीर वाले आप पवित्र राजा है, भाइयों की इच्छा तृप्त करने वाले, गंधर्व राजाओं की सेना पर विजय पाने से यश प्राप्त किया, राजाओं के सहित शत्रु गणों के घमंड को नष्ट करने वाले, सतोगुणी, तलवार से शत्रुओं के घमण्ड को नष्ट करने वाले मित्रगणों को प्रसन्न करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले, बड़े-बड़े राजाओं से आपके चरण कमल सुशोभित है, गुणों से युक्त आपने मूर्खों को तिरस्कृत कर दिया, आदि प्रशंसात्मक विवरण अभिलेख में वर्णित हैं।

श्लोक 49 में उसे भाइयों की इच्छा तृप्त करने वाला कहा गया, जिससे प्रतीत होता है कि उसके भाई भी थे जिनके नाम अभिलेख से ज्ञात नहीं। श्लोक 50 में उसके द्वारा गंधर्व राजाओं की सेना पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख किया गया। गंधर्व राजा का नाम व विजय क्षेत्र की जानकारी नहीं मिलती। उसके अन्य समकालीन राजाओं से मंत्री या वैमनस्यपूर्ण संबंध थे, लेकिन स्पष्टतः नहीं कहा जा सकता कि वे किस वंश से संबंधित थे। श्लोक - 68 में उसके द्वारा वैतालिको (चारण भट्ट) की प्रशंसा से प्रसन्न होकर दान देने, कारागार के कैदियों को छोड़ने, सबको अभयदान देने का उल्लेख किया गया है।

श्लोक 69-70 में महीपाल द्वारा राज्याभिषेक के समय ली गयी दो प्रतिज्ञाएं-

1. जिस मंदिर को उसके पूर्वज पद्मपाल ने अल्पायु होने से पूर्ण न कर सके उसे पूरा करवाने तथा

2. अपनी कन्या का विवाह सुयोग्य वर से करवाने का संकल्प लिया गया। विवेकशील राजा द्वारा ये प्रतिज्ञायें पूर्ण की गई। राजा ने कन्या का विवाह कामदेव के समान सुन्दर वर से कर दिया। अभिलेख से कन्या का नाम व विवाह से संबंधित राजवंश का नाम ज्ञात नहीं। ऊंचा तथा कभी नष्ट न होने वाली कीर्ति से सुशोभित 'श्री पद्मनाथ का देव मंदिर बनवाया। यह नाम उसने अपने पूर्वज की स्मृति बनाये रखने हेतु रखा होगा। श्लोक 71 उसे निरालसी (पराक्रमी), सभी काम करने दान देने 'राजाओं में चक्रवर्ती' (श्लोक - 72). आगे श्लोक 73-109 तक उसके द्वारा मंदिर में मूर्ति स्थापना, मंदिर की व्यवस्था, दिये गये दान आदि का वर्णन किया गया। श्लोक 109 में राजा की प्रशंसा पुनः की गयी तथा सूर्यवंश के श्रेष्ठ राजा (महीपाल) के आचार्य एवं मंत्री विद्वान गौर' की तुलना ब्रहस्पति से की गयी।

महीपाल का उल्लेख वि. स. 1161 (1104) के अभिलेख में भी किया गया। इसमें उसकी उपाधि 'भुवनैक्यमल्ल' दी गयी है इस अभिलेख में उसके उत्तराधिकारी का नाम खण्डित हो चुका है।[104] पी.सी. राय ने 'द क्वाइनेज ऑफ नार्दन इण्डिया में महीपाल के सिक्कों का उल्लेख किया है।[105] इसके कुछ सोने के तथा लगभग 400 चांदी के सिक्के ज्ञात हैं, जिनमें सोने के सिक्कों पर अग्रभाग पर श्रीमान महीपाल देव लेख लिखा है, जो सामान्यतयः 'आसनस्थ देवी प्रकार के है। कनिंघम इस महीपाल की पहचान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोमर 151 राजा से करते है जिसकी तिथि 1103-1123 है। बनर्जी का मत है 12 कि सोने के सिने प्रतिहार महीपाल जिसकी तिथि प्रारंभिक दसवीं शता. ई. ने भी जारी किए थे। 313 चांदी के सिक्के झांसी से खोजे गये जो ग्वालियर के समीप है। ये सिक्के महीपाल कच्छपघात के है, इन चांदी के सिक्को के साथ मदन वर्मा (चंदेल) के पांच चांदी के सिक्के प्राप्त हुए " हैं। मदन वर्मा महीपाल के कुछ समय बाद शासक हुआ। 150 जोशी के मतानुसार सास बहू मंदिर से महीपाल की सैनिक शक्ति का ज्ञान होता है यह कच्छपघात महीपाल ही था, जिसके दो अभिलेख प्रथम वि. सं. 1150, द्वितीय वि. स. 1161 में प्रकाश में आये जोशी के मतानुसार ये सिक्के विशुद्ध चांदी के न थे, इनमें भिन्न मात्रा में ताँबा मिलाया गया था जिसका प्रतिशत 10% - 40% तक था। महीपाल का देहावसान 154 सन् 1104 ई. के कुछ समय उपरांत हुआ। कनिंघम[106] इसकी तिथि सन् 1075 ई. स्वीकारते है।

रत्नपाल-

महीपाल के उपरांत सास-बहू मंदिर अभिलेख से अन्य किसी उत्तराधिकारी की सूचना नहीं मिलती। वि. सं. 1161 (1104 ई.) के अभिलेख में महीपाल के उत्तराधिकारी का नाम खण्डित हो चुका है।[107] हरिहर निवास द्विवेदी ने वि. सं. 1165 के एक अन्य अभिलेख की संक्षिप्त जानकारी ग्वालियर दर्शन में प्रकाशित अपने लेख 'गोपक्षेत्र के कच्छपघात' पृ. 208-209 में दी है। द्विवेदी जी के अनुसार लेख में लक्ष्मण से लेकर रत्नपाल तक के नाम मिलते हैं, इसमें ग्वालियर का उल्लेख 'गोपक्षेत्र' के रूप में किया गया है। द्विवेदी जी का मत है कि रत्नपाल ने 1135 ई. तक अवश्य राज्य किया होगा।[108] बी.डी. मिश्रा ने इसे परवर्ती प्रतिहार शासक माना है। अभिलेखिक साक्ष्य इस मत का खण्डन करते हैं एक तिथिविहीन अभिलेख (लिपि आधारित तिथि बारहवी शती ई.) से यह प्रमाणित हो चुका है, कि रत्नपाल कच्छपघात शासक है। अभिलेख से प्राप्त पांच नाम लक्ष्मण, वज्रदामन लक्ष्मणराज, रत्नपाल और उसके उत्तराधिकारी का उल्लेख है। रत्नपाल से संबंधित अन्य कोई राजनैतिक सूचना अभिलेखों से ज्ञात नहीं होती। हरिहर निवास द्विवेदी एवं विलिस इसकी तिथि 1130-35 के मध्य स्वीकार करते है।

खड़गराय के अनुसार 'अंतिम पाल राजा तेजकरण या दूल्हा या ढोला राजा अपने भानजे परमलदेव परिहार को गोपाचल की व्यवस्था सौंप कर देवसा (दौसा) के बड़गूजर राजा की राजकुमारी मारौनी से विवाह करने चला गया। दूल्हाराजा ने जब अपना ग्वालियर राज्य वापस मांगा तब वह मुकर गया। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार ग्वालियर पर परिहारों का राज्य प्रारंभ हुआ। जयपुर के कछवाहों की अनुश्रुति में दूल्हा राजा नरवर का राजा था। नरवर व आसपास के क्षेत्र में इससे संबंधित गीत गाए जाते हैं दूल्हाराजा की तिथि सन् 1128 ई. में स्वीकार की जाती है और इस समय इसे ग्वालियर और नरवर दोनों स्थलों का राजा मानना संभव नहीं है। संभव है कि जयपुर की अनुश्रुतियों में उल्लेखित दूल्हा राजा नरवर के वीरसिंह कच्छपघात के वंशज हो क्योंकि वीरसिंह की तिथि 1120 ई. और दूल्हा राजा की तिथि सन् 1128 ई में 8 वर्ष का अंतर है।[109]

ग्वालियर शाखा के रत्नपाल का शासन लगभग 1105-1135 के मध्य स्वीकार किया जाता है। रत्नपाल के तिथिविहीन लेख में उसके उत्तराधिकारी का उल्लेख मिलता है। गौरीशंकर ओझा के अनुसार 'ढोला-मारू दा दोहा के काव्य का समय स. 1500 विक्रमी के लगभग है, किंतु अन्य अनुश्रुतियों में ढोलामारू सन् 1128 में ग्वालियर गढ़ अपने भानजे परिहार परमालदेव को सौंपकर स्वयं दोसा चला गया। इन घटनाओं में काल्पनिकता अधिक है इनकी मान्यता है कि आम्बेर (जयपुर) के कछवाहे नरवर से उत्पन्न हुए जिन्होंने ग्वालियर पर अधिकार किया ये ग्वालियर शाखा से हैं अर्थात नरवर से उत्पन्न हुए तत्पश्चात् ग्वालियर गढ़ जीता और यहां से आम्बेर में विस्थापित हुए उनके अनुसार ग्वालियर के कछवाहा राजा वज्रदामा के छोटे बेटे, मंगलराज के दो पुत्रों से दो शाखाएँ चली जिनमें बड़े पुत्र कीर्तिराज के वंशज कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तक ग्वालियर के राजा बने रहे और छोटे पुत्र सुमित्र के प्रपौत्र देवानोक के पुत्र ईशासिंह (ईश्वरीसिंह) के बेटे सोढदेव ने वि.सं. 1125 (सन् 1078 ई.) के करीब राजपूताना में आकर दौसा में राज्य जमाया, जिसके बाद आम्बेर राजधानी हुई। 17 वैदिक परम्परा के अनुसार सोड़देव अपने पुत्र दूल्हाराय (तेजकरन) के साथ वि.सं. 1128 (1071 ई.) में ग्वालियर छोड़कर जयपुर के पूर्व में 50 किलोमीटर दूर बूढांड राज्य गया, राज्य के सुदृढ़ होने पर दौसा में बड़गूजर और तत्पश्चात् मीनाओं को अपदस्थ कर वहाँ भी सत्ता स्थापित की।

टाड सोढदेव (सोरासिंह) को नरवर का शासक मानते हैं। सोढ़देव की मृत्युपरांत उसके भ्राता ने भतीजे और भाभी को राज्य से निस्कासित कर दिया। दूल्हाराय की माँ उसे लेकर खोहगाँव (जयपुर से ढाई कोश दूर) मीना जाति के राज्य पहुँची। जब सूर्यवंश की राजवधू का परिचय मीना राजा को ज्ञात हुआ, तो उसे अपनी बहन व दूल्हे राय को भानजे की तरह पाला । इस समय दिल्ली में तवरवंश के राजा के प्रभुत्व से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीनाराज ने 14 वर्ष की आयु में दूल्हाराय को दिल्ली भेजा। वे वहाँ 5 वर्ष रहे। मीना जाति के कवि से इनका परिचय हुआ। उसकी (कवि) सलाह से मीनाराज को समाप्त कर दूल्हाराय ने खोहगाँव पर अधिकार कर लिया, वहां शक्ति संचित कर ढूढार, आमेर व वर्तमान जयपुर राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। दूल्हाराय ने बडगूजर राजकुमारी और अजमेर की राजकुमारी से विवाह किया। दूल्हाराय की पीढ़ी में पजौनी का उल्लेख मिलता है। पजौनी का विवाह चौहान सम्राट पृथ्वीराज की बहन से हुआ। पजौनी ने शहाबुद्दीन को परास्त किया तथा चंदेलों की निवास भूमि महोबा को अपने अधिकार में कर लिया। पजौनी का पुत्र मलैसी आमेर में शासनरत हुआ। मलैसी के पश्चात् 11वीं पीढ़ी में पृथ्वीराज राजा हुए। पृथ्वीराज अपने पुत्र भीम द्वारा तथा भीम अपने पुत्र आसकर्ण (आसकरण) द्वारा मार दिया गया। सम्राट (हुमायूं व बाबर) ने इन्हें 'राजा' की उपाधि से सम्मानित कर नरवर का राज्य दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 'आसकरण कछवाहा' नामोल्लिखित वि.सं. 1636 (सन् 1579 ई.) 75 तथा वि.सं. 1639 (सन् 1582 ई. } के दो लेख गंगोलाताल, ग्वालियर दुर्ग से प्राप्त हुए हैं। इसी शाखा में मानसिंह ने मुगलों के समय ख्याति अर्जित की। मुगलों के समय में आंबेर के कछवाहों को ग्वालियर और नरवर जागीर में दे दिया गया। उपरोक्त विवरण के संबंध में कोई ठोस प्रमाण न मिलने से अभी कुछ भी कहना संभव नहीं है।

हरिहर त्रिवेदी[110] ने रिंगनोंद ग्राम से प्राप्त वि.सं. 1190 (1132-33 ई.) तथा राजस्थान के डूंगरपुर जिले के ठाकरदा नामक ग्राम से प्राप्त अभिलेख के आधार पर कच्छपघातों के अनुवंशजों का इतिहास निश्चित करने का प्रयास किया है। रिंगनोंद (जिला-रतलाम) अभिलेख से पृथ्वीपाल (सन् 1085-1105 ई.), तिहुणपाल (सन् 1105-1125 ई.) तथा विजयपाल (सन् 1125-1145 ई.) के नाम ज्ञात हैं। त्रिवेदी जी ने पृथ्वीपाल का समीकरण महीपाल, तिहुणपाल का त्रिभुवनपाल भुवनपाल से किया है। ठाकरदा ग्राम से ज्ञात शिलालेख में विजयपाल के पश्चात सूरपाल एवं अनंगपाल का नाम ज्ञात होता है। त्रिवेदीजी के मतानुसार कच्छपघात महीपाल के अनुवंशज मालव - भूमि में आ बसे जहाँ वे सन् 1155 ई. तक राज्य करते रहे। उनका मत है कि महीपाल के दो पुत्र थे, रत्नपाल और त्रिभुवनपाल (तिहुणपाल) रत्नपाल बड़ा होने के कारण गद्दी पर बैठा तथा छोटा भाई त्रिभुवनपाल मालव-भूमि चला आया।

बी.डी. मिश्रा ने रत्नपाल' का उल्लेख 'परवर्ती प्रतिहार शासक के रूप में किया है तथा इसका समय सन् 1105-1130 ई. के मध्य स्वीकार किया है। उनका मत है कि परवर्ती प्रतिहारों ने सन् 1105 से 1251

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक निर्वाध रूप से शासन किया। वि.सं. 1277-1290 (मलयवर्मन) तक ग्वालियर पर इसी वंश का राज रहा। जब सुलक्षणपाल का ग्वालियर पर अधिकार था शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमण किये जाने पर सुलक्षणपाल ने गौरी से संधि कर दस हाथी भेंट किए। इस प्रकार गढ़ पर सुलक्षणपाल का ही अधिकार बना रहा। द्विवेदी जी के मतानुसार महीपाल रत्नपाल और उनके उत्तराधिकारी के उपरान्त भी निरन्तरता के नियम के अनुसार कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा गोपाचलगढ़ पर अधिकार करने तक (सन् 1200 ई. तक) कच्छपघात राजा ही राज्य करते रहे।[111] अभिलेखिक साक्ष्य इस मत को स्पष्ट करते हैं कि रत्नपाल कच्छपघात राजवंश का शासक था न कि परवर्ती प्रतिहार वंश का रत्नपाल के उपरांत सन् 1135-1196 ई. तक इतिहास अस्पष्ट है अभिलेखिक साक्ष्य के रूप में वि.सं. 1249 (सन् 1192 ई.) के नरेसर (जिला - मुरैना) प्रस्तर लेख में 'अजयपाल' तथा 'गंगोलाताल' (ग्वालियर दुर्ग) से प्राप्त वि.सं. 1251 (सन् 1194 ई.) के लेख में 'अजयपालदेव' का नाम ज्ञात है। एक तिथिविहीन लेख में अजयपाल देव और 'श्री वछराजदेव' नाम ज्ञात होता है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वि.सं. 1177 (सन् 1120 ई.) का इंदौर (गुना) से ज्ञात स्मारक स्तम्भ लेख में 'अजयपाल' नामक योद्धा के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने व युद्ध क्षेत्र में हत होने का उल्लेख है। इन अभिलेखों में वंश का नाम ज्ञात नहीं है। ग्वालियर और नरवर के मध्य चिटाली ग्राम में वि.सं. 1207 (सन् 1150 ई.) का रामदेव प्रतिहार का लेख ज्ञात है।

अजयपाल के पश्चात् सुलक्षणपाल (हसन निजामी का सोलंखपाल खड्गराय का लोहगदेव) को गौरी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। गुलाब खाँ गौरी सन् 1196 (592 हिजरी) के शवान के महीने में गौरी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया जिसका प्रतिरोध सारंगदेव (सोलंकपाल) ने किया, बाद में संधि हो जाने पर इस संधि की शर्त उसे माननी पड़ी। इसके पश्चात् गंगोलाताल से वि.सं. 1282 (1225 ई.) का मलयवर्मन प्रतिहार का लेख प्राप्त होता है, जो इस समय गढ़ पर प्रतिहार राजवंश का शासन होना सिद्ध करता हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य अभिलेख गंगोलाताल से प्राप्त हुए हैं। जिनका उल्लेख ए. के. सिंह ने अपने लेख में किया है। इन अभिलेखों में वि.सं. 1636 (1579 ई.) का अकबर के समय का अभिलेख महत्वपूर्ण है लेख में 'परमभागवत आसकरन' का उल्लेख है। आसकरन का कछवाहा राजा के रूप में उल्लेख वि.सं. 1639 (1582 ई.) के अभिलेख में हुआ है। लेख में उसे 'श्री महाराज राजो' कहा गया है।[112] अतः सन् 1135 ई. के पश्चात् ग्वालियर गढ़ पर किस राजवंश का अधिकार था। यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता, जब तक कि अजयपाल व सुलक्षणपाल के वंश का नाम ज्ञात न हो जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ -

1 इम्पिरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम - 10, पृ0 134-135

2 पी0 वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्राज, वॉल्यूम - 4, पृ0 743

3 चतुर्भुज मामोरिया एवं एस0 एम0 जैन, यूनीफाइड भोपाल, 1997, पृ0 94-95

4 मार्कण्डेय पुराण - पाराचर्मण्वती तपरी; वायुपराण - पाराचर्मण्वती देण;
मत्स्य पुराण - फरा च धनवन्तीरूपा; कूर्म पुराण- चर्मण्वती तथा दया।

5 सुधीर कुमार त्रिवेदी, मध्यभारत की प्रतिहार कालीन कला एवं स्थापत्य, पृ0 33

6 महाभारत, 1/140

7 मेघदूतम, 1/46

8 अष्टाध्यायी, 8/2/12

9 हेमचन्द्र रायचौधरी, स्टडीज इन इंडियन एंटीक्यूटीज, 1932, पृ0 122

10 आरती अग्रवाल, मध्यप्रदेश राज्य के चम्बल संभाग का एक भौगोलिक मूल्यांकन, 2017, पृ0 109-111

11 प्रतिमा कुमार, मध्य प्रदेश: एक भौगोलिक अध्ययन, 2003, पृ0 1

12 अग्रवाल, आरती, पूर्वोक्त, पृ0 12

13 राजकुमार शर्मा, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भग्रन्थ, 1974, पृ0 7

14 जगदीश चन्द्र गुप्त, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, 1960, पृ0 101

15 वही, पृ0 102

16 वही, पृ0 267-278

17 राजकुमार शर्मा, मध्य प्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भग्रंथ, 1974, पूर्वोक्त, पृ0 7

18 वाल्मिकी रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 43/10

19 महाभारत, सभापर्व, 14/26, 27, 28

20 मनुस्मृति, 2/19

21 वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, पृ0 75

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22 कृष्णा गुप्ता, ग्वालियर संभाग की ब्राह्मणीय मूर्तियों की वृहद विवेचना, अप्रकाषित शोध प्रबन्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, 1987, पृ0 11

23 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 11

24 धीरेन्द्र वर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 69

25 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 167

26 गोरी, गुलाब खां, ग्वालियर का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, दिल्ली, 1986, पृ0 8

27धीरेन्द्र वर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 71

28 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 16

29 वही, पृ0 19

30 वही, पृ0 20

31काशीप्रसाद जायसवाल, अंधकार युगीन भारत, 1938, पृ0 13

32 हरिहर निवास द्विवेदी, मध्यभारत का इतिहास, ग्वालियर, 1959, पृ0 468

33 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 27

34 हरिहर निवास द्विवेदी, ग्वालियर के अभिलेख, पृ0 16

35 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 27

36 वही, पृ0 29

37 वासुदेव उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1952, पृ0 54

38 वही, पृ0 55

39 वही, पृ0 72-73

40 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 173

41 वही, पृ0 40

42 उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोक्त, पृ0 143-144

43 हरिहरनिवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ0 23

44 वासुदेव उपाध्याय, पूर्वमध्यकालीन भारत, भारत दर्पण ग्रन्थ माला, प्रयाग, 1952, पृ0 30-31

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

45 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तरभारत का राजनीतिक इतिहास, पृ0 78-79

46 त्रिपाठी, आर. एस., हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1936, पृ0 211

47 वासुदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0 31

48 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 58

49 विशुद्धानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ0 135

50 वासुदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ0 32

51 राजकुमार शर्मा, पूर्वोक्त, पृ0 59

52 त्रिपाठी, आर. एस., पूर्वोक्त, पृ0 246-247

53 विशुद्धानन्द पाठक, पूर्वोक्त, पृ0 150

54 जेम्स टाड, एनल्स एण्ड एण्टीक्ीटीज ऑफ राजस्थान, भाग तृतीय, 1971-87, मद्रास, पृ. 1328

55 मनोज माहेश्वरी, मध्यकालीन नरवर, 2007, ग्वालियर, पृ. 347

56 इण्डियन एण्टीक्योरी, जिल्द XV, पृ. 41, 46

57 अहमद अली, कच्छपघात आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, जयपुर, पृ. 1

58 हरिहर निवास द्विवेदी, गोपक्षेत्र के कच्छपघात, ग्वालियर दर्शन से उद्धृत, पृ. 186-187

59 वही, पृ. 186

60 वही, पृ. 188

61 हरिहर निवास द्विवेदी, गोपाचल आख्यान, प्रथम संस्करण, ग्वालियर, पृ. 18

62 फजल अली, कुलियात-ए-ग्वालियरी, संपादक मोहन कुमार माथुर, ग्वालियर, पृ. 36-39,51

63 हरिहर निवास द्विवेदी, गोपाचल आख्यान, पृ. 32

64 वही, पृ. 31

65 के.वी. रमेश, अनपब्लिश्ड इंस्क्रिप्शन इन द ग्वालियर, एपिग्राफिका इण्डिका, जिल्द XL, पृ. 191-94

66 एच. सी. रे, डायनेसिटक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, 1973, भाग - 2, पृ. 822

67 हरिहर निवास द्विवेदी, गोपक्षेत्र के कच्छपघात, पृ. 194

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

68 ए. के. सिंह, ए कच्छपघात इंस्क्रिप्शन फ्रॉम ग्वालियर, पृ. 113

69 विजया केशव सिन्हा, कच्छपघात राजवंश के नवीन अभिलेख, ग्वालियर दर्शन, पृ. 217

70 एच. सी. रे, पूर्वाक्त, पृ. 835

71 बी. डी. मिश्रा, फोर्ट्स एण्ड फोटरीस ऑफ ग्वालियर एण्ड इट्स हिण्टरलैण्ड, पृ. 25

72 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वाक्त, पृ. 212

73 माइकल डी विलिस, आर्किटेक्चर इन सेंट्रल इण्डिया अण्डर द कच्छपघात रुलर, पृ. 13-32

74 मित्र, शिशिर कुमार, द कान्क्वेस्ट ऑफ गोपाद्रि बाई द कच्छपघातास, द इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टली, जिल्द XXIX, पृ. 89

75 वही, पृ. 89

76 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ. 394

77 आर. के. दीक्षित, चन्देलाज ऑफ जेजाकभुक्ति, पृ. 65

78 ए. के. सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 113-115

79 एच. सी. रे, पूर्वोक्त, पृ. 835

80 माइकल डी विलिस, इंस्क्रिप्शन ऑफ गोपक्षेत्र, पृ. 14

81 बी. डी. मिश्रा, पूर्वोक्त, पृ. 25

82 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वॉल्यूम XV, पृ. 36, 41

83 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 195

84 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वॉल्यूम XV, पृ. 36

85 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 195-196

86 एच.सी. रे, पूर्वोक्त, पृ. 824

87 विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, पृ. 587-588

88 एच.सी. रे, पूर्वोक्त, पृ. 825

89 शिशिर कुमार मित्र, पूर्वोक्त, पृ. 91-92

90 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वाक्त, पृ. 196

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

91 शिशिर कुमार मित्र, पूर्वोक्त, पृ. 91-92

92 बी. डी. मिश्रा, पूर्वोक्त, पृ. 127

93 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वॉल्यूम XV, पृ. 36, 42

94 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 197

95 वही, पृ. 200-201

96 एच. सी. रे, द डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्दन इण्डिया, वाल्यूम II, 1973, पृ. 826

97 वही, पृ. 826

98 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम XV, पृ0 36-37, 42-43

99 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वाक्त, पृ. 199-200

100 एच. सी. रे, द डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉर्दन इण्डिया, वाल्यूम II, 1973, पृ. 835

101 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम XV, पृ0 37, 43

102 इण्डियन एण्टीक्वेरी, वाल्यूम XV, पृ0 37, श्लोक 31

103 कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम, वाल्यूम VII, पृ. 551

104 कार्पस इंस्क्रिप्शन इण्डिकेरम, वाल्यूम VII, पृ. 551

105 पी. सी. राय, द क्वाइनजेज ऑफ नार्दन इण्डिया, 1980, पृ. 69-71

106 कनिंघम, आर्कियोलॉजी सर्वे ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम II, पृ. 374

107 इण्डियन एण्टीक्योरी, वॉल्यूम XV, पृ. 201-202

108 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 208-209

109 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 210

110 हरिहर त्रिवेदी, कच्छपघात नरेशों के अनुवंशज, ग्वालियर दर्शन, पृ. 213-216

111 हरिहर निवास द्विवेदी, पूर्वोक्त, पृ. 211

112 ए. के. सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 278

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

राजपूतपूर्व युगीन प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजपूतपूर्व युगीन प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला

प्राचीन काल से ही विश्व में भारत एक महान सभ्यता के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार भारत की महान पवित्र नदियों ने अनेक छोटी-बड़ी नदियों को स्वयं में आत्मसात कर लिया, उसी प्रकार भारतीय सभ्यता ने भी विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों को स्वयं में समाहित कर अपनी सभ्यता संस्कृति में सम्मिलित कर लिया। भारतीय संस्कृति में विभिन्नताओं का मिश्रण होते हुए भी भारतीय धर्म, साहित्य, कला, दर्शन एवं स्थापत्य में भारतीय मौलिकता के दर्शन होते हैं। 2300 ई०पू० भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में यूनानी संस्कृति का परित्याग कर भारतीय कला स्थापत्य का विकास हुआ। भारत के मंदिर और शिल्प कला भारतीय संस्कृति की पहचान है। 'मिस्र के पिरामिड या एथेन्स के पारथेनान' की तरह भारतीय मंदिर हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

देवताओं की पूजा, पूजा पद्धति की परम्परा का आरम्भ कब और कैसे विकसित हुआ ? यह प्रश्न चिन्तनीय है। मंदिर का देवायतन धार्मिक वास्तु है। इसका विकास ईश्वर, महापुरुषों की आराधना, शुद्ध भक्ति और धर्म के माध्यम से मूर्ति अथवा चिह्न का निर्णय कर उन्हें समय क्रम से देवालयों में प्रतिष्ठित किया गया कालान्तर में वही विभिन्न आकार व रूप में इसका विकास हुआ। जिन्हें भारत के सभी धर्मानुयायीयों और विभिन्न मतावलम्बियों ने स्वीकार किया। पाश्चात्य इतिहासकारों ने मंदिर को जैन मंदिर, बौद्ध मंदिर, ब्राह्मण मंदिरों में विभाजित किया। पाश्चात्य विद्वान हैविलोडोंग ने ब्राह्मण मंदिरों को वैष्णव एवं शैव, दो वर्गो में विभाजित किया। यह विभाजन उपासकों की भावनाओं, श्रद्धा, विश्वास पर अवलम्बित हैं। वास्तु संरचना के दृष्टिकोण से हिन्दू, जैन, बौद्ध मंदिरों की वास्तु योजना में समरूपता दृष्टिगोचर होती हैं। जो समय और परिस्थिति के परिवर्तन के अनुसार वास्तु रूपरेखा में परिवर्तन होता रहा। इन मंदिरों के निर्माण में कला, भव्यता, सौन्दर्यता जैसे तत्त्वों को प्रमुख स्थान दिया गया न कि ग्रीष्म, वर्षा से रक्षा हेतु मंदिर निर्मित करना प्रधान कारण नहीं रहा। वैदिक साहित्य में मूर्तियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि वैदिक काल में यज्ञ के विकास के फलस्वरूप विष्णु की एकता यज्ञ में स्थिर हो गयी, जैसे- "विष्णु परमः तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता।"[1]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान कृष्णदेव ने अपनी पुस्तक "उत्तर भारत के मंदिर" में मंदिर की परिभाषा इस प्रकार दिया है- "मंदिर ईश्वर का निवास स्थल हैं जिसकी आत्मा का अंश घूमता हैं और इनको देवालयों, शिवालयों या देवयतन के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जैसे- "Evidently, even the most perfect body seems lifeless without the resident soul. To the Hindu, the temple is the atude of God who is the spirit immanent is the universe. The Temple, therefore, is known by such terms as devalaya, Shivalaya and devayatana. Hence worship constituting the living use of the temple starts with the installation of life in the form of the deity in the Sanctum".[2]

किसी इष्ट देवता की उपासना स्थल को मंदिर कहा जाता है। भाषागत उत्पत्ति की दृष्टि से मंदिर की उत्पत्ति " मन्द" शब्द से हुई मानी गयी है। जैसे- " मद्यते इत्र मदं किरय" अर्थात् किसी आवास गृह या वास स्थल को मंदिर माना जता है। मंद शब्द की उत्पत्ति "मंदि हर्षे" धातु से हुई है। प्राचीन साहित्य में मंद शब्द का प्रयोग प्रसन्न होना, आनन्द मनाना, चमकना तथा सोना आदि अर्थों में किया गया। मन्द से ही मन्दर अथवा मन्दार आदि शब्दों की उत्पत्ति मानी गयी है। मंदिर का अभिप्राय पर्वत या पर्वत के देवता से माना गया है। जबकि मन्दार शब्द कल्प वृक्ष के लिये प्रयोग हुआ है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में मंदिर शब्द का अधिक प्रचलन नहीं मिलता और न ही इसका प्रयोग उपासना स्थलों के लिये किये जाने का प्रमाण मिलता है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, महाकाव्यों और सूत्र साहित्य में मंदिर शब्द की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल देवगृह आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। वास्तु शास्त्रों में उत्तर भारत में प्रासाद शब्द को मंदिर के अर्थ में प्रयोग किया गया है। गुप्त अभिलेखों में भी इसी शब्द का प्रयोग मिलता है। विदिशा के कुछ अभिलेखों में भी प्रासाद शब्द का प्रयोग मंदिर के अर्थ में किया गया है। दक्षिण भारत में प्रायः मंदिरों के लिये विमान व हर्म्य तथा कभी प्रासाद शब्द का प्रयोग किया गया है। हर्म्य शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है।[3]

मंदिरों का बाह्य भाग अत्यन्त अलंकृत होने तथा आन्तरिक भाग का अनलंकृत होने की फर्गुसन ने आलोचना की हैं। उसने मंदिरों में अत्यधिक अलंकरण को अनावश्यक व्यय माना हैं। उनके मतानुसार बाह्य सज्जा की अपेक्षा आन्तरिक भाग की सज्जा अलंकरण पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक स्थापत्य के सुसज्जिकरण और सौन्दर्यकरण के रखरखाव को अनावश्यक व्यय मानना फर्गुसन का निर्रथक है।

अग्नि पुराण में उल्लेख मिलता है कि शरीर को ही सजाया जाता है क्योंकि अमूर्त आत्मा तो अलंकार विहीन होता है अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मंदिर शब्द का अभिप्राय दो अर्थों में लिया जा सकता है।

व्यापक सन्दर्भ में सभी धार्मिक स्थल जहाँ पूजा और उपासना होती हैं मंदिर कहे जा सकते हैं। इस दृष्टि से स्तूप, चैत्य एवं देवालय आदि सभी का अध्ययन मंदिर के अन्तर्गत आ जाता हैं। कहीं कहीं विचारों में भी धार्मिक चर्चायें, गोष्ठियाँ एवं पूजा होते हैं। स्तूपों के सामने एवं मंदिरों के प्रांगणों में पवित्र स्तम्भ खड़े किये जाते हैं। इन्हें भी मंदिर की श्रेणी में रखा जा सकता है।

सीमित दृष्टिकोण से मंदिर का आश्रय केवल उस निर्माण से लगाया जा सकता है। जहाँ पूजा एवं उपासना की दृष्टि से देवी देवताओं आदि मूर्तियाँ प्रतिस्थापित की जाती हैं। प्राचीन भारत में यद्यपि मंदिर शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, तथापि धार्मिक स्थलों के लिये देवालय, हर्म्य, देवायतन आदि शब्दों का प्रयोग यह प्रमाणित करता है कि मंदिर को कभी संकुचित अर्थ में नहीं लिया गया। ऐसा माना जाता है कि मंदिर, देवालय या देवता का निवास स्थान है। उदाहरणार्थ जैसे एक प्रजाहितकारी शासक सिंहासनारूढ होकर अपनी प्रजा के कष्टों के निवारणार्थं उनके निवेदन को सुनता है उनके कष्टों का निवारण करता है। और बदले में अपनी प्रजा द्वारा भेंट किये गये उपहार, सम्मान ग्रहण करता है। उसी प्रकार ईश्वर भी मंदिर में विराजमान होकर अपने भक्तो को दर्शन देते हैं उनकी प्रार्थना सुनते हैं। उनके कष्टों का निवारण करते हैं। मंदिर का वास्तु शिल्प स्थापत्य जनमानस की धार्मिक चेतना का परिचालक है। उसका मूल तत्त्व ईश्वर के प्रति गहरी आस्था का सूचक हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर शिल्पकार ने हिन्दू मंदिर की रचना करने में अपनी प्रतिभा की अपेक्षा पारम्परिक विचारधारा पर अवलम्बित सृजनता को ही प्राथमिकता दी। परन्तु ये मंदिर केवल उपासना केन्द्र ही नहीं रहे, अपितु सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र स्थल भी बने। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित किया। परम्परागत आदर्शों व मानव मूल्यों की रक्षा करना इनका प्रमुख उद्देश्य बन गया। मंदिरों का प्रभाव केवल धार्मिक व आध्यात्मिकता तक ही सीमित न होकर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक उन्नति के पथ में उल्लेखनीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगदान दिया। मंदिरों के अभिप्राय से एक ऐसे स्थल की कल्पना का रूप साकार प्रतिबिम्बित होता है कि जहाँ शान्त वातावरण, आध्यात्मिक चिन्तन का स्थल, आराध्यदेव की कल्पना एवं उपासक के आध्यात्मिक शान्ति का प्रमुख केन्द्र हो। मंदिर के भीतर गर्भगृह में विराजमान देव प्रतिमा का स्मरण मनन करके उपासक अपने मन में श्रद्धा, विश्वास, भक्ति का आभास करता हो। मन एकाग्र चित्त होकर ईश्वर में तल्लीन होता हो। अपने आराध्यदेव की भक्ति, चिन्तन में लीन होना, ईश्वरमय अनुभूति करना ही मंदिर का अभिप्रायः सफलीभूत हैं। मंदिर की वास्तु शिल्पिय संरचना समय, परिस्थिति, समाज की माँग एवं सम्पन्नता के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। परन्तु मंदिर की मूल अवधारणा यही है कि मंदिर परमात्मा की आत्मा का निवास स्थल मानते हुये देवालय की संकल्पना हैं। जिसमें उपासको आराधको की श्रद्धा भक्ति समाहित हैं। मंदिर सामाजिक जन मानस की मान्यताओं एवं सामाजिक विश्वास की अवधारणाओं पर अवलम्बित हैं।

मंदिरों का उद्भव एवं विकास क्रम

स्थापत्य कला धार्मिक एवं लौकिक दो रूपों में विकसित हुई । सभ्यता के उषा काल में मानवीय मनीषा के विकास के साथ-साथ चारों ओर परिव्याप्त प्रकृति को देख कर मानव मन में उसे जानने, उससे सम्पर्क साधने एवं उससे सहायता प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई। फलस्वरूप मानव ने प्रकृति और प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति तथा उपासना के क्रम में एक पद्धति का ही निर्माण कर डाला। भौतिक प्रकृति के अलौकिक कार्यों को अहर्निश गतिमान देखकर उसके प्रति दिव्यता की भावना उत्पन्न हुई और देव परिकल्पना स्थापित हो गई।

पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि आदि मानव की सामाजिक प्राथमिक अवस्था मातृसत्तात्मक थी। मानव की शक्ति के रूप में स्वीकृत, मातृ सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था और माता के जननी रूप की अनुभूति ने मातृ देवी की मूर्ति बनाने की प्रेरणा दी। समस्त विश्व में विभिन्न रूपों में मातृ, श्रद्धा, मातृ मूर्ति एवं मातृ भावना के दर्शन होते हैं। आदिम मातृ मूर्तियाँ भी प्रायः नग्न हैं।[4]

कालान्तर में आर्यों ने भी अपने प्रकृति प्रधान देवताओं को स्वरूप प्रदान किया और उनकी प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा की, जिन्हें अब तक वे अपनी गेय-स्तुतियों के माध्यम से प्रसन्न करते आये थे। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे दूर अन्तरिक्ष के देवता नहीं रह गये। बल्कि अलौकिक स्वरूप से सम्पन्न आराध्य बन गये।[5] शनैः शनैः प्रत्येक प्राकृतिक शक्ति का या देवभाव का मानवीकरण हो गया। "ऋग्वेद के प्रलयकारी रूद्र अब जीवों का कल्याण करने वाले शिव बने।" शिव का वाहन नंदी सिंधु सभ्यता के वृषभ का उत्तराधिकारी हुआ। ऋग्वेद का बीज दर्शन अब बढ़कर उपनिषदों का अश्वत्थ हो गया।[6] देव मूर्तियों का निर्माण होने लगा। देव रूप की कल्पना समृद्ध होती गई। प्रतीकात्मकता की वृद्धि और पूजा आराधना के लिये देव स्थान, देवायतन का निर्माण होने लगा। स्तूप, चैत्य, विहार भी इसी प्रक्रिया में निर्मित हुए। हिन्दू परम्परा में यही समाधि थी। वैदिक और आगमिक परम्पराओं में यज्ञो मंत्रों के द्वारा श्रद्धा व्यक्त करने के लिये पूजा होने लगी । सर्वप्रथम भले ही उसका कोई निश्चित स्थान निश्चित रूप, निश्चित पद्धति नहीं रही हो, किन्तु धर्म दर्शन के विकास के साथ-साथ पूजा स्थल तथा देव स्थल भी बने। इन्हें ही बाद में मंदिर की संज्ञा दी गयी।

भौतिकता की स्थूलता के अतिरिक्त अभौतिक विचारों की अभिव्यक्ति के क्रम में मंदिर कला ने वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। "यदण्डे तद् ब्रह्मणे" तथा "देवोभूत्वा दवं यजेत् " जैसे विचारों से मंदिर को भी ब्राह्मण की अवधारणा से जोड़ दिया गया। "मेसोपोटामिया के जिगुरट (सशिखर मंदिर) का अनुविक्षेप तथा अनुभाग इस बात का द्योतक है कि वह ब्रह्माण्ड का एक वास्तु शिल्पीय रेखाचित्र था।" इसी प्रकार मंदिर भी विश्व संस्थान की प्रतिकृति के रूप में निर्मित हुये स्तूप के सम्बन्ध में भी यही धारणा स्थापित हो गई।

मंदिर देह का तथा उसमें स्थापित मूर्ति आत्म- ब्रह्म का प्रतिरूप है। वास्तु शास्त्र में मंदिर स्थापत्य को तांत्रिक रूप दे दिया गया है। विस्तृत ब्रह्माण्ड विज्ञान अनेक पौराणिक कथाएं, पुनर्जन्म एवं कर्म के सिद्धान्त संन्यास और योग की साधना मंदिर कला से आत्मसात हो गयी है।

मंदिर को प्रासाद पुरुष की संज्ञा दी गयी हैं। प्रतीक शास्त्रियों ने मंदिर के अंग प्रत्यंग के निर्माण का उद्देश्य एवं विधान निश्चित किया है। मंदिर निर्माण का पृष्ठभूमि में दार्शनिक रहस्य निहित हैं। देव मंदिर परम पुरुष का प्रतीक है।[7]

आकार, प्रकार, स्वरूप, ऊँचाई, ध्वज, कलश, बाह्य अलंकरण, वेदी प्राचीर, प्रदक्षिणा आदि सभी का धर्मशास्त्रीय तथा आगम शास्त्रीय महत्व हैं। यन्त्रों में एक बिन्दू, एक के बाहर चतुष्कोण प्राकार रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मंदिर के साथ प्रासाद वेदी और प्राकार के तीन चतुष्कोण होते हैं। मंदिर, स्तूप, स्तम्भ तथा शिवलिंग आदि इन्हीं सिद्धान्तों पर बनते हैं।[8] इस प्रकार पूजा आराधना के लिये जिस मंदिर की प्रारम्भिक आवश्यकता हुई। वहीं मंदिर कला, धर्म, दर्शन, तंत्र प्रतीक एवं कला के माध्यम से गूढ रहस्यमय होते चले गये। निष्ठा, श्रद्धा एवं धर्म प्राणता के कारण यही मंदिर देश काल, मत मतान्तरों के कारण सरल, जटिल, विशाल बनने लगे।

भारतीय वास्तुकला के प्रसिद्ध विज्ञान पर्सी ब्राउन ने इस युग में मंदिर के रूप में वास्तुकला के विकास के लिये कई तत्वों का महत्व स्वीकार किया है। इस काल में सम्पूर्ण देश का एक सशक्त साम्राज्य के रूप में संगठन हुआ। जिस कारण राजाओं ने मंदिरो के निर्माण हेतु सहायता एवं संरक्षण प्रदान किया। जिनके फलस्वरूप जनसाधारण में आत्मविश्वास और क्रियाशीलता का विकास हुआ। परिणामस्वरूप सनातन हिन्दू धर्म की पुर्नप्रतिष्ठा हुई और एक से बढ़कर एक हिन्दू मंदिरों का निर्माण सम्भव हुआ।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भारत में मंदिर वास्तु के उद्भव और विकास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला हैं। उनके मतानुसार भारत में हिन्दू मंदिरों का विकास कई चरणों में हुआ था। मंदिर निर्माण के आरम्भिक चरण में खुले स्थान में वृक्ष के नीचे पूजास्थल के रूप में चबूतरों का निर्माण किया जाता था। जहाँ मंत्रों पुष्प, जल, मिष्ठान, धूप-दीप आदि के द्वारा देवताओं की पूजा की जाती थी। प्रारम्भ में पृथ्वी माता यक्षों और नाग देवताओं के मंदिरों का निर्माण हुआ। ऋग्वेद में "यक्ष सदन" का उल्लेख मिलता है।

विकास के द्वितीय चरण में उस चबूतरे को एक वेदिका से घेर दिया गया था। यह वेदिका प्रारम्भ में बाँस और लकड़ी से तथा बाद में पत्थर से बनाई गयी थी। नागरी की नारायण वाटिका (विष्णु मंदिर) वेदिका वाले ऐसे मंदिरों के अन्तर्गत आता है। जिसमें "पूजा शिला प्राकार" था।

इस नारायण वाटिका का निर्माण तृतीय शती ई०पू० में हो चुका था। संभवत: इसी से प्रेरणा लेकर कालान्तर में बौद्ध तथा जैन स्तूपों में वेदिका का प्रयोग किया गया। वेदिका युक्त चबूतरों पर जैन आयाग पट्ट अर्हतो की पूजा के निर्मित्त स्थापित किये जाते थे।

मौर्यकालीन मंदिरों के अवशेष वैराट तथा सांची (मंदिर संख्या 40 और 18) से भी प्राप्त हुए हैं। द्वितीय शताब्दी ई०पू० में बेसनगर में भी विष्णु मंदिर था। जिसके समक्ष हेलियोडोरस ने गरुड ध्वज स्तम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित करवाया था। वासुदेव तथा पंचवीरों के मंदिरों का उल्लेख मथुरा के अभिलेखों में पाया गया है। ये मंदिर शक क्षत्रप सोडाष के शासन काल (प्रथम शती ई०पू०) में बनाये गए थे।

मंदिर विकास क्रम में आगे चलकर इष्टदेवों की प्रतिमाओं का अंकन प्रारम्भ हो गया। इन देवों की पूजा-अर्चना हेतु बुद्ध बोधिसत्त्व, जैन तीर्थकर तथा शिव-विष्णु वासुदेव की प्रतिमाओं को गढ़ा जाने लगा। वर्षा और धूप से बचाव हेतु इन प्रतिमाओं के ऊपर छत्र लगाने का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त देवार्चन करने वाले भक्त को भी वर्षा तथा धूप से सुरक्षित करना भी इसका उद्देश्य रहा हो। संभवत: इन्हीं कारणों से बौद्धों ने अपने स्तूपो के ऊपर चैत्य गृहों का निर्माण किया था। सारनाथ से प्राप्त बोधिसत्व की आदमकद प्रतिमा के ऊपर छत्र पाया गया हैं। यह मथुरा में निर्मित हुआ था। प्रारम्भ में वे छत्र गोल और चौकोर दोनों होते थे। इन्हें मांगलिक चिह्नों से तथा पद्म दलों से अलंकृत किया जाता था। स्तम्भों पर टिके छात्रों के इस मण्डप स्वरूप ने ही गर्भगृह को जन्म दिया और स्तम्भों का जन्म स्थान दीवारों ने ले लिया। इस प्रकार चबूतरे पर एक कक्ष के रूप में मंदिर का स्वरूप प्रकट हुआ। जिसके भीतर देव प्रतिमा की प्रतिष्ठा थी। यह मंदिर विकास का तृतीय चरण कहा जा सकता है। इस चरण का प्रतिनिधित्व करने वाला चतुर्थ शताब्दी में सांची में बना गुप्त मंदिर संख्या 17 है। यह मंदिर सादी दीवारों का एक चौकोर कक्ष है। जिसके समक्ष स्तम्भों पर टिका एक बरामदा है। इसकी छत समतल है। तत्पश्चात चतुर्थ से लेकर छठी शताब्दी ई० तक गुप्त काल में मंदिर के विभिन्न अंगों का विस्तार और विकास हुआ।

आध्यात्मिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण से भारत वर्ष का विश्व संस्कृति में उल्लेखनीय स्थान रहा है। पुरुषार्थ में मोक्ष की कल्पना के आधार पर धर्म कार्य किये जाते हैं। वैदिक परम्परा में पुनर्जन्म से सम्बन्धित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। वृहदारण्यक उपनिषद् में संसार के बंधनों से मुक्त होने के लिए तपस्या का जीवन व्यतीत कर ब्रह्म में लीन होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु जिस मनुष्य को वेदान्त का परम ज्ञान प्राप्त नहीं होता वह संसार में पुनर्जन्म लेता है। वैदिक युग में प्रकृति देवों की पूजा का विधान था। दार्शनिक विचारों के साथ-साथ रूद्र तथा विष्णु पूजा का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में रूद्र को प्रकृति के देवता वनस्पति तथा पशुपालन से सम्बन्धित देवता के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। विष्णु यज्ञ के देवता के रूप में प्रसिद्ध है। वैदिक युग में यज्ञ संख्या का विकास होता गया और विष्णु की एकता यज्ञ में स्थिर हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक दर्शन में शक्ति के लिये स्थान न होने पर भी देव पूजन को स्थान मिल चुका था। यही कारण है- वैदिक साहित्य में देवालय के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इन्हें सामूहिक धार्मिक कृत्यों, यज्ञ प्रधान स्थल माना है। किन्तु व्यक्तिगत रूप में भी पूजन को स्थान प्राप्त था। महाभारत में इष्ट देवों के लिये स्थान निश्चित थे जिन्हें देव स्थान, देवायतन, देवालय या मंदिर की संज्ञा दी जा सकती हैं।

पुरातात्विक खुदाई के परिणामस्वरूप वैदिक एवं महाभारत कालीन मंदिरों के भग्नावशेष नहीं मिले हैं। परन्तु साहित्यिक प्रमाण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। यथा-

यस्तु प्रासादमुख्योऽत विदितः सर्वशिलियाभिः ।

अतीव रम्यः सोऽप्यत्त प्रदसन्निव तिष्ठति ।।[9]

प्राचीन भारत में ईसा पूर्व चौथी सदी से ही बौद्ध पूजा से मंदिर निर्माण क्रम का आरम्भ हुआ। राजपूताना में चित्तौडगढ़ के समीप संकर्षण (बलदेव) तथा वासुदेव (कृष्ण) की प्रतिष्ठा का वर्णन मिलता है। भगवान शालिग्राम की पूजा अर्चना हेतु शिला प्रकार (घेरा) निर्मित करने का विधान निम्न अभिलेख के माध्यम से ज्ञात होता हैं जिसे लेख में नारायण वाटिका कहा गया। मध्य भारत में विदिशा के समीप विदेशी यवन दूत हेलियोडोरस द्वारा स्थापित " स्तम्भ" प्रकाश में आया है। जिस पर गरुड ध्वज की स्थापना का उल्लेख है । उस स्थान पर देव मंदिर (विष्णु मंदिर) भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं। अतः यह अनुमान सत्य है कि हेलियोडोरस ने विष्णु मंदिर के सम्मुख गरुड़ ध्वज की स्थापना की थी।

देवदेम्स वासुदेम्स गरुडध्वजे अयं कारिते इअ हेलियोदोरेण

भागवते नदिअस पुत्रेण तख्त सिलाकेन, योनदूतेन आगतेन

महाराजन अतिरिकितस उपाताएकासे रजो।[10]

अतएव ईसा पूर्व सदियों में मंदिर निर्माण के उक्त प्रमाणों के आधार पर यह भुलाया नहीं जा सकता कि उस समय मंदिरों की रूपरेखा नहीं रही होगी। भले ही उसके अवशेष प्राप्त नहीं हुये हैं काल के कराल में दबे भी हो सकते हैं जो खोजने पर मिल भी सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुप्त काल में वैष्णव धर्म ने राजधर्म का स्थान लिया। इन सम्राटों का शासन चौथी सदी में प्रारम्भ हुआ। सम्राट तथा प्रजा ने भक्ति भावना से प्रेरित होकर देवता की पूजा अर्चना हेतु देव स्थान की प्रतिष्ठा की जिसे देवायतन या मंदिर की संज्ञा दी गयी। बौद्ध काल में विद्वानों के केन्द्रीय स्थल में बुद्ध प्रतिमा स्थापित होने लगी थी। इसके अनेक उदाहरण एलोरा की गुफाओं में विद्यमान हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म की भी अनेक गुफायें तैयार हुई जिनमें हिन्दू देवता की मूर्ति स्थापित हैं। एलोरा का कैलाशनाथ मंदिर तथा एलीफेन्टा के शिव मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उदयगिरी (विदिशा के समीप) गुफायें स्थापित की जिसमें विष्णु के वराह अवतार तथा शेषशायी विष्णु प्रतिमा को स्थान दिया। उसी स्थान पर छोटे कमरे के खण्डहर को प्राचीनतम मंदिर की बनावट मानते हैं। क्रमिक रूप से बौद्ध मंदिरों के साथ- साथ ब्राह्मण तथा शेष मंदिरों का विकास होता रहा।

सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को मंदिर में स्थापित किया गया। जनमानस की भक्ति भावना के फलस्वरूप ही मंदिरों का विकास हुआ। इष्ट देवों के लिये देवालय की स्थापना सगुण भक्ति भावना से प्रेरित था। सामूहिक पूजा का प्रचलन बौद्धों के संघ से प्रारम्भ हुआ। भक्तिमय वातावरण में एकान्त स्थान पर मंदिरों को स्थान दिया गया। भजन कीर्तन द्वारा भक्तजन इष्टदेव को प्रसन्न करते थे। इसी को दृष्टि में रखते हुए हिन्दू मंदिरों का भी श्रीगणेश गुप्त शासकों ने प्रचुर मात्रा में कराया। जिसके खण्डहर आज भी प्रमाण हैं। ऐसा स्थल जहाँ पवित्रता, शान्ति, एकान्त एवं सार्वजनिक जन हिताय के रूप में पूजा अर्चना एवं शान्ति प्राप्ति का स्थल देवालय या देवायतन कहलाया।

किसी भी धर्म के अनुयायी उस धर्म के प्रति अपनी भक्ति सामान्यतः दो रूपों में प्रकट करते हैं। प्रथम मन ही मन अपने इष्ट देव की स्तुति एवं ध्यान करना, द्वितीय अपने इष्ट देव की मूर्ति किसी भवन में स्थापित कर उसकी उपासना करना। भारत में मंदिरों का निर्माण से सम्बन्धित कोई स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि वैदिक काल से लेकर मौर्य युग तक किसी मंदिर के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं। सांची का मंदिर प्राचीन भारत का भव्य मंदिर कहा जा सकता है। जिसमें पूर्व तथा पश्चिम की ओर प्रस्तर की आधार से सोपान निर्मित है। सम्भवतः मंदिर का ऊपरी भाग लकड़ी से निर्मित रहा होगा। विद्वानों के मतानुसार यह मंदिर मौर्यकाल एवं शुंग काल में निर्मित रहा होगा। इसी काल में निर्मित एक अन्य मंदिर चित्तौड़ के निकट नगरी नामक स्थान पर निर्मित है। जिसमें संकर्षण, बलराम तथा वासुदेव कृष्ण की प्रतिमा स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मध्य प्रदेश में विदिशा के निकट वेसनगर में भी भगवान विष्णु के शुंग कालीन एक मंदिर का उल्लेख प्राप्त होता है।

उपर्युक्त मंदिरों के प्रमाण होते हुए भी गुप्तकाल से पूर्व कोई मंदिर वास्तु अवशेष उपलब्ध नहीं हुआ है। जिससे मंदिरों की शैली और विकास क्रम के विषय में जानकारी प्राप्त होती है किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि गुप्त काल से पूर्व मंदिरों का निर्माण नहीं हुआ हो। सम्भवतः गुप्त काल से पूर्व कालीन मंदिर लकड़ी के बने हों जो कालान्तर में नष्ट हो गये हों। सर्वप्रथम मानव का परिचय प्राकृतिक शक्तियों से हुआ। जिसे देखकर उनके मन में उन शक्तियों के प्रति एक भक्ति या श्रद्धा उत्पन्न हुई होगी और इन शक्तियों को प्रसन्न रखने की भावना के कारण फलस्वरूप ही मानव ईश्वर उपासना की ओर अग्रसर हुआ होगा। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में यज्ञ वेदी का उल्लेख प्राप्त होता है जो बाद में वेदिका के रूप में प्रचलित हुआ। स्तूप वास्तु का उद्भव बौद्ध धर्म से हुआ। मंदिर शब्द ब्राह्मण धर्म का अभिन्न तत्त्व है। जो चतुर्थ शताब्दी से लेकर आज तक निरन्तर भारत वर्ष की वास्तु कला का प्रिय विषय बना हुआ है।

विद्वानों ने मंदिरों के उद्भव एवं विकास के सम्बन्ध में विभिन्न विचारधारायें व्यक्त की हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

मंदिर के उद्भव के सिद्धान्त

1. मूर्ति पूजा से मंदिर उत्पत्ति का सिद्धान्त

इस विचारधारा के अनुसार मंदिरों का प्रादुर्भाव मूर्ति पूजा के साथ प्रारम्भ हुआ। धर्म सूत्रों में मंदिर का प्राचीन नाम देवायतन, देवकुल, देवप्रासाद, देवग्रह का उल्लेख मिलता है।[11] प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार देवता के निवास के लिये जो भवन निर्मित किये गये वही कालान्तर में मंदिर के रूप में सुप्रसिद्ध हुए। किन्तु इस मत में मानने वालों में यह बाधा है कि प्रत्येक मूर्ति के लिये एक वास्तु की आवश्यकता होती है। किन्तु प्रारम्भ में मूर्तियों के निवास हेतु बनाये गये किसी भवन का कोई प्रमाण नहीं मिलता। सम्भवतः प्राचीन भारत की आदिम जातियाँ अपने देवी-देवताओं को वृक्षो, चट्टानों तथा चबूतरों पर स्थापित कर उनकी आराधना करते हों। हड़प्पा संस्कृति से प्राप्त कतिपय मूर्तियों पर अंकित चित्रों से मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अस्तित्व का आभास मिलता है किन्तु अभी तक एक भी ऐसा निश्चित प्रमाण नहीं मिला है जिसमें पूरी तरह निश्चित हो सके कि इस सभ्यता के नगरों एवं ग्रामों में किसी मंदिर का निर्माण कराया गया है।

2. विदेशी मत का सिद्धान्त

पाश्चात्य इतिहास के विद्वान हैवेल[12] के मतानुसार भारत में मंदिरों के पूर्व संभवतया आर्यों ने मेसोपोटामिया में कोणियों शिखरों से युक्त मंदिर बनवायें। लेयार्ड द्वारा निवेवा में सेना शेरीव के बनाये हुये आठवीं शताब्दी ई०पू० के मंदिर का पता चला है। अभी-अभी दो हजार ई०पू० का इसी प्रकार का एक मंदिर यूप्रेटिस की तराई में मिला है। जिससे यह रोचक तथ्य का पता चलता है कि मिगानी आर्य वैदिक देवताओं के साथ-साथ ईश्वर अथवा अशतोरोथ जैसे असुर देवताओं की पूजा करते थे। 2750 ई०पू० असुर शासक नयमशीन की जो सील मिली है। उससे आभास होता है कि उस समय ऊँचे शिखर बनने की परम्परा थी। अतः हैवेल ने इन तथ्यों के आधार पर यह कहा है कि मंदिर निर्माण की यह पद्धति आर्य लोग अपने साथ विदेशो से लाये।[13]

यद्यपि हैवेल द्वारा प्रस्तुत प्रमाण निश्चित ही चौकाने वाले हैं। क्योंकि उन्होंने इस तथ्य की अपेक्षा की है कि मेसोपोटामिया में मंदिरों का उद्भव कैसे हुआ। दूसरे यह भी प्रमाणित नहीं होता कि मेसोपोटामिया की मंदिर वास्तुकला ने भारतीय मंदिर वास्तुकला को प्रमाणित किया। काल क्रम की दृष्टि से यह मत इसलिए स्वीकार नहीं हो सकता कि मेसोपोटामिया का मंदिर और भारत के उस प्रकार के मंदिरों के मध्य कई शताब्दियों का अन्तराल है।

निर्माण कला की दृष्टि से भी विदेशी और भारतीय मंदिरों की वास्तुकला में पर्याप्त अन्तर रहा है। जहाँ विदेशी वास्तु में मेहरावो, तहखानों, वितानों आदि में विभिन्न प्रस्तर खण्डों को मसाले से जोडते हुए गतिपूर्ण शक्ति सिद्धान्त के सहयोग का संतुलन किया गया था। वहीं भारतीय कारीगरों ने इस तकनीकी एवं वैज्ञानिक प्रगति से पृथक अपनी पारस्परिक वास्तु कला एवं तकनीकी का प्रयोग किया।

रूप से ईष्टदेव के प्रति श्रद्धा भक्ति अभिव्यक्त करते रहे। स्टेला क्रेमरिश द्वारा प्रस्तुत यह सिद्धान्त तर्क संगत सिद्ध नहीं होता, क्योंकि भारतवर्ष में निर्मित अधिकांश मंदिर समूह ऐसे पर्वतीय स्थानों पर स्थित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ न तो कोई नदी का किनारा है और न ही कोई तीर्थ स्थल है। अपितु मंदिरों के कारण वहाँ जलाशय आदि स्रोत निर्मित किए गये जैसे खजुराहो, भुवनेश्वर, ऊन, मदुरा, माउंट आबू, एहोल आदि ।

(5) आदिवासी सिद्धान्त

कतिपय विद्वानों के मतानुसार मंदिरों का उद्भव एंव विकास आदिवासी जीवन की प्रेरणा के फलस्वरूप हुआ। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम उनका यह कहना है कि आदिवासी आस्थायें और त्यौहार डोलमेनो में निहित थी जो तत्कालीन आदिवासी ग्रामीणों की झोपडियों के समान ही होते थे। यही डोलमेन कालान्तर में संभवतः मंदिर वास्तु के रूप में परिवर्तित हो गये हैवेल ने लिखा है कि भारतीय धर्म का मूल लोगों के दैनिक जीवन में मिलता है न कि धार्मिक उत्सवों तथा भोजो और परम्पराओ में इस कारण भारतीय मंदिर वास्तुकला का मूल रूप भारतीय ग्रामों में स्थित सीधी-साधी झोपडी नामक पूजा गृहो में देखा जा सकता है।[14] विद्वानों का कहना है कि भारत के अनार्य आदिवासी देवी देवताओं में विश्वास करते थे। उनका विश्वास था कि दैवीय आत्माओं का निवास वनों में है। अतः जब वन कटने की बारी आयी तो इन जनजातियों ने वृक्षों के एक समूह को इसलिये सुरक्षित कर लिया कि वन की यह दैविक शक्तियाँ इन कुंजो में निवास करेंगे। ये कुंज अपनी निरन्तरता को कायम रख सके, इस दृष्टि से वे साधारणतया किसी जल तट पर हीं इन कुंजो को सुरक्षित रखते थे और इस मान्यता से ग्रस्त थे कि हमारी समृद्धि एवं सन्तान इन्हीं दैवीय आत्माओं का आर्शीवाद है। डॉ० एच०सी० राय इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि अभी भी हर मुण्डा गांव के निकट प्राचीन वृक्षों का एक समूह अवश्य होता है। इसे सरना कहा जाता है। यह सरना प्राचीन मूल वन की स्मृति है। मुण्डा लोग महत्वपूर्ण तिथियों पर यहाँ पूजा करते और बलि देते थे।[15]

विद्वान् रमन्ना का कहना है कि दक्षिण भारतीय मंदिरों के उद्भव पर आदिवासियों के डोलमैन (झोपडीनुमा मंदिरों) का प्रभाव अवश्य पड़ा। इन आदिवासी मंदिरों को वे सुडालेमादन मंदिरों या टोडा कुटीर के नाम से पुकारते थे। उनका कहना है कि कालान्तर में डोलमेन प्रकार के मंदिरों पर कुटीर मंदिर हावी हो गए ।[16] इसका परिणाम दक्षिण भारतीय मंदिरों के विकास के रूप में सामने आया। इनके उद्भव के विषय में उनका कहना है कि आर्य सांस्कृतिक दृष्टि के परिणामस्वरूप दक्षिण भारत के पुरातन ग्राम वासियों ने मंदिर बनाने की कला सीख ली क्योंकि टोडा कुटीर मंदिरों एवं उत्तर भारतीय मंदिरों के मध्य कोई सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य है।[17] दक्षिण भारत के आदिवासी जन भी बिहार के मुण्डाओं की भाँति आज भी कुंजो में पूजा पर विश्वास रखते हैं।

परसी ब्राउन ने कुछ प्राचीन काष्ठ निर्मित झोपडियों के चित्र देखकर उनके आधार पर कतिपय मंदिर वास्तुओं की कल्पना की जो मैदान के मंदिर के रूप में तना पर्वतों पर चैत्यों के रूप में विकसित हुआ।[18] इन आदिवासी मंदिरों में लोक देवता क्रमशः अमूर्त से मूर्त रूप में स्थापित हुए। परिणामस्वरूप भारतीय मूर्तिकला का आदिम स्वरूप यज्ञ के रूप में सामने आया। कालान्तर में अन्य देवी-देवताओं की प्रतिस्थापना होने लगी। ब्राह्मण धर्म परम्परा में धीरे-धीरे आदिवासी मंदिरों की इस परम्परा को अपने में आत्मसात कर लिया। इस दृष्टि से जेम्स सी हार्ले का यह कथन उल्लेखनीय है कि चिदवरम में वहाँ प्रचलित अनुशक्तियों एवं प्रतिभावों के उपरान्त भी हिन्दू मत के पूर्व की पूजा विधान के दर्शन हो सकते हैं। तिल्लई वृक्षो के पवित्र समूह के नीचे अभी भी नटराज शिव चिरंबलम की पूजा होती है। दक्षिण भारत में अनेक मंदिरों में इसी प्रकार पूजा विधान आज भी विद्यमान है।

उपर्युक्त सिद्धान्त विकासवादी एवं वैज्ञानिक ढंग से मंदिरों के उद्भव और विकास की परिकल्पना तो प्रसतुत करता है किन्तु दुर्भाग्य से अनार्य और आदिवासी तत्त्वों की ओर इतना अधिक झुक जाता है कि इस संदर्भ में आर्यों के किसी योगदान को स्वीकार नहीं करता। यदि स्वीकारता भी है तो इस रूप में कि एक मंदिर परिकल्पनाहीन परजाती में विजित परिजाती की परिकल्पना को अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं को आत्मसात किया।

(6) वैदिक कर्मकाण्ड के मंदिर की उत्पत्ति

ऋग्वेद में उल्लिखित कतिपय ऋचाओं के आधार पर यह मत प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि मंदिरों का उद्भव ऋग्वैदिक कालीन संस्कृति की देन है।[19] कुछ विद्वानों के मतानुसार वैदिक काल में मूर्ति पूजा के कुछ प्रमाण मिलते हैं। इस मत के समर्थन में एक ऋचा का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार एक महिला अपने इन्द्र के बदले दस गायें लेने को तत्पर हो जाती है। पर्सी ब्राउन का मत है कि ऋग्वेद में उल्लिखित हम्पों को प्रारम्भिक मंदिरों के रूप में परिवर्तित कर दिया होगा।[20]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः इस प्रकार की अवधारणा के विपरीत ऋग्वेद ही एक सबल प्रमाण है। जो यह धारणा प्रस्तुत करता है कि निराकार ब्रह्मा एक ओर अद्वैत है। विप्रगण उसे इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि, सूर्य, मातरिश्वा आदि नामों से पुकारते हैं। अनेक विदेशी विद्वानो ने भी ऋग्वैदिक काल में मूर्ति पूजा की विद्यमानता स्वीकार नहीं किया है। मैक्समूलर का मत है कि वैदिक धर्म प्रतिमाओं से अनभिज्ञ था।' एच०आर० विलसन का मत है कि ऋग्वेद काल में धर्म मुख्यतः घरेलु प्रार्थना और बलियों तक सीमित था। उसमें मूर्तियों अथवा मूर्तियुग मंदिरों की अपेक्षा व्यर्थ थी। ऋग्वेद कालीन आर्य मूर्ति पूजक नहीं थे यह मत मैकडानल ने भी स्वीकार किया है क्योंकि ऋग्वेद में मंदिरों एवं प्रतिमा से सम्बन्धित कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है। ऋग्वेद में वर्णित यज्ञ यूप सम्भवतः मंदिरों के प्रारम्भिक स्वरूप रहे हो। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेदिक आर्य ग्राम से बाहर खुले स्थानों में सामूहिक यज्ञ करते थे। वे यज्ञ वेदि के आस पास बाँस या काष्ठ के स्तम्भों को गाड़ देते थे। ऐसे स्तम्भों को ऋग्वेद में स्थूण, स्तंभ, स्कंध, विष्कम, उपमित, मेत, उपमता, धरूण आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।[21]

यूव के साथ-साथ स्थूण शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है। यह स्थूण अष्टकोणीय काष्ठ स्तम्भ होता है। ऐसे कई प्रस्तर विनिर्मित स्तम्भ प्राचीन मंदिरों में देखे जा सकते हैं। पर्सी ब्राउन ने वैदिक आर्यों द्वारा काष्ठ एवं बाँस निर्मित ग्रामो की परिकल्पना के आधार पर बौद्ध चैत्यो स्तम्भो, तोरण द्वारो और वेदिकाओं की कल्पना की है।[22] अपने मत की पुष्टि के संदर्भ में उन्होंने तर्क दिया है कि इस प्रकार के निर्माण का प्रमाण सर्वप्रथम बराबर की पहाड़ी में स्थित सुदामा की गुफाओं में देखा जा सकता है। वैदिक ग्राम का द्वार सांची और भरहुत के तोरण द्वारो से साम्यता रखता है।[23]

कलश युक्त स्थूणो का प्रस्तर संस्करण कार्ले की गुफाओं में दिखायी देता है। वैदिक ग्रामों के काष्ठ निर्मित भाडे वेदिकाओं के रूप में बौद्ध स्थापत्य में दर्शनीय हैं। इस प्रकार वैदिक आर्यों ने यज्ञ पर स्थूणों से युक्त जो बाँस या खजूर की चटाइयों के छप्पर डाले वे उनके धार्मिक आस्थाओं के प्रथम सार्वजनिक प्रमाण है। कालान्तर में जब आर्यों में मूर्ति पूजा प्रारम्भ हुआ तो ये ही धार्मिक स्थल मंदिरों के रूप में परिवर्तित हो गए।

इस मत के समर्थन में काफी कुछ कहा जा सकता है तथा साथ ही इस मत के विपरीत भी काफी कुछ कहा जा सकता है। भारत के अधिकांश मंदिर ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं। जो उससे सम्बन्धित नहीं है वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी मंदिर निर्माण के विषय में उसी से प्रेरणा लेते हैं। उदाहरणार्थ बौद्ध और जैन मंदिरों पर वैदिक परम्पराओं का प्रभाव दर्शनीय हैं। अनेक मंदिरों में गर्भगृह के साथ-साथ मण्डप का भी निर्माण किया जाता है। सम्भवतः यह मण्डप यज्ञ यूपो का ही विकसित रूप है। ब्राह्मण मण्डपों में कई बार यज्ञ वेदी रही है। मण्डप स्तम्भ से परिपूर्ण रहे हैं। सम्भवतः जब छोटे-छोटे वैदिक देवताओं का स्वरूप अस्तित्व में आया तो उनके सामने एक मण्डप में गोष्ठीयों एवं यज्ञ के लिये मण्डप निर्माण की कल्पना सामने आयी। सम्भवतया: ये देवालय ही कालान्तर में विकसित होकर गर्भगृह का रूप धारण कर गये तथा उनके सामने बनाये जाने वाले यज्ञयूपों ने मण्डपों के रूप में विकास कर लिया।

सभी सम्भावनाओं पर विचार विमर्श करने के पश्चात् यह मत पूर्व के आदिवासी मत की भांति ही नितान्त एक पक्षीय है क्योंकि यह मंदिर उद्भव के विषय में पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता।

(7) बौद्ध स्थापत्य से मंदिर के उद्भव का सिद्धान्त

कुछ विद्वानों के मतानुसार मंदिर का उद्भव स्तूपों या चैत्यों से हुआ मानते हैं। स्तूप भारतीय वास्तुकला के अन्तर्गत सबसे प्राचीन स्थापत्य स्तूप है जिसका शाब्दिक अर्थ है एकत्रित करना ढेर लगाना इत्यादि। यह संस्कृत प्राकृत, स्थ्य धातु से बना है। अमर कोश में स्तूप के विषय में वर्णित राशिकृत मूर्ति का उपरोक्त कथन पुष्टि करता है।[24] टीले के आकार में स्तूप का निर्माण किया जाता है। इसका सम्बन्ध मूलतः बौद्ध स्मारकों से जोड़ा जाता है जो वस्तुतः उचित प्रतीत नहीं होता है बौद्ध साहित्य का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि उस समय भी स्तूप की कल्पना अज्ञात रही थी। मानव अपने पूर्वजों का अस्थि विसर्जन जल में अथवा अस्थि कलश स्मृति के रूप में चीरस्थायी बनाने हेतु स्मारक खड़ा कर देता था। किन्तु बौद्धों ने इस पद्धति को अत्यन्त आत्ममियता से ग्रहण करते हुये धार्मिक मान्यता प्राप्त की। जिसके परिणामस्वरूप स्तूप का सम्बन्ध बौद्ध मत के साथ रूढ हो गया। अतः स्तूप मात्र स्मारक न होकर बुद्ध के निर्माण के प्रतीक बन गये तथा बौद्ध द्वार उपासना के केन्द्र बिन्दू हो गये।

स्तूपो के उद्भव के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि स्तूप जब मूर्ति पूजा से सम्बद्ध हुए तो उनके स्वरूप में आवश्यक परिवर्तन दिखाई दिया। पवित्र टीले के भीतर भी कक्ष निर्माण की कल्पना की गई और उसमें देव प्रतिमा की स्थापना की गई। तोरण ने प्रवेश द्वार का स्थान लिया उसकी ऊँचाइयों ने शिखर का स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लिया। हर्मिका मंदिर की शिखा बन गयी। उत्तर भारत के मंदिरों में उस पर कलश की स्थापना हुई। दक्षिण भारत में परिवेश द्वार पर तोरण द्वार गोपुरम् के रूप में प्रकट हुए।[25]

विद्वान् रामान्या के इस सिद्धान्त का दो तर्क के आधार पर खण्डन किया है। प्रथम तर्क यह दिया कि स्तूपों से मंदिरों के उद्भव की कल्पना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती। दूसरा तर्क यह है कि स्तूप मूर्त रूप में कोई बौद्ध निर्माण नहीं है। जहाँ तक प्रथम तर्क का प्रश्न है यह मत इसलिए विचारणीय है कि मंदिरों के मूल आधार अन्य कई सिद्धान्तों के अनुसार उत्तरी अथवा दक्षिणी आर्य या अनार्य जन के निवासी की प्रकृति रही है। दूसरे मत के तर्क में रामान्या ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि स्तूप मूल रूप से बौद्ध वास्तु नहीं थे। अपने मत के समर्थन में उन्होंने वैदिक साहित्य के उन उदहारणों का उल्लेख किया जहाँ स्तूपों की चर्चा का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में जो हरण्य स्तूप नाम के एक ऋषि का उल्लेख मिलता है प्रश्न उठता है कि वैदिक स्तूप में क्या रखा जाता था। इस विषय पर विद्वानों में मतभेद हैं कि ऐसा सन्दर्भ ऋग्वेद में मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि मृतकों की अस्थि पर टीलों का निर्माण होता रहा है। मृणयप्यन गृहितम का अभिप्राय सम्भवतः इन्ही अस्थि टीलो से होगा। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में इन टीलों के आस पास वृत्ताकार परिधि की बात भी कही गई है। उसी के पास स्थूण निर्माण भी होता है अतः टीले बौद्ध स्थापत्य के स्तूपो के रूप में परिधि प्रदक्षिणा के रूप में तथा स्तूप स्तम्भ के रूप में विकसित हुये।

शुक्ल यजुर्वेद[26] में भी समाधि के चहु ओर मिट्टी का स्मारक बनाने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण' में एक रोचक वृत्तान्त का उल्लेख है कि आर्य स्तूप चतुर्थ कोणीय एवं असुर स्तूप गोलाकार होते हैं। अतः स्तूपों के निर्माण का फाल इस साक्ष्य के प्रकाश में पुराना हो जाता है।[27]

कतिपय विद्वान् ने भिन्नापुरम की प्रागैतिहासिक गुफा तथा सुदामा गुफा की समता वैदिक स्मारकों से करने का प्रयास किया है। अतः यदि यह बात स्वीकार कर ली जाती है तो राजगृह स्थित सोण भण्डार की गुहा के आन्तरिक भाग को स्तूप माना जा सकता है। यह गुहा पूर्व मौर्य कालीन निर्माण जराशंक की बैठक की समकालीन मानी जाती है।' इस तथ्य के आधार पर इस बात का खण्डन हो जाता है कि मंदिरों का उद्भव बौद्धस्तूपो से हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चैत्य

चैत्य शब्द का उद्भव चिता या चितो या बोधिवृक्ष से हुआ माना जाता हैं। चैत्य शब्द का प्रयोग चिता के सन्दर्भ में होने से भस्मी अवशेष पर बनाये गये स्मारक की ओर संकेत करता है। अतः एक अन्य संदर्भ को चैत्य को श्मशान की संज्ञा दी गई है। बौद्ध साहित्य में अनेक स्थलों पर स्तूप के लिए चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। अमरावती स्तूप लेखों में स्तूप को चैत्य की संज्ञा दी गई है। अनेक स्थलो पर चैत्यों में बौधिवृक्ष भी मिलते हैं। चैत्य का तात्पर्य स्तूप से अथवा बोधिवृक्ष से या इसकी पृष्ठभूमि के विषय में जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है। बुद्ध ने दीर्घनिकाय के महापरिनिष्वान सूक्त में लिच्छवियों की प्रकृति के लिये चैत्य पूजा को अनिवार्य बताया है। वैशाली के छः चैत्यों के नाम उद्देन, गोतमक, सतम्बक, बहुयुत, सरदन्द तथा चपल बताये गए हैं। दिव्यावदान में अन्तिम तीन नाम भिन्न प्रकार से दिया है। जैसे गौतम, व्यग्रोथ, शालवध, संतबक आदि । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि चैत्य पूजा वृक्ष या वृक्ष कुंज थे। न्यग्रोथ चैत्य से स्पष्ट होता है कि यह वृक्ष था। बहुयुत शब्द से ज्ञात होता है कि यह पीपल का वृक्ष था। बुद्ध ने भी दिव्यावदान में चैत्य वृक्ष का उल्लेख किया है।

सिन्धु सभ्यता से ही भारत में वृक्ष पूजा के संकेत प्राप्त होते हैं। गौतम बुद्ध को पीपल वृक्ष के नीचे बुद्धत्व की प्राप्ति होने के कारण इस वृक्ष का महत्व अधिक हो गया था। अतः सम्भव है कि वृक्ष को ही चैत्य के रूप में स्वीकारा जाने लगा हो।

भरहुत की वेदिकाओं पर मृगो द्वारा रचित वृक्ष के अर्द्ध चित्त पर "मग समदक चैत्य" अर्थात् हिरणों का आनन्द दाता चैत्य से ज्ञात होता है कि पूजनीय वृक्ष को एक चैत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान का प्रतीक बोध वृक्ष ही बौद्धों के लिये चैत्य था। सांची और भरहुत के तोरण द्वारों पर बुद्ध के प्रतीक के रूप में कहीं बोधिवृक्ष, कहीं चैत्य, कहीं धर्मचक्र प्रदर्शित किया गया है। प्रारम्भ में चैत्य के आस पास वेदिकाओं का निर्माण किया जाता था। प्राचीन काल की प्राप्त सिक्को में भी वेदिकायें पवित्र वृक्ष के आस पास उत्कीर्ण मिली है।

उपलब्ध प्रमाणो के फलस्वरूप यह मत स्वीकार किया गया है कि मंदिरों के रूप निर्धारित करने में बौद्ध चैत्यो का उल्लेखनीय योगदान रहा है। पुनः उन्हीं प्रमाणों के आधार पर चैत्य से मंदिर उद्भव की बात का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डन करते हैं। सम्भव है कि उस काल में इनका निर्माण चिताओ के स्थान पर किये जाते रहे होंगे यह पद्धति आज भी कई स्थानों पर मठों या शिवलिंग युक्त चबूतरों के रूप में विद्यमान है। वृक्ष के रूप में चैत्य की पूजा पद्धति भी कोई बौद्ध परम्परा नहीं है। मोहनजोदडो और हड़प्पा की सीलों में वृक्षो का अंकन है। मेगस्थनीज ने भी वृक्षो को पूजनीय बताया है। सम्भवतः उस प्राचीन परम्परा को चैत्यो के रूप में स्वीकार कर लिया। चैत्यो में स्तूपों ने भी प्रवेश किया। स्तूप भी मूलतः बौद्ध नहीं है। अतः हिन्दू मंदिरों के निर्माण में चैत्यों की परिकल्पना सही प्रतीत नहीं होता। कई विद्वानों के मतानुसार प्राचीन वैदिक झोपडियों ने कालान्तर में चैत्यो का स्वरूप धारण किया। कुछ अन्य विद्वान भी दक्षिण भारत के चैत्यों का पूर्ववर्ती रूप टॉंडा कुटीरों को मानते हैं। इन आधारों पर अधिकांश विद्वान चैत्यो से मंदिर के उद्भव की कल्पना न करते हुए यह मानने लगे हैं कि मंदिर और चैत्य दोनों के ही पूर्व रूप प्राचीन कुटीर थे।

सम्भवतः वैदिक कालीन वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम पद्धति से उन्होंने यह प्रेरणा प्राप्त की। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षु अपने लिये न तो कोई निवास और न किसी रूप का निर्माण कर सकते थे परन्तु कालान्तर में भिक्षुओं की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप प्राकृत गुफाओं तथा योग्य शरण स्थलों का अभाव हो गया तो बुद्ध को उन्हें कृत्रिम विश्राम स्थलो पर संघ वद्ध होकर रहने की अनुमति देनी पड़ी। धीरे-धीरे बौद्ध मत में संघ एक अनिवार्य तत्व बन गया तथा बुद्ध तथा धर्म के साथ-साथ संघ की शरण में जाने का निर्देश भी दिया जाने लगा।

इसी प्रकार भिक्षुओं के निवास के लिये अस्थायी निवास की व्यवस्था की गई। स्वयं भगवान बुद्ध ने भी ऐसे विश्राम स्थलों पर निवास किया जिन्हें आराम कहते हैं। बौद्ध साहित्य में तपोदाराम, जीविकाराम, संघाराम आदि शब्दों का उलेख मिलता है। कालान्तर में भिक्षुओं के विश्राम स्थलों को कुछ स्थायित्य देने का प्रयास किया गया। ऐसे स्थलों को विहार की संज्ञा दी गयी। महाश्रेष्ठि अनाथ पिण्डक ने भगवान् बुद्ध के लिये जेतवन में एक विहार निर्मित करवाया था। शनैः शनैः आराम स्थायी निवास के विषय बन गये। वस्तुतः सांची में वैदियाँ देवी द्वारा निर्मित संघाराम बौद्ध विहार ही है।

अतः देखा जाता है कि प्रारम्भ में आराम और विहार दोनों का अलग अलग अर्थों में प्रयोग किया जाता था। परन्तु बाद में ये एक दूसरे के पर्याय बन गये। जब इन विहारो को स्थायित्व देने का प्रयास किया गया तो कृत्रिम गुहाओ का निर्माण होने लगा। बुद्ध कृत्रिम गुहाओं के पक्ष में न होने के कारण मौर्य काल तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी बौद्ध गुहा का निर्माण नहीं हुआ। बराबर और नागार्जुनी पहाडियों पर जो गुफायें निर्मित हुई वे बौद्धों के लिये न होकर आजीविको के लिये निर्मित की गयी। किन्तु शुंग सातवाहन काल में बौद्धौ ने इस प्रतिबन्ध को तोड़ा। अतः पहाड़ो को काटकर विशाल गुफाओ का निर्माण प्रारम्भ हुआ। कार्ले, कन्हेरी, अजन्ता आदि स्थानों पर विशाल गुफायें पर्वतो को काटकर बनायी गयी। ये गुफायें चैत्य या विहार के रूप में निर्मित की गयी थी।

उड़ीसा में उदयगिरि और खण्डगिरि पर्वत पर जैनियों द्वारा इसी प्रकार के नमूनों की गुफाओं का निर्माण करवाया गया। इस प्रकार चैत्यो और विहारों के रूप में गुहाओं का निर्माण कुछ सदियों तक जारी रहा। जब मंदिर निर्माण की विधा अत्यधिक लोकप्रिय हो गई तो यह परम्परा शिथिल पड़ गयी। तथापि जैनियों की स्थानक पद्धति के रूप में तथा शैवादि सम्प्रदायों की मठ पद्धति के रूप में विहार अपना अस्तित्व प्रदर्शित करते हुए आज भी विद्यमान है।

रामान्या के मतानुसार विहार बौद्ध धर्म की देन नहीं है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने रामायण और चुल्लवग्ग में उल्लिखित अनेक संदर्भो का उदाहरण दिया है। उनका कहना है कि विहार हिन्दू वैदिक मत की देन है जिसे कालान्तर में बौद्धों ने ग्रहण किया था। तारापाद भट्टाचार्य[28] का कथन उल्लेखनीय है कि बौद्ध विहारों चैत्यो या स्तूपो का निर्माण निश्चित ही बौद्ध देन न होकर पूर्व में बहुत समय से प्रचलित रहने वाले वैदिक प्रासादो चैत्यो एवं विहारो की वास्तु परिणति है।

रथ से मंदिर उत्पत्ति का सिद्धान्त

दक्षिण भारत में शिल्प निर्माण के संदर्भ में अधिकांश विमान शब्द का प्रयोग मिलता है। यद्यपि इससे स्पष्ट नहीं होता कि वस्तुतः विमान से आशय किस प्रकार के भवन से था। परन्तु कालान्तर में दक्षिण भारतीय कोशकारों एवं वास्तु ग्रन्थों ने स्पष्ट ही विमान को मंदिर का पर्याय बताया है। उत्तर भारत में भी विमान शब्द का प्रयोग वास्तु के रूप में प्रयोग किया गया है। रामायण में "प्रसादागृह विमानेषु"[29] जैसे संदर्भ इस बात को प्रमाणित करते हैं। अतः हैवेल और आनन्द कुमार स्वामी मंदिरों का उद्भव रथों से मानते हैं इस सम्बन्ध में उन्होंने यह तर्क दिया है कि उत्तर भारत में मंदिरों के लिये रथ और दक्षिण भारत में विमान शब्द का प्रयोग रथों में मंदिरों का उद्भव निरूपित करता है।[30]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोणार्क का सूर्य मंदिर पूर्ण रूप से रथ शैली में निर्मित है। मामल्लपुरम के मंदिर तो रथ ही कहलाते हैं। परन्तु उपर्युक्त साक्ष्य से यह प्रमाणित नहीं होता कि रथों के अनुकरण के आधार पर मंदिरों का उद्भव हुआ। भारतवर्ष में इस प्रकार के मंदिरों की संख्या बहुत कम उपलब्ध हैं जो रथ शैली का उदाहरण प्रस्तुत करते हों। प्राचीन दक्षिण भारतीय शिल्प ग्रन्थ में मंदिरो के संदर्भ में विमान शब्द का प्रयोग नहीं मिलता अपितु प्रासाद शब्द का प्रयोग किया गया था। इसी प्रकार उत्तर भारतीय ग्रन्थों में भी मन्दिरों के लिए रथ शब्द का प्रयोग कालान्तर में प्रसिद्ध हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धान्त के प्रवर्त्तक 'समरांगण सूत्रधार' के सन्दर्भों से अत्यधिक प्रभावित है। इस ग्रन्थ में उल्लेख है कि प्राचीन काल में ब्रह्मा ने देवगणों हेतु पांच विमान निर्मित किये ताकि देवगण आकाश में विचरण कर सके। इनकी अनुकरण करके लोगों ने प्रासादो का निर्माण प्रारम्भ किया। अतः प्रतीत होता है कि राजा भोज ने समरांगण सूत्रधार में विमान और रथ को ही मंदिरों का मूल पर्याय मानकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अतः आधुनिक विद्वानों ने भी इसे मंदिर उद्भव का एक प्रामाणिक साक्ष्य मान लिया। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विमान या रथ शब्द मंदिरों के मूल पर्याय नहीं है। वे कालान्तर में उनके लिये प्रयोग होने लगे।

वस्तुतः मंदिर के उद्भव के सम्बन्ध में प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्तों में एक भी सिद्धान्त अपने पूर्णरूप में तथ्यपरक नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव के मन में संगृहीत प्रति धार्मिक श्रद्धा सब विभिन्न प्रतीको के माध्यम से भौतिक अभिव्यक्ति पाने को आकुल होने लगा। जो अति प्रारम्भ में उसने वृक्षों, पर्वतों तथा शिलाश्रयो के चित्रो का अवलम्बन किया। कालान्तर में घडे हुए काष्ठ या प्रस्तर प्रती कों के रूप में सामने आए। इन प्रतीकों को सम्मान देने के लिए श्रद्धालुओं ने अपना निवास सदृश भवन पूजा अर्चना हेतु निर्मित किए । जब कला और सौन्दर्य बोध निश्चित धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं के साथ पुष्ट होकर सामने आया तो ईटो अथवा प्रस्तर के स्तूप चैत्य आदि बनने लगे। अन्तः मूर्ति जब एक सशक्त प्रतीक अभिव्यक्ति के रूप में उभरी तो आवासो के रूप में उस समय तक विकसित जो भी श्रेष्ठतम वस्तु था उसका प्रयोग भी धार्मिक अनुष्ठानो के लिये होने लगा। धीरे-धीरे इन धार्मिक प्रासादों को ही ईश्वरीय शरीर के रूप में माने जाने लगा तथा सैलागत विभिन्नता के होते हुए भी मंदिर एक विशिष्ट वास्तु विद्या के रूप में उभर कर सामने आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंदिरों के उद्भव के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुये यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रारम्भ में मंदिर उन आवासों अथवा प्रासादों की अनुकृति रहे जिन्हें निवास के लिये प्रयुक्त किया जाता था। मंदिर वास्तुकला के विकास पर विचार करने की दृष्टि से भारतीय वास्तुकला के सर्वेक्षण आवश्यक प्रतीत होता है। गुप्त काल तक भारतीय मंदिर वास्तुकला दो परम्पराओं में पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। एक उत्तर भारत की विश्व कर्मा परम्परा तथा दूसरी दक्षिण भारत की मय परम्परा मत्स्य पुराण[31] में दोनों परम्पराओं के प्रमुख वास्तु आचार्यों की रूचि की झलक दिखाई देती है। विश्वकर्मा प्रकाश में विश्वकर्मा पद्धति का निर्माण प्राप्त होता है।

भारत वर्ष में जब आर्यों का आगमन हुआ उस समय वास्तुकला की असुर अथवा मय परम्परा विद्यमान थी। ऋग्वेद में आचार्या की पूरियो[32] एवं नग्नजीत[33] नामक असुर आचार्य का उल्लेख है अनार्य या असुर वास्तुकला जहाँ प्रस्तर व ईंटो से युक्त थी वहीं आर्यों की वास्तुकला ईटों व काष्ठ की होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि चौथी शताब्दी ई०पू० दोनों परम्परायें एक दूसरे से इतनी अधिक प्रभावित हो गयी कि दोनों के बीच अन्तर करना कठिन हो गया। आयो के दक्षिण प्रभार ने दक्षिण भारत की वास्तुकला को इस सीमा तक प्रभावित किया कि वह उत्तर भारत शैली की प्रतिकीर्ति दिखाई पड़ने लगी। दोनों शैलियों में केवल एक अन्तर दृष्टिगोचर होता है कि जहाँ आर्य स्थापत्य आयताकार अथवा वर्गाकार होते थे। वहीं अनार्य स्थापत्य षटकोणीय अथवा अष्टकोणीय होते थे। वही अनार्य स्थापत्य षटकोणीय अथवा अष्टकोणीय होते थे। छठी शताब्दी आते-आते उत्तर भारत की विश्वकर्मा शैली कुछ विशिष्ट वास्तु मूल्यों के साथ विकसित होकर नागर शैली के रूप में प्रसिद्ध हुई। जबकि दक्षिण भारत की अनार्य शैली आंचलिक व परम्परागत विशेषताओं को विकसित करती हुई द्रविड़ शैली के रूप में प्रसिद्ध हुई। डॉ० के०पी० जायसवाल के अनुसार जब आर्यों की ईंटो व काष्ठ की वास्तुकला ने नागों की प्रस्तर वास्तुकला का अवलम्बन ग्रहण किया तो वह नागर शैली के रूप में प्रसिद्ध हुई।

मंदिर वास्तु की विभिन्न शैलियाँ

धार्मिक स्थापत्य के दृष्टिकोण से मंदिर वास्तु की कला भारतीय कला के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही मंदिर निर्माण का प्रचलन रहा है। यहाँ मंदिर वास्तु के निर्माण में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया है। अतएव समय परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शिल्पियों ने मंदिर स्थापत्य को विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न स्वरूपों से नवाजा। आगे चलकर यही मंदिर स्थापत्य की पहचान या विशेषता हो गई और मंदिर शिल्प शैली के रूप में व्यवहृत होने लगी। अतएव मंदिरों की निर्माण परम्परा को दृष्टि में रखकर ही उसका अनुकरण किया जाने लगा और वह शैली विशेष के रूप में पहचानी गई।

गुप्त काल में छठी सदी से मंदिर वास्तु के निर्माण में शिखर का प्रादुर्भाव होने लगा। इन मंदिरों का निर्माण ईंटो के द्वारा किया गया हैं। परन्तु छत के ऊपर चारों तरफ नये प्रकार के गुंबज का आकार बना हैं जिसे शिखर कहते हैं। शिखर शब्द से मंदिर के गर्भगृह की छत की ऊपरी बनावट से तात्पर्य है। गह की चिपटी (समतल) छत के ऊपर नया आकार बनने लगा। चारों दिशाओं से आकार की बनावट एक साथ प्रारम्भ होता है। यह बनावट ऊपर की ओर क्रमशः सिमटती जाती है। चारों तरफ ऊपरी आकार की पंक्तियाँ एक स्थान पर मिल जाती हैं। जिसे भारतीय वास्तु कला में " शिखर" के नाम से पुकारते हैं। इस बिन्दू से ऊपर दो आकार होते हैं। सबसे ऊपर भाग को कलश तथा निचले भाग को आमलक कहते हैं। इस प्रकार का शिखर उत्तरी भारत के मंदिरों में पाया जाता है। इसीलिये इसे आर्य शिखर कहते हैं।[34]

मंदिर वास्तु के शिखरों की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न विचार धारायें पायी जाती हैं। फर्गुसन महोदय आर्यवर्त, चालुक्य और द्राविड़ नामक तीन भागों में विभाजित किया है। इस धारणा के पीछे फर्गुसन ने जातिगत भावना को मूल कारण माना है। चालुक्य शब्द एक शासक वंश का सूचक है। यह भारत की दो जाति आर्य तथा द्राविड़ जाति का बोधक नहीं है।

डा० आनन्द कुमार स्वामी ने शिखरो की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तरी, माध्यमिक और दक्षिणी तीन भागों में विभक्त किया है। उत्तर भारत और दक्षिणी भारत के मंदिरों में जो अन्तर दिखाई देता है। वे अन्तर शिखर के आधार पर ही किए गए हैं। परन्तु मूल भावना सभी की एक ही थी- चौकोर गर्भगृह जिसमें मूर्ति की स्थापना होती है। सामने की ओर भक्तजनों की सुविधा हेतु मण्डप बना रहता है। गृह के चारों तरफ प्रदक्षिण पथ की व्यवस्था होती हैं। जो कि बहुत ही संकरा सा मार्ग होता है।

दक्षिण भारत के मंदिरों के प्रवेश द्वारा के ऊपर शिखर युक्त विशाल द्वार निर्मित करने की प्रथा चल पड़ी, जिसे गोपुरम् कहा जाता है। गोपुरम् और शिखर में मुख्य अन्तर यह है कि शिखर गर्भगृह के ऊपर गोपुरम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अपेक्षा ऊँचा बनाया जाता है और गोपुरम् का निर्माण विशाल प्रवेश द्वार के ऊपर किया जाता है। दक्षिण भारत के मंदिरों को देखने पर पता चलता है कि किसी विशाल मंदिरों के चारों दिशाओं में विशाल द्वार होते हैं। जिनके ऊपर शिखर बने होते हैं। इनको गोपुरम् के नाम से जाना जाता है। उनके बीच में देवायतन होता है और गर्भगृह के ऊपर विशाल शिखर पर इस गोपुरम् को शिखर की संज्ञा मंदिर वास्तु में नहीं दी जा सकती।

उत्तर भारत में निर्मित शिखर नागर नाम से जाने जाते हैं। नागर शिखर आयताकार गर्भगृह के ऊपर ऊँचा मीनार सा या गोल या चौकोर या जामित आकार का बना है और धीरे-धीरे ऊपर की ओर पतला होता जाता है। सबसे ऊपर आमलक के समान कलश की व्यवस्था और वहाँ कोई धार्मिक चिह्न भी चाहे वह त्रिशूल हो, चाहे शंख हो और चाहे कलश हो, दर्शाया जाता है।

ऐसी मान्यता है कि नागर शैली का प्रचार-प्रसार नाग राजाओं ने किया। इसलिये इसका नाम नागर पड़ा। दक्षिण के शिखर मंदिरों का द्राविड़ शिखर मंदिरों में वर्गाकार गर्भगृह के ऊपर आमलकयुक्त शिखर का निर्माण किया जाता था। जोकि कई मंजिलों में बनता था। इसके ऊपर वर्तुलाकार या अष्टभुजाकार कलश अथवा स्तूप का शीर्ष रहता था और अपनी विशालता के कारण शिखर का रूप धारण कर लेता था।

पर्सी ब्राउन[35] ने शिखरों के उद्भव के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। अपने ग्रन्थ में उन्होंने चित्रों पर आधारित शिखरों के विषय में सम्भावित रूपरेखा भी प्रस्तुत की हैं। शिखरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों, साहित्यिक स्रोतो एवं दन्त कथाओं के आधार पर हमें जो सामग्री प्राप्त होती हैं उस सामग्री के आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा सकते हैं-

लांगहर्स्ट का मानना है कि बौद्ध स्तूप के उत्तर भारतीय मंदिर के शिखर का उद्भव हुआ। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि स्तूप का अर्थ गोलाकार, अण्डाकार है जो ईसा के बाद धीरे-धीरे हजारो वर्षों में क्रमशः परिवर्तित एवं विकसित होते हुये शिखर के रूप में उभर कर सामने आए।[36]

परसी ब्राउन के मतानुसार ईसा पूर्व की प्रारम्भिक शताब्दियों में शिखरों या गुम्बदों का विकास हुआ। उत्तर गुप्तकाल में मंदिरों के साथ शिखरों का निर्माण किया जाने लगा। प्रारम्भिक गुप्त काल में निर्मित मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदयगिरि, सांची, तिगवां, ऐरण, भूमरा आदि में शिखर का अभाव पाया जाता है। नाचना कुठार के पर्वतीय मंदिर में पहली बार गुप्तो ने शिखर उठाने का सफल प्रयास किया है।[37]

उत्तर गुप्त काल में छठी सदी से मंदिरो के ऊपर शिखर का निर्माण किया जाने लगा। कानपुर के भीतरगाँव और देवगढ़ के मंदिर में शिखर का निर्माण हुआ। देवगढ का शिखर चालीस फीट ऊँचा माना गया है। जो भग्नावस्था में है। आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार शिखरों की उत्पत्ति रथाकार शैली के मंदिरों से हुई। उपरीय भाग भी रथ के उपरी भाग की भाँति ही और रथ के अर्ध आवरण की भाँति मंदिर वास्तु पर शिखर बनाये जाने लगे। जिस प्रकार से रथों के ऊपर कलश का रूप दूर से ही दिखाई देता है। उसी को आधार मान कर मंदिर के शिखरों की योजना बनी होगी। शिखरों की उत्पत्ति के इन सिद्धान्तों को मंदिरों की उत्पत्ति से जोड़ना ही उपयुक्त है। दूसरी शताब्दी ई०पू० के खारवेल के अभिलेखों को आधार मानकर के०पी० जायसपाल महोदय ने उस समय के शिखरों का अस्तित्व सिद्ध किया है। शिखर युक्त मंदिरों का उल्लेख मत्स्य पुराण में भी वर्णित है।

प्रारम्भिक गुप्त कालीन प्राचीन मंदिरों पर शिखर होने के परोक्ष साक्ष्य पाये जाते हैं। कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल में बना सूर्य मंदिर के शिखर युक्त होने का प्रमाण दशपुर का बन्धुवर्मन का 473-74 का अभिलेख प्रस्तुत करता है। सन् 424-25 के विश्व वर्मन के गंगधार अभिलेख में मयूराक्षक द्वारा जिस विशाल विष्णु मंदिर का उल्लेख किया है। उसमें यह उल्लेख किया गया है कि उस मंदिर का शिखर कैलाश पर्वत की भाँति ऊँचा है। बेसनगर के मंदिर के अवशेषो के सम्बन्ध में दूसरी सदी ईसा पूर्व का एक उदाहरण जिसमें आमलक पाया गया है। कुमार स्वामी महोदय ने बौद्ध ग्रन्थ "चुललबग्ग" में आमलक शब्द का उल्लेख पाया है।

हिन्दू भावना के अनुसार मंदिर वास्तु में शिखर, मेरू, मन्दर, कैलाश, त्रिकूट आदि पर्वतों से लिये गए हैं। ये पर्वत देवताओं के मुख्य निवास हैं। इसी धार्मिक भावना के आधार पर शिखर का विकास हुआ। मंदिर के बाह्य भागों में यक्ष, गंधर्व आदि की अनेक अलंकृत मूर्तियों का अंकन भी है। प्राचीन काल में पर्वत देवता ऋषि योगियों के तपस्या स्थल एवं क्रीडा स्थल भी माने जाते रहे हैं। वाल्मिकी रामायण के सुन्दरकाण्ड में इनका सुन्दर वर्णन मिलता है। आधुनिक शिखर मंदिरों को देखने से इसका कुछ आभास मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य कल्पना है कि भारतीय मंदिरों का यह रूप इन्द्र लोक स्थित भवनों की प्रतिकृति हैं क्योंकि देवता के निवास के लिये मंदिरों का निर्माण मानव निवास अथवा समाधि की अनुकृति के रूप में नहीं की जा सकती। ऐसा कहने वालों का यह भी दावा है कि इस कथन की सत्यता की पुष्टि की जा चुकी है। अन्ध विश्वास की दृष्टि से भले ही कुछ तत्त्व विद्यमान हो, परन्तु वास्तुकला की दृष्टि से ऐसी कल्पनायें उपेक्षणीय ही हैं।[38]

सम्पूर्ण भारत वर्ष में निर्मित मंदिर समूह को यदि एक दृष्टि से देखे परखें तो, मुख्य रूप से जो विशेषतायें दृष्टिगोचर होता है उसके आधार पर उन्हें तीन शैलियों में विभाजित किया गया है। ये तीन शैलियाँ मुख्य रूप से इस प्रकार हैं- नागर, द्राविड, बेसर।

उपर्युक्त तीन शैलियों के अतिरिक्त प्राचीन स्थापत्य सम्बन्धी ग्रन्थों में विभिन्न शैलियों के नाम पाये जाते हैं। वे हैं- लतिन, साधार, भूमि, नागर, पुष्पक, विमान' आदि । किन्तु ऊपर लिखित सभी नाम इन तीन शैलियों के अन्दर ही समाविष्ट हैं। डा० भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार, "इन तीन प्रधान शैलियों के प्रभेद हैं या निर्माण की दृष्टि से गौण हैं। इनमें नागर और द्राविड नाम तो यथावत् व्यवहृत हुए हैं। पर बेसर के मिश्र, मिश्रक, वाराट आदि पर्याय भी शास्त्रो में प्रयुक्त हुए हैं। वे उस शैली के स्वभाव और देश का संकेत हैं। कुमार स्वामी के मतानुसार, "यद्यपि नागर-शिखर का बहुत अधिक विकास हो चुका है, फिर भी वास्तविक स्वरूप में वे एक के ऊपर एक अनेक मंजिलो और छतों के संयुक्त और संकीर्ण स्वरूप ही हैं। इस कल्पना का मूल आधार आमलक है जो शिखर के शीर्ष रूप में मूल रूप का प्रतीक है। वह प्रत्येक मंजिल के कोनों पर अक्षुण रूप में अंकित होकर प्रत्येक मंजिल का स्थान निर्धारित करता है। इस प्रकार नागर और द्राविड़ शिखर दोनों का विकास एक ही रूप में हुआ है। केवल इतना अन्तर है कि नागर शिखर में मंजिलों का संकुचन एवं सम्मेलन इतना अधिक हो गया कि उसके आधार चिह्नों का लोप हो गया हैं और लम्ब-रूपको को चिह्न रूप में प्रधानता दे दी गई हैं। इसके विपरीत द्रविड़ शिखरों में मंजिल और आधार भावना का लोप नहीं हुआ है। समय परिवर्तन के साथ-साथ बाद में नागर- शिखरों में आधार चिह्न भी संकुचित होते-होते एकदम लुप्त हो गया है और उसमें आमलक कोण का भी पता नहीं चलता। विद्वान् रायकृष्ण दास का यह मत है कि वह केवल बौद्ध-शिखर मंदिरों के विकास को ही भवन खण्डन का सिमटन मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार शिखर के विकास के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। संक्षेप में यही माना जाता है कि ये शैलियाँ ब्राह्मण धर्म के मंदिरों से सम्बन्धित हैं। ये शैलियाँ शिल्प की प्रविधि, स्वभाव एवं देश विशेष की ओर ध्यान आकर्षित करती है।

अतः प्रमुख रूप से मंदिर स्थापत्य की तीन शैलियाँ प्रचलित हैं – नागर, द्रविड़ और बेसर। शोध विषय की दृष्टि से इनमे से नागर शैली का विवेचन ही अपेक्षित है, जो निम्न प्रकार है-

मंदिर स्थापत्य की नागर शैली

नागर शब्द की उत्पत्ति नगर से हुई है। जिसका अर्थ "पुर" से है। अतः "नागर" का सम्बन्ध पुर या नगर से हैं। कौटिल्य ने अपने महान ग्रंथ " अर्थशास्त्र " में नगर निर्माण के संदर्भ में मंदिर निर्माण को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। अपने ग्रंथ में कौटिल्य ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि नगर के किस दिशा या भाग में किस देव मंदिर का निर्माण करना चाहिये।

नगर संरचना के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक उल्लेख वास्तु शास्त्र के ग्रंथों में मिलता है। इसी संदर्भ में मंदिरों की बनावट व स्थिति पर उचित चर्चा की गई है। इस प्रकार के नगर की बनावट व स्थिति के अनुसार बने हुए मंदिर ही नागर शैली में निर्मित मंदिर होते थे। सम्भवतः सर्वप्रथम नगर में ही निर्मित होने के कारण अधिक संख्या में उपलब्ध होने के कारण यह नाम पड़ा हो अन्यथा इस निष्कर्ष पर पहुँचना सर्वथा युक्तियुक्त नहीं होगा कि जनपद (देहात) में मंदिर नहीं होते थे क्योंकि इस शब्द का प्रयोग न सिर्फ मंदिर के लिये होता है अपितु चित्र के लिये भी होता हैं। 'पुर' से उसका सम्बन्ध प्रायः इस कारण निश्चित होता है कि चित्र पौर और जनपदीय दोनों होते हैं। ईशानशिव गुरु देव पद्धति में नागर मंदिरों का उल्लेख अनेक बार हुआ है।

"कालिकागम" नामक ग्रंथ में नागर शैली में निर्मित मंदिरों के लक्षण एवं विशेषतायें इस प्रकार दिये गये हैं- "संरचना की दृष्टि से ये मंदिर विशेष प्रकार के होते हैं। ये आधार से शिखर तक चौपहला या वर्गाकार होते हैं। ऊँचाई में यह अष्टवर्गा होता है। इन आठ वर्गों (भागों) के नाम इस प्रकार हैं- मूल (आधार) मसरक (नींव और दीवारों के बीच का भाग) जंघा (दीवारें) कपोत्र (कोर्निस)। ये चारों खड़े रहकर शेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों भागों शिखर, गल (गरदन) वर्तुलाकार, आमलसारक (आमलक) और कुम्भ (शूल रहित कलश) का भार धारण करते हैं।[39]

नागर मंदिर के संदर्भ में वास्तु शास्त्र में उल्लेख किया गया है कि ये मंदिर आधार से सर्वोच्च अंश तक चार कोणा (चतुष्कोण) हैं। परन्तु इस प्रकार का उल्लेख (चतुष्कोण) सभी इमारतों के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया गया है। इस कारण "नागर शैली" में इन चार कोण अवयव को ध्यान में रखकर विशेष महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। द्राविड शैली में आठ कोण आकार दिखाई देता है। इसके विपरीत वेसर शैली में गोल आकार दिखाई देता हैं। इनके आधार पर उन शैलियों का विशेष मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थिति में अलग-अलग शैली का प्रत्यक्ष रूप (आकार) देखकर ही उसकी विशेषता बताई गई हैं।[40]

उत्तर भारत के मंदिरों में नागर या आर्य शिखर पाये जाते हैं। नागर शैली में निर्मित शिखर की संरचना गर्भगृह की चिपटी छत से प्रारम्भ होती है। शिखर की बनावट चारों कोनों से एक ही समय आरम्भ होता है। धीरे-धीरे टेडी होती हुई शिखर का आकार धारण करती हुई और ऊपर जाकर बिन्दू में मिल जाती है। शिखर के सबसे अन्तिम भाग को कलश और निचले भाग को आमलक कहते हैं। जायसवाल महोदय का मत है कि गुप्त से पूर्व काल में नाग राजाओं द्वारा बनाये गये शिखरों का नाम नागर दिया गया था।[41] परन्तु जायसवाल महोदय का यह मत सर्वमान्य नहीं लगता है। फर्गुसन महोदय ने नागर शिखर को शुद्ध भारतीय नहीं माना, अपितु इंडो आर्यन ढंग का माना है। परन्तु भण्डारकर महोदय ने आर्य शिखरों को शुद्ध भारतीय माना है।

यहाँ यह भी सम्भावना व्यक्त की जाती है कि वैष्णव धर्म के साथ शिखरों की उत्पत्ति का सम्बन्ध रहा हैं। गुप्त कालीन मंदिरों को देखने पर ज्ञात होता है कि छठी सदी के मंदिरों में नागर शैली के शिखर दिखाई पड़ते हैं। इसके उदाहरण झाँसी के देवगढ़ तथा कानपुर के भितरगाँव के मंदिर में उपर्युक्त प्रकार के शिखर मिलते हैं। राखालदास बेनर्जी के अनुसार गुप्त कालीन देवगढ़ मंदिर में ही शिखर का प्रार्दुभाव हुआ।[42]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० कुमार स्वामी का कथन है कि नागर शिखर की उत्पत्ति पिछले गुप्त काल में हुई। जिससे मंदिर तैयार किये जाने लगे। अतः छठी सदी से नागर शिखर शैली का प्रयोग भारतीय वास्तुकला में होने लगा और शिखर ईंटों के बनने लगे।

उत्तरी भारत में निर्मित मंदिरों की दो प्रमुख विशेषतायें हैं। प्रथम उनकी योजना तथा द्वितीय ऊँचाई छठी शताब्दी में बने मंदिरों में सभी जगह स्वास्तिकाकार योजना दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त वक्ररेखीय ऊँचाई को भी एक विशिष्ट लक्षण माना गया है। उत्तरी भारत में मध्य युग तक सभी जगह इस प्रकार की विशिष्टता एवं लक्षण युक्त मंदिरों का निर्माण होता रहा नागर वास्तुकला के अन्तर्गत दोनों विशिष्ट लक्षण हमेशा दिखाई पड़ता है। वर्गाकार योजना के आरम्भ होते ही दोनों कोने पर कुछ उभरा भाग प्रकट हो जाता है। जिसे " अस्त्र" का नाम दिया गया है। देवगढ़ (झांसी, उत्तर प्रदेश) का दशावतर मंदिर, नचना कुठार का महादेव मंदिर भितरगांव (कानपुर) का ईंटों से बना मंदिर इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

उपर्युक्त मंदिरों के शिखरों का अध्ययन करने पर नागर (आर्य) शिखर का आरम्भ दिखाई देता है। चौड़ी समतल छत से उठते हुये शिखर की प्रधानता है।[43]

ग्यारहवीं शती ई० तक हिमालय और नर्मदा के मध्य मध्य प्रदेश के विस्तृत भू-क्षेत्र में विभिन्न उप-शैलियों के साथ नागर प्रासाद शैली विकसित हो चुकी थी। पश्चिम में राजस्थान और गुजरात से लेकर पूर्व में कलिंग तक इस शैली का विस्तार हो गया था। नागर शैली के मंदिरों की उप-शैलियों के बीस नाम मिलते हैं- (1) मेरू, (2) मन्दर, (3) कैलाश, (4) विमानच्छन्द (5) नन्दन (6) समुद्रग, (7) पद्म (8) गरूड़ (9) नन्दिवर्धन, (10) गज (या कुंजर), (11) गृहराज, (12) वृष (13) हंस, (14) कुंभ (15) सर्वतोभद्र, (16) मृगराज, (17) वर्तुल, (18) चतुरस्र, (19) षोड्शार (20) अष्टास्त्र।

प्रथम तीन शैलियों मेरू, मन्दर, कैलाश के मंदिर विशाल आकार के होते थे। इनमें से प्रत्येक में कई भूमियाँ (मंजिलें) होती थीं नन्दन उप शैली के मंदिर भी बड़े आकार के होते थे परन्तु उनमें मंजिलें कम होती थीं । विमानच्छन्द नामक मंदिर प्रकार भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आता है। उनका तल विन्यास चौकोर होता है और वे छह कोणों वाले होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त शेष पंद्रह नागर-उपशैलियों के मंदिर गोल या अनेक कोणों के तल- विन्यास वाले होते हैं। नाम के अनुरूप गज या कुंजर नाम वाले मंदिर की छत गज की पीठ की आकृति में निर्मित होती थी वर्तुल उप-शैली वाले मंदिर गोल आकार के होते थे। चतुरस्त्र का आकार चौकोर, षोडशार का सोलह पहलू तथा अष्टास्त्र का अठपहलू होता था। ये सभी मंदिर अधिकांशतः इकहरे होते थे। उनके ऊपर अन्य मंजिलों का निर्माण नहीं किया जाता था। गुजरात के गोप नामक स्थान के मंदिर तथा मध्य प्रदेश के भूमरा के मंदिर इसके उदाहरण हैं। कर्नाटक में बादामी के प्रारम्भिक मंदिर इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

विभिन्न प्रकार के मंदिरों में नागर शैली में निर्मित मंदिरों की संख्या ही सर्वाधिक मिलती है। हिमालय से लेकर विंध्याचल के मध्य अर्थात् उत्तर भारत में निर्मित मंदिर मुख्यतः नागर शैली के ही हैं। मुख्यतः चतुष्कोण गर्भगृह के ऊपर झुकी हुई रेखाओं से संयुक्त छत्ते की भाँति विमान शिखर वाले नागर मंदिर नर्मदा के दक्षिण में कम हैं किन्तु उत्तर में हिमालय से विंध्याचल के मध्य प्रचार-प्रसार अधिक हैं। इस प्रकार भौगोलिक क्षेत्र के विस्तार के अनुकूल ही उसकी संख्या भी प्रभूत रही है। मध्य प्रदेश इन मंदिरों के प्रसार का प्रमुख केन्द्र रहा है। पंजाब, हिमालय, कश्मीर, राजस्थान, गंगा की घाटी, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल आदि में मध्य कालीन हजारों मंदिर प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जहाँ एक ओर बंगाल और उडीसा, वही दूसरी ओर लाट और महाराष्ट्र तक उस शैली का विस्तार रहा है। उत्तर में हिमालय के चंबा-कांगडा से दक्षिण में तुंगभद्रा पार तक केन्द्र से दूर हटकर नागर शैली के प्रान्तीय-भेद और नाम हो गये हैं। जैसे उडीसा में वही "कालिंग" और गुजरात में लाट कहलाई। इसी प्रकार हिमालय के अन्तर्गत आने वाले नागर मंदिरों को "पार्वतीय" कहा गया हैं।[44]

प्राचीन काल में यद्यपि उत्तर भारत के अत्यन्त विशाल क्षेत्र में नागर शैली का विकास हुआ था। किन्तु वर्तमान समय में गंगा के मैदान में नागर शैली की वास्तुकला के उदाहरण नहीं के बराबर हैं। इस क्षेत्र के अधिकांश मंदिर ध्वस्त हो गये हैं। उत्तर प्रदेश के दक्षिणी पठारी भाग, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात के क्षेत्रों में नागर शैली के अनेक मंदिर अपेक्षाकृत सुरक्षित अवस्था में स्थित हैं। हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू-कश्मीर में भी कतिपय प्रसिद्ध मंदिर स्थित है। दक्षिणी उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में रामनगर तथा कालिंजर में शिव के मंदिर हैं। हमीरपुर, झांसी एवं ललितपुर जनपदों में नागर शैली के मंदिरों के उदाहरण अनेक स्थानों पर मिलते हैं। ललितपुर जिले में दुधई, चन्दनपुर, मदनपुर तथा देवगढ़ नामक स्थानों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागर शैली के मंदिर विद्यमान है। मध्य प्रदेश के अधिकांश जिलो में नागर शैली के मंदिर तथा मंदिरों के अवशेष मिलते हैं। छतरपुर जिले के खजुराहों नामक स्थान पर स्थित मंदिर अपेक्षाकृत सुरक्षित अवस्था में है। इसके अतिरिक्त गुजरात एवं राजस्थान के विभिन्न स्थानों में नागर शैली के मंदिरों का निर्माण किया गया। हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में मसरूर नामक स्थान पर पत्थरों को काटकर नागर शैली के कतिपय मंदिरों का निर्माण आठवीं शताब्दी में किया गया। जम्मू-कश्मीर में आठवीं शताब्दी में ललितादित्य मुक्तापीड़ के शासनकाल में बड़े पैमाने पर मंदिरों का निर्माण हुआ।

गुप्त काल में मंदिर स्थापत्य कला का विकास

साहित्य और कला के सम्पूर्ण क्षेत्र में गुप्तकाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस क्षेत्र में गुप्त काल की अभूतपूर्व उपलब्धियाँ रही हैं। इस काल में ललित कलाओं के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। गुप्त सम्राट भागवत धर्मानुयायी थे। परन्तु वे धार्मिक सहिष्णु थे। फलस्वरूप सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप गुप्त काल की ओजस्विता एवं भावाभिव्यंजना गुप्त युग की अद्वितीय सम्पन्नता को दर्शाता है। धार्मिक, दार्शनिक एवं कलात्मक विचारधाराओं के सम्मिश्रण से अद्वितीय सौन्दर्य का विकास हुआ। इस काल की कलात्मक रचनाओं में धार्मिक कला ही नहीं अपितु लोक धर्म कला भी दर्शनीय है।

उत्तरी भारत में गुप्त वंश का उदय तीसरी शताब्दी के अंतिम काल में हुआ। गुप्त शासक धार्मिक परायण थे। अतः गुप्त सम्राटो एवं समाज के सम्पन्न वर्गों द्वारा भक्ति भावना से प्रेरणा प्राप्त इष्ट देव की पूजा अर्चना हेतु मंदिरों का निर्माण किया। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत विहारों के केन्द्रीय प्रकोष्ठ में बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठापित होने लगी थी। ब्राह्मण धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश का विशिष्ट स्थान था। सगुण विचारधारा के फलस्वरूप विष्णु, शिव सर्वमान्य देवता माने गये। विष्णु वैदिक देवता के रूप में माने जाते हैं।

गुप्त शासक वैष्णव मतावलम्बी थे। अतः वैष्णव मंदिरों का अधिकाधिक निर्माण होने लगा। गुप्त काल के पूर्व मंदिरों का निर्माण लकड़ी अथवा अन्य नष्ट होने वाली सामग्री से किया जाता था। सर्वप्रथम गुप्त काल में मंदिर निर्माण प्रक्रिया में पाषाण का उपयोग प्रारम्भ हुआ। कालांतर में मंदिर निर्माण के सिद्धान्त के क्षेत्र में दृढता एवं स्थायित्व की दृष्टि से मंदिर निर्माण में पाषाण का प्रयोग सर्वाधिक सफल प्रयास माना गया। ईश्वर की सगुण उपासना और भक्ति सम्प्रदाय के विकास के फलस्वरूप समाज के सभी वर्गों को अभूतपूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा प्रदान की। फलस्वरूप भागवत धर्म से सम्बन्धित अनेक लोकप्रिय देवताओं जैसे वासुदेव और बलराम, वराह और नृसिंह, विष्णु शिव, स्कंद तथा बुद्ध की आराधना हेतु सम्पूर्ण उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी भारत में बहुत बड़ी संख्या में मंदिरों का निर्माण प्रारम्भ होने लगा। किन्तु वर्तमान में कुछ मंदिरों के अवशेष ही सुरक्षित है। पूजा और आराधना हेतु ऐसे मंदिरों की आवश्यकता हुई जिनमें देवमूर्ति को प्रतिष्ठापित किया जा सकें एवं उपासक को ईश्वर आराधना हेतु पवित्र सात्विक वातावरण प्राप्त हो सके। गुप्त मंदिरों के निर्माण में इन सभी उचित बातों को ध्यान में रखकर पर्याप्त उचित व्यवस्था की गयी।

गुप्त काल में चौकोर गर्भगृह तथा स्तम्भयुक्त अर्धमंडप के विशिष्ट मंदिरों की निर्माण कला का शिलान्यास हुआ। गुप्त कालीन मंदिरों के विकसित मंदिरों में प्रदक्षिणा हेतु आच्छादित प्रदक्षिणा पथ का निर्माण होने लगा। पत्थर द्वारा निर्मित प्रारम्भिक मंदिरों में पाषाण की सपाट छत पायी जाती है। जो अधिकांशत एक ही प्रस्तर द्वारा निर्मित होती थी। कालांतर में ईंट और प्रस्तर द्वारा मंदिर निर्मित होने प्रारम्भ हुए, जिन पर शिखर बना होता था। इस शैली का विकास स्तम्भों, द्वार के अलंकरणो तथा बुनियादी नक्शे (तल विन्यास) के विकास के आधार पर जाना जा सकता है। इस काल में कालान्तर में मंदिरो के अन्दर नवीन अलंकरण अभिप्रायों से युक्त गण, मिथुन, विद्याधर, द्वारपाल, जो उस देवता के प्रतीक हैं। जिसको मंदिर समर्पित किया गया है का समावेश किया गया।

सम्पूर्ण विश्व में भारत मंदिरों के देश के रूप में अभिहित हैं। वर्तमान में भी देश के विभिन्न भू-भागो में विभिन्न देवी देवताओं के मंदिर पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में मंदिरों की संख्या कम पायी जाती है इसका कारण नदियों की बाढ़ तथा आक्रमणकारियों द्वारा किये गये विनाश से मंदिर नष्ट हो गये। परन्तु दक्षिण भारत में अब भी मंदिरों की संख्या अधिकाधिक संख्या में पायी जाती है। दक्षिण भारत में मंदिर वास्तु का सर्वाधिक विकसित स्वरूप दिखाई पड़ता है। भारत में मंदिर निर्माण की परम्परा का प्रारम्भ बौद्ध स्तूपों और चैत्यो में पाया जा सकता है। गुप्त काल में इन्हीं से प्रभावित होकर हिन्दू मंदिरों का विकास हुआ था। गुप्त काल की यह मंदिर निर्माण परम्परा दक्षिण भारत में 19वीं शताब्दी तक बराबर जारी रहा।

भारत के हिन्दू मंदिर साधारण भवन नहीं थे। गुप्त काल में मंदिर को देवायतन, देव प्रासाद के रूप में कल्पित किया गया है। मंदिर तत्कालीन जन जीवन के केन्द्र बिन्दू थे। वे भारतीय संस्कृति के साकार स्वरूप माने गये थे। कृष्ण देव ने गुप्त मंदिरों की वास्तु शिल्प के विषय में लिखा है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Thus a firm foundation of Indian temple architecture was laid in the Gupta period when the basic, characteristic elements of the Indian temple-consisting of a square sanctum and a pillared porch-emerged. The examples of the evolved Gupta temple also show a covered processional-path for circumambulation which formed a part of the worship-ritual. The earlier examples in stone masonry are distinguished by a flat slab-roof, usually monolithic, while the later temples, constructed of either brick or stone, developed a shikhara. The gradual evolution of the style is traceable through development of the plan and the ornamentation on the pillars and door-frame, the latter introducing new decorative motifs like goblins (ganas), couples (mithunas), flying angels (vidyadharas), door-keepers (dvarapalas) and a significant figure relief in the centre of the lintel, emblematic of the deity to whom the shrine is dedicated.[45]

गुप्त काल में ईंटो और पत्थरो द्वारा मंदिरो का निर्माण किया गया। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश में अनेक गुप्त कालीन मंदिर प्राप्त हुए हैं। पहले चरण के अन्तर्गत छोटे आकार वाले प्रायः चौकोर मंदिर बनाये गये थे जिनकी छतें सपाट-समतल थी और जिनके समक्ष स्तम्भों पर आधारित मण्डप या बरामदा होता था। गुप्त काल में मंदिरों का विकास उनके गर्भगृह के ऊपर सपाट छत के स्थान पर शिखर के रूप में हुआ। आगे चलकर उत्तरी भारत के मंदिरों में ऊँचे और नुकीले अथवा पिरामिडनुमा शिखरों का निर्माण अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। इस प्रकार के मंदिरों में झांसी के निकट देवगढ़ का दशावतार का मंदिर, कानपुर जिले का भीतरगाँव का इष्टिका मंदिर, बोधगया का बुद्ध मंदिर तथा मध्य प्रदेश के रायपुर जिले में सिरपुर का लक्ष्मण मंदिर रूप से उल्लेखनीय है।'

छठी शताब्दी से गुप्त काल में शिखर युक्त मंदिरों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। शिखर शब्द से तात्पर्य मंदिर के गर्भगृह की छत की ऊपरी बनावट से है। इन मंदिरों के निर्माण में ईंट तथा पत्थरों का प्रयोग किया जाने लगा। छत के गुम्बद का आकार बनने लगा था। जिसे शिखर कहते हैं। बनावट की दृष्टि से यह शिखर आकार में ऊपर की ओर सिकुड़ता जाता था। ऊपरी भाग को कलश व नीचे के भाग को आमलक कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। इस कोटी के मंदिर के अन्तर्गत भीतरगांव (कानपुर) देवगढ़ (झांसी) तेली का मंदिर (ग्वालियर) तथा सिरपुर के मंदिर आते हैं। इसके बाद बौद्ध गया का मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार का शिखर उत्तरी भारत के मंदिरों में दिखाई देता है, अतः यह आर्य शिखर के नाम से जाना जाता है।

मंदिर निर्माण के क्षेत्र में उत्तरवर्ती गुप्तकाल प्रयोग का काल प्रतीत होता है। सातवी आठवी सदी में विभिन्न प्रकार के मंदिरों का निर्माण हुआ। सपाट छत वाले मंदिर, अविकसित वक्रीय शिखर तथा घटते हुए तलों की कोणाकार छत वाले मंदिर के उदाहरण विभिन्न स्थलों से मिलते हैं। सपाट छत वाले लघु मंदिरों में त्रिरथ गर्भगृह तथा सामने की ओर दो स्तम्भों से युक्त मंडप हैं। मध्य भारत में दर्शनीय मंडप प्रारम्भिक प्रकार के गुप्त मंदिरों की परम्परा का निर्वाह करते हैं। इनमें आधे दर्जन से अधिक रामगढ छपरा और विदिशा जिले में सांची के पास वदोह स्थानों से प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त ललितपुर (झांसी जिला) के आस पास भी कई उदाहरण मिलते हैं।

उत्तर गुप्त कालीन मंदिरों के अन्तर्गत शिखर युक्त मंदिरों की गणना की जाती है। छत के ऊपर चारो तरफ नए प्रकार की संरचना अस्तित्व में आई जिसे शिखर कहते हैं। छठी सदी से गर्भगृह को चिपटी (समतल) छत के ऊपर नया आकार बनने लगा। बनावट चारों दिशाओं में एक साथ आरम्भ होकर क्रमशः सिमटती जाती है। भारतीय मंदिर वास्तुकला में ये शिखर युक्त मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। गुप्त कल के पश्चात मंदिर निर्माण कार्य प्रतिहार काल में ही व्यापक स्तर पर हुआ।

राजपूत पूर्वयुगीन मूर्तिकला

भारत में मूर्तिकला का प्रारम्भ मानव सभ्यता के प्रारम्भ के साथ-साथ हुआ जान पडता है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य पहाडों की कन्दराओं में रहता था और कन्द मूल फल से अथवा जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट भरता था। शिकार करने के लिए वह पत्थर के नुकीले हथियार बनाता था। उसी युग मे मनुष्य पत्थरो के इन हथियारो से हड्डियों या हाथी के दाँतों को इधर-उधर काट तराशकर मूर्तियो का रूप भी देने लगा था। इस प्रकार भारत मे मूर्तिकला का प्रारम्भ प्रागैतिहासिक काल मे ही हो गया था।

हडप्पा सभ्यता काल (सिन्धुघाटी की सभ्यता) मे मानव और पशुओ की आकृतियाँ मिटटी पत्थर और धातुओ से बनाई जाने लगी थी। छोटे आकार की हजारों नारी आकृतियाँ हडप्पा मोहेजोदडो, कालीबगाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि अनेक स्थानो से मिली है जिन्हें विद्वान मातृदेवी की मूर्तियाँ मानते हैं। उनका विचार है कि इन मूर्तियों का उपयोग घरेलू धार्मिक पूजा-पाठ मे किया जाता होगा। पत्थर की मूर्तियों मे एक योगी या पुरोहित की मूर्ति एक पुरुष-धड और एक नर्तक या नर्तकी का धड उल्लेखनीय है। मूँछे मुंडाएं किन्तु सिर के बाल और दाढी बढाए और कधे पर चादर डाले पुरोहित वाली मूर्ति मे आँखे आधी खुली हैं। अधखुली आँखो के कारण विद्वान इसे योगी अथवा पुरोहित मानते हैं। लाल बलुए पत्थर वाले धड में न शीश है न हाथ हैं और न जंघाओं के नीचे के पैर इस धड के नग्न होने के कारण कुछ विद्वान इसे जैन मूर्ति का प्रारम्भिक स्वरूप मानते है।[46] हड़प्पा-काल में धातु को गलाकर मूर्ति के रूप में ढालने की कला का भी विकास हो चुका था। इसका प्रमाण कॉसे की एक नर्तकी और भैसे की एक आकृति है।

इन स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त मिट्टी स्लेट चूना पत्थर आदि से बनाई गई हजारों मुद्राएँ (मोहरें या सील) भी मिली है जिन पर अनेक मानव तथा पशुओं की आकृतियाँ उकेरी गई हैं। इन पर एक अज्ञात लिपि के लेख भी हैं जिन्हें अभी तक निर्विवाद रूप से पढ़ा नही जा सका है। मोहेजोदडो से मार्शल महोदय को एक त्रिमुखी पुरुष आकृति वाली मुद्रा मिली थी। वह आकृति पलथी मारकर एक चौकी पर बैठी है। उसके शीश पर त्रिशूल जैसे सीग (श्रृग) है। आकृति के दाये हाथी और बाघ तथा बाएं गैंडा और महिष या भैसे की आकृतियाँ है। चौकी पर नीचे दो हिरन बने है। मार्शल ने इस मूर्ति की पहचान पशुपति शिव के प्रारम्भिक स्वरूप से की है। इस मूर्ति मे मार्शल को शिव का महायोगी त्रिवक्त्र (त्रिमुखी) तथा त्रिशृग स्वरूप प्रतिबिम्बित जान पड़ता है। कुछ अन्य विद्वान इस पहचान से सहमत नही हैं। इसी सभ्यता के खण्डहरों से पत्थर की छोटी-छोटी गोल चकरियाँ और उनके छेद मे आ सकने वाले नुकीले पत्थर भी मिले है जिन्हे शिवलिंग का पूर्व स्वरूप माना जा सकता है। कुल मिलाकर यद्यपि हडप्पा सभ्यता के मिले अवशेषों के आधार पर उस युग मे धार्मिक विश्वास और पूजा अनुष्ठान होने के साक्ष्य अवश्य मिलते है तथापि किसी देव-विशेष की मूर्ति अभी तक स्वीकार नही की जा सकी है।

वैदिक आर्यों की संस्कृति एवं परम्पराएँ महान थी उनका साहित्य अनुपम था। उन्होंने अपने रहने के लिए सुन्दर घरों का निर्माण किया था। आर्य संस्कृति उस काल में निश्चित हो फल-फूल रही थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के उद्घाटन से पहले ही स्वर्गीय पार्जिटर महोदय ने लिखा है, कि आर्यों ने भारत आगमन पर एक ऐसी सभ्यता देखी थी जो उनकी सभ्यता के समकक्ष ही थी-विशेषतः अवध एवं बिहार में। डॉ० सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कहना है कि "समय दूर नहीं जब यह स्वीकार कर लिया जायेगा कि वैदिक और आर्येतर सभ्यताएँ गंगा घाटी के निचले प्रदेश में जन्मी और यहीं से पश्चिम की ओर फैली।"[47]

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से यह संकेत प्राप्त होता है कि आर्य लोगों ने सुन्दरतम भवनों और पुरों का निर्माण किया था। अनार्यों के दुर्गों के संकेत भी प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में शतभुजी, अश्वमयी, आयसी, पुर आदि शब्दों के प्रयोग से उस काल की कला की ओर संकेत मिल जाते हैं। आर्यों के ये भवन या पुर ठोस, मजबूत, विशाल और संश्लिष्ट थे। इस काल के भवनों में ईंट के साथ लकड़ी का प्रयोग अधिक होता था। सम्भवतः ताम्र पत्र लकड़ी के ऊपर चिपका दिया जाता था। अथर्ववेद में वर्णित मकानों के भिन्न-भिन्न अंगों से स्थापत्य कला का आभास मिलता है। उपमित, प्रतिमित और परिमित शब्दों से लकड़ी के बने बल्ले या शहतीर की भिन्न-भिन्न स्थिति का पता चलता है; जैसे खड़ी, पड़ी, तिरछी इत्यादि । छप्पर बाँस का बना होता था, जिसमें फटे या पतले बाँस को घटाइनुमा हल्के तौर पर बांधा जाता था। इस काल में प्रयुक्त स्तम्भ लकड़ी के ही निर्मित थे। यज्ञ के समय यूप प्रतिष्ठित करने की परम्परा थी। मंत्रों द्वारा इस यूप की पूजा की जाती थी। यूप की चोटी पर फूलों की माला रखी जाती थी। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यूप अष्टपहल भी होते थे। चौकोर यूपों का भी उल्लेख मिलता है। वैदिक काल में श्मशान का निर्माण भी होता था । ये चबूतरे के रूप में बनते थे। इनका आकार गोलाकार, अण्डाकृत होता था; और इनके चारों और वेदिका बाड़ का निर्माण भी होता था बौद्धकालीन स्तूप प्राचीन श्मशान से अधिक भिन्न नहीं हैं। ऋग्वेद में स्तूप शब्द का प्रयोग हुआ है । हो सकता है कि उस काल में अनार्यों के कुछ स्तूप रहे हों।[48] ऋग्वेद में आर्यों की समाधि का एक रूप मृण्मय गृह का भी था। शायद यह एक मकबरा था जिसमें कब्र के ऊपर या नजदीक कई कमरे बने थे। मृण्मय गृह परिधिमय था । अतः स्वभावतः यह वर्तुलाकार रेलिंग से घिरा हुआ था। एक दूसरे प्रकार की समाधि पर्वताकार होती थी। मृतक के अवशेष पर मिट्टी का पहाड़ सा ढेर लगा दिया जाता था और एक लौग (लग्गा) इस पर खड़ा कर दिया जाता था।[49] डॉ० ब्लाख ने लौरियानन्दनगढ़ (चम्पारन) में इस प्रकार की एक समाधि की खोज की है, जो कि उन्हें खुदाई में प्राप्त हुआ है। खुदाई करते समय उन्हें लकड़ी के अनेक स्तम्भ तथा विभिन्न मिट्टी की तहों पर मनुष्य की हड्डियाँ मिली हैं। एक स्वर्ण-पत्र पर स्त्री की अंकित भद्दी आकृति भी मिली है। वैदिक काल में यज्ञ वेदियों का भी निर्माण होता था । इन्हीं यज्ञ वेदियों की रचना के मूल में हैवेल महोदय ने मन्दिरों के गर्भगृह और शिखरों के बीज देखे हैं। यज्ञ वेदियों में अनेक दिनों तक यज्ञ हुआ करते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि निरन्तर प्रज्जवलित रहती थी। धूप, पानी, वायु आदि से सुरक्षित रखने के लिए; दर्शकों की धुएँ आदि से रक्षा के लिये, धुएँ को सहज ही बाहर निकालने के लिए, यह यज्ञ भूमि विभिन्न रूपों से सुसज्जित की जाती थी। चिमनीनुमा छतों का निर्माण होता था। यज्ञ वेदी वर्गाकार होती थी। इस प्रकार यज्ञ वेदी या यज्ञ भूमि निश्चित ही आधुनिक हिन्दू मन्दिरों के शिखर और गर्भगृहों के मूल में स्वीकार की जा सकती है। वैदिक साहित्य में इन धार्मिक वास्तुओं के अतिरिक्त साधारण गृह, राज-महल और नगरों के भी उल्लेख मिलते हैं। 'हर्म्य' शब्द महल का द्योतक है; स्तम्भों के लिए स्थूण, खम्भ, विश्वम्भ और स्तम्भ शब्दों के प्रयोग के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। वरुण के सहस्त्र स्तम्भ वाले भवन का वर्णन भी मिलता है।

पाषाणों का प्रयोग वैदिक काल में किया जाता था या नहीं यह एक विवादास्पद विषय है। किन्तु यह तो निश्चित है कि इस काल में लकड़ी, बाँस, मिट्टी, कच्ची ईंट, तृण आदि का प्रचुर प्रयोग होता था । किन्तु ऋग्वेद में दृढ़ भवनों, दुर्गों, आयस, अश्ममय आदि शब्दों से प्रस्तर के प्रयोग की झाँकी भी मिल जाती है। ऋग्वेद में प्रस्तर निर्मित सौ नगरों का उल्लेख है।[50] इसी प्रकार ऋग्वेद में शत्रभुजी का उल्लेख आया है,[51] जो सैकड़ों परकोटे वाले नगर का सूचक है । "राजगृह के प्राचीन नगर की किलेबन्दी, चारों ओर पाषाण की बड़ी-बड़ी चट्टानों को एक पर एक रख कर की गई थी। पत्थरों को जोड़ने में किसी प्रकार का मसाला नहीं लगाया था। यह रक्षा पंक्ति अभी भी दस फीट ऊँची और सोलह फीट चौड़ी है। राजगृह के पाँचों पहाड़ों को घेरती हुई यह दीवार मीलों लम्बी थी। दीवार के ऊपर छोटे-छोटे पत्थरों और ईंटों की एक इमारत ही खड़ी कर दी गई थी। दीवार को और भी सुदृढ़ और सुरक्षित रखने के लिए ऊँची मीनारें बनाई गई थीं। वन गंगा नदी के समीप के पहाड़ों पर एक ऐसी मीनार का भग्नावशेष उपलब्ध हैं । "राजगृह की यह पाषाण किलाबन्दी वैदिक युग की तो नहीं है, भारत के प्राचीनतम अवशेषों में सिन्धु घाटी की सभ्यता के बाद की अवश्य है। इसका समय 800-600 ई०पू० माना जा सकता है। यदि यह अनुमान सत्य है, तो वैदिक और ब्राह्मण युग में भी पाषाणों का सीमित प्रयोग निश्चित रूप से होता होगा।[52]

वैदिक काल में स्थापत्य कला का विकास हो चुका था किन्तु मूर्ति और प्रतिमा-कला के उदाहरण नहीं प्राप्त होने के कारण यह विवाद का विषय है कि मूर्ति और प्रतिमा कला का विकास वैदिक युग में हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था या नहीं ? वस्तुतः वैदिक कालीन मूर्ति-कला एवं प्रतिमा- कला के उदाहरण न होने के दो कारण हो सकते हैं-

प्रथमतः तो यह कारण हो सकता है कि वैदिक काल के लोग ऐसे धर्म में विश्वास करते रहे हों जिसमें प्रतिमा पूजन का कोई स्थान नहीं था। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि वैदिक काल में मूर्तियों के लिए ऐसा पदार्थ उपयोग में नहीं लाया जाता रहा हो जो चिरकाल तक सुरक्षित रखा रहे । वैदिक काल में प्रतिमाओं की पूजा और उसका निर्माण होता था या नहीं इस विषय में विद्वानों के दो वर्ग हैं- प्रथम वर्ग के अनुसार वैदिक काल में प्रतिमा का पूजन या निर्माण नहीं होता था और दूसरे वर्ग के विचारक यह मानते हैं कि वैदिक युग में प्रतिमाओं की पूजा तथा निर्माण किया जाता था । प्रथम वर्गीय विचारकों का मत - कुछ विचारकों का कहना है कि वैदिक काल के व्यक्ति प्रतिमा पूजा नहीं करते थे। उनकी उपासना काल्पनिक एवं भावात्मक थी । प्रकृति के सौन्दर्य, वैभिन्य एवं वैचित्र्य से अभिभूत प्राणी भय एवं तन्मयता के कारण प्रकृति के विभिन्न रूपों की अमूर्त देवता के रूप में उपासना करने लगा । उनको प्रसन्न करने के लिए यज्ञ का आश्रय लिया गया, जिसमें आहुति देते समय वे उन विशिष्ट देवों के नाम से आहुति डालते थे। इस प्रकार यज्ञ की प्रधानता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी । मैक्समूलर महोदय का कथन है कि वैदिक धर्म मूर्तियों से परिचित नहीं है । भारत में मूर्ति पूजा बाद में प्रचलित हुई।[53]

विल्सन[54] विष्णुपुराण की भूमिका में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वैदिक कालीन उपासना काल्पनिक, भावात्मक एवं प्रतीकात्मक थी। यज्ञ का प्राधान्य था । अतः सभी अपने घरों में यज्ञ कर आहुति देते थे । अतः उनकी उपासना का आधार प्रतिमा न होकर प्रार्थना एवं आहुति थी ।

मैकडानेल ने इस विषय पर विस्तृत अध्ययन एवं गहन चिन्तन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कह दिया है कि वैदिक काल के प्रारम्भ में प्रतिमोपासना का ज्ञान भारतीयों को नहीं था। देवों का स्वरूप काल्पनिक तथा छाया मात्र था। उनकी प्राकृतिक शक्तियों एवं कार्यों के आधार पर उन्हें मूर्त रूप दिया गया, जैसे सूर्य के हाथ, उनकी किरणें तथा आँखें भौतिक रूप हैं। अग्नि की जिह्वा, उनकी लपटों की प्रतीक है, और किसी भी प्रकार की प्रतिमा का उदाहरण ऋग्वेद में प्राप्त नहीं होता है।[55]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लूमफील्ड महोदय का कहना है कि वैदिक कालीन व्यक्ति कलाकार की अपेक्षा तार्किक अधिक थे। इसी कारण तर्क के आधार पर उन्होंने देवों के रूप की अनेक प्रकार से कल्पना अवश्य की, किन्तु वे प्रतिमा की उपासना नहीं करते थे।[56]

दूसरे वर्ग के विद्वान प्रथम वर्गीय विचारकों के मत से सहमत नहीं हैं। डॉ० बोल्लेन सेन, कुमार स्वामी, वी०सी० भट्टाचार्य, आर०वी० चन्दा, गोपीनाथराव, वेंकटेश्वर इत्यादि विद्वानों ने इनका खण्डन किया है। ऋग्वेद में देवों के लिए प्रयुक्त हुए 'देवोनरस'[57] (अर्थात आकाश के मानव) तथा 'नृपेशस'[58] (मानव के आकार वाले) शब्द उनके काल्पनिक रूप को नहीं प्रकट करते वरन् यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय अपने देवों को मानवीय आकार में स्थापित करते थे। ऋग्वेद में एक स्थल पर रुद्र की रंगी हुई प्रतिमा का उल्लेख हुआ है जिसमें वे शक्तिपूर्ण गठे अंगों वाले भूरे वर्ण के होने के कारण सुनहरे रंग में रंगे हुए हैं।[59] वरुण को सुनहला कवच पहने हुए अपने आसन पर बैठे दिखलाया गया है। सभी अनुचर उनके चारों ओर बैठे रहते हैं। यह विवरण वरुण की प्रतिमा की ओर संकेत करता है। मरुत की उपासना करते समय 'नु मन्वानः एषां देवान् अर्चा[60] कहकर मरुत की अर्चा अर्थात् प्रतिमा का प्रसंग दिया गया है। इसके अलावा वपुः, तनुः रूप आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो वैदिक काल में प्रतिमा उपासना को स्पष्ट करते हैं। डॉ० बोल्लेन सेन ने इन्हीं आधारों पर यह बतलाया है कि वैदिक कालीन व्यक्ति प्रतिमाओं से परिचित ही नहीं थे वरन् उनकी पूजा भी करते थे।

ऋग्वेद में कहा गया है कि पूजा के समय व्यक्ति इन्द्र और अग्नि को सजाते थे।[61] एक अन्य स्थल पर प्राप्त 'सूर्यय सुषि रामिव'[62] प्रसंग का अर्थ एक लम्बी नली है। बल्लन्त्यन महोदय ने महाभाष्य के अनुवाद में इसका तात्पर्य एक सुन्दर लौह प्रतिमा से बतलाया है। इसके अतिरिक्त इन्द्र, सुशिप्र रुद्र, कपदिन तथा वायु दर्शन योग्य कहे गये हैं। इन्द्र के लिए कहा गया है कि-

कं इमाम् दशभिर्ममेन्द्रमं क्रीणाति धेनुभिः ।

यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्दधत् ॥[63]

अर्थात कौन मेरे इन्द्र को दस गायों में खरीदेगा। जब ये इन्द्र अपने वृत्र शत्रुओं को नष्ट कर देंगे तब हमें इन्द्र को फिर दे देवें। इन्द्र के सम्बन्ध में यह वर्णन बतलाता है कि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतिमा की पूजा होती थी। सम्भवतः इन्द्र के लिए उस समय कोई उत्सव होता होगा, जिसमें इन्द्र की प्रतिमा किराये पर ली जाती होगी। मन्त्र का वृत्राणि पद उन अनेक वृत्रों की ओर इंगित करता है जिन्हें इन्द्र मारते होंगे। इस प्रकार की प्रतिमाएँ इन्द्र की अत्यन्त प्रसिद्ध वृत्र- वध की कथा के आधार पर बनती होंगी। इस सम्बन्ध में आनन्द कुमार स्वामी का विचार है कि 'वृत्राणि' पद का अर्थ उन अनेक शत्रुओं से हैं, जिनको मारने की इच्छा से इन्द्र के रूप का द्योतक कोई प्रतीक था, उसकी पूजा की जाती थी। जिस प्रकार से भरहुत में बोधि वृक्ष तथा पादुका बुद्ध की प्रतीक मानी जाती है उसी प्रकार यह प्रतीक भी इन्द्र का द्योतक है। किन्तु वेंकटेश्वर महोदय इसे इन्द्र की प्रतिमा ही मानते हैं। यद्यपि कि यह प्रसंग प्रतिमा पूजा पर प्रकाश नहीं डालता है, किन्तु इससे ज्ञात होता है कि देवों की प्रतिमाएँ अवश्य थीं।

ऋग्वेद के अतिरिक्त यजुर्वेद' तथा अथर्ववेद' में देवताओं के अलौकिक और शारीरिक रूपों का वर्णन किया गया है। कोई व्यक्ति पूजा करते समय किसी देव की प्रतिमा के समक्ष कहता है कि तुम अपने वास्तविक रूप से इसमें प्रवेश करो। कोई कहता है कि इन्द्र को बनाने वाला चतुर कारीगर होगा।" ये प्रसंग इन्द्र के वास्तविक रूप को न बताकर प्रतिमा की ओर ही संकेत करते हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य में प्रतिमा निर्माण तथा पूजा के सम्बन्ध में प्राप्त विवरणों के आधार पर भट्टाचार्य महोदय उस युग में होने वाली प्रतिमा पूजा को स्वीकार करते हैं। सभी विद्वानों के मत- वैभिन्य को दृष्टि में रखते हुए राव महोदय ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि वैदिक काल में किसी न किसी अंश में प्रतिमोपासना विद्यमान थी और प्रतिमा- निर्माण का आधार विभिन्न देवों में विद्यमान शक्ति एवं यश था।

विभिन्न विचारकों ने वैदिक साहित्यों के अनुशीलन के आधार पर तत्कालीन युग में मूर्ति पूजा तथा निर्माण की बात स्वीकार की है। इन विचारकों की अवधारणा के अतिरिक्त वैदिक काल में मूर्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में कुछ अन्य तर्क भी दिये जा सकते हैं जो निम्न हैं-

(i) वेदों में बहुत से देवताओं का वर्णन है। उनके मानवीय स्वरूप का वर्णन है, उनके अस्त्रों, शस्त्रों, हाथों तथा अन्य काल्पनिक रूपों का वर्णन वैदिक साहित्य में मिलता है। उदाहरणार्थ: एक मन्त्र में इन्द्र को मोटी गर्दन वाला, लम्बोदर तथा सुन्दर भुजाओं वाला कहा गया है।[64] इसी प्रकार ऋग्वेद में एक मन्त्र में एक ऋषि आग्रह करता है कि हे इन्द्र ! मैं तुझे बड़े मूल्य में भी नहीं दूँगा (बेचूँगा) कोई सौ दे, हजार दे, या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस हजार ही क्यों न दें[65] यहाँ पर इन्द्र का सम्बोधन इन्द्र- प्रतिमा से ही है। इस प्रकार से कल्पना के ही रूपों का निर्माण इस बात का प्रमाण माना जा सकता है कि वैदिक काल में मूर्तियाँ बनाई जाती थीं।

(ii) वैदिक साहित्य में भौतिक पदार्थों से बनी हुई वस्तुओं अथवा शिल्पों का उल्लेख मिलता है। तक्षण कर्म करने के कारण बढ़ई को त्वष्टा या वर्धकि कहा गया है । इन्द्र के वर्णन में भी उसे रूपों के निर्माता के रूप में वर्णित किया गया है। वैदिक साहित्य में कला के लिए शिल्प का प्रयोग किया गया है, परन्तु इसमें तत्कालीन विभिन्न उद्योगों की भी गणना की गई है। एक स्थान पर 'स्वरूपकृत्सन' का उल्लेख किया गया है जिसका अर्थ है सौन्दर्यपूर्ण शिल्प का निर्माण करने वाला। इससे स्पष्ट है कि वैदिक समाज में भी सौन्दर्य बोध आ गया था और उसकी अधिष्ठात्री देवी श्री के नाम से प्रसिद्ध थी जो बाद में लक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

(iii) वैदिक काल में हमें विभिन्न प्रकार के प्रतीकों के भी वर्णन मिलते हैं। इन प्रतीकों में ऐसे बहुत से रूप हैं जिनका वैदिक यज्ञों में प्रयोग किया जाता था । जैसे पूर्व वैदिक काल में सूर्य को गरुड़ और अश्व के रूप में वर्णित किया गया है, अन्य प्रतीकों में चक्र, स्वर्ण, मेखला आदि थे जो सूर्य के पार्थिव प्रतीक थे। जिन्हें उत्तर वैदिक काल में निश्चित किया गया। इन प्रतीकों को भी मूर्तिकला का उदाहरण मानना चाहिए। ऐसे ही प्रतीक 'प्रकाशबहल नवदाटोली' आदि स्थानों से प्राप्त हुए हैं, अन्य प्रतीकों में स्वस्तिक और सूर्य चिह्न प्रमुख हैं जो रंगपुर से मिले हैं और इसी काल से सम्बन्ध रखते हैं । वास्तव में सिंधु घाटी सभ्यता के पतन के पश्चात् सभ्यता का विकास पूर्व में और दक्षिण में हुआ। इस समय गंगा की घाटी में रहने वाले लोग कुछ ऐसे मृद्भाण्डों का प्रयोग करते थे जिन्हें चमकीली लाल कुम्भ कला कहते हैं । इस मृद्भाण्ड के निर्माताओं को प्रायः आर्य माना जाता है। इनके माध्यम से भी तत्कालीन कला के विकास का बोध होता है। इन मृद्भाण्डों पर अनेक चित्रों का निर्माण हुआ है जो उस समय के प्रमुख विषय थे।

(iv) यह एक प्रमुख बात है कि इस समय के साहित्य में प्रायः वे सभी रूप एवं सभी देवताओं के सम्बन्ध में सूचना मिलती है जो परवर्ती काल में मूर्ति- कला के विषय बने । साहित्य में उनके शाब्दिक रूपों का वर्णन है जिन्हें बाद में विविध प्रतीकों की सहायता से सांसारिक वस्तुओं के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप दिया गया है। इनमें यक्ष', नाग, गन्धर्व, सूर्य आदि अनेक देवी देवताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में श्री लक्ष्मी नामक देवी का उल्लेख किया गया है जो सौन्दर्य और समृद्धि की देवी थी। पुरुष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्त में भी इसका उल्लेख एक गृहस्थ की देवी के रूप में किया गया है जिसे हाथियों द्वारा अभिषिक्त जल से उत्पन्न बतलाया गया है। हम जानते हैं कि परवर्ती काल में इन्हीं वर्णनों को ध्यान में रखकर श्रीलक्ष्मी की प्रतिमाएँ बनाई गईं। इसी तरह अथर्ववेद में यक्षों का उल्लेख है और यह यक्ष पूजा तत्कालीन लोगों के धर्म का एक अंग था जिसे मौर्य कला तथा उसके पश्चात् मूर्ति कला में स्थान दिया गया। इसी प्रकार चण्डिका और अदिति नामक देवियों के उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलते हैं, जो बाद के कालों में प्रतिमा के रूप में दिखाई गई है।

(v) वैदिक काल में स्थापत्य कला का विकास हुआ था। यद्यपि उस समय के भवन काष्ठ निर्मित होते थे जिसमें अनेक यूपों का निर्माण किया जाता था। निश्चित रूप से इन्हें मूर्तियों की सहायता से अलंकृत भी किया जाता होगा; और इस तरह भवन-निर्माण-कला के विकास के साथ-साथ मूर्तिकला भी विकसित जान पड़ती है।

(vi) इस समय मूर्ति कला के विकास का दूसरा प्रमुख कारण लोगों की बढ़ती हुई सौन्दर्य भावना हो सकती है; जैसा कि वैदिक साहित्य के कुछ वर्णनों के माध्यम से परिलक्षित होता है। यहाँ स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन मिलते हैं; विशेष कर ऋग्वेद में ऊषा के वर्णन में सुन्दरी स्त्री के सौन्दर्यपूर्ण अंगों का वर्णन है। इस समय सुन्दर मुख को 'सुप्रतीप' कहते थे। इस सम्बन्ध में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने बतलाया है कि " यद्यपि उस युग के मानव-शिल्प की सुन्दर कृतियाँ इस समय उपलब्ध नहीं है तथापि श्री और सौन्दर्य के वाची वे शब्द वरुण के दूतों की तरह हिरण्यमद्रापि पहने उस युग की सौन्दर्य निष्ठा का संदेश आज तक व्यक्त करते हैं। रण्वसंदृक् (रमणीक दर्शन वाली) रण्वा, रण्या, रोचमाना, सुरुपी, सुपेशा, सुभासा, सुभगा, सुरुचा, सुवसना, सुसुकाँशा, सुशिल्पा, सुदृशीकरूपा, सद्धशीकसंदृक्, सुप्रतीक, श्रीर (श्री सम्पन्न) चन्द्रवर्मा, चित्र, वाम, शुभ, ललाम, आदि शतशः शब्द वैदिक सौन्दर्यशास्त्र की साक्षी भरते हैं। वैदिक काल में स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण प्रेमी थे और दोनों ही प्रसाधन में रुचि रखते थे। स्त्रियाँ अपने सिर पर एक तार का अलंकरण बाँधती थीं जिसे ओपश कहते थे। सम्भव है कि यह पूर्व कालीन मृण्मूर्तियों में उपलब्ध सिर पर बने हुए पंखयुक्त मुकुट हों। इसी तरह से बालों से बने हुए जूड़ों का भी सुन्दर वर्णन किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(vii) लौरियानन्दनगढ़ से प्राप्त स्वर्ण-पत्र पर बनी नारी मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है । यह मूर्ति उस भीटे से प्राप्त हुई है जिसे वैदिक भीटा कहा जाता है। अतएव प्रायः सभी विद्वानों की यह धारणा है कि यह प्रतिमा लगभग 7-8वीं शताब्दी ई० पूर्व की मूर्ति कला का सुन्दर नमूना है। इसे ऋग्वेद में वर्णित पृथ्वी देवी की मूर्ति माना जा सकता है। यह मूर्ति एक शव के साथ स्थापित की गई थी और इसके पीछे सम्भवतः यही विचार था कि वह शव पृथ्वी देवी को समर्पित कर दिया गया है। वैदिक साहित्य में ऐसा उल्लेख है जिसमें कहा गया है कि "तुम अपनी माँ की गोद में जाओ, जो यह पृथ्वी है, वह सुन्दरी स्त्री की तरह कोमल और अत्यन्त पवित्र है; वह तुम्हारी रक्षा करेगी।" इस वर्णन के आधार पर इसे भू-देवी की प्रतिमा माना जा सकता है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे लक्ष्मी की प्रतिमा स्वीकार किया है। कुछ भी हो, यह एक नारी प्रतिमा है जिसकी शारीरिक रचना सिन्धु घाटी की सभ्यता में विकसित कला की विशेषताओं से युक्त है, क्योंकि इसके नितम्ब प्रदेश बड़े बनाये गये हैं, उसी प्रकार से यह एक नग्न मूर्ति है और उसके स्तन भी सिन्धु घाटी की नारी मूर्ति के स्तनों के समान हैं। इसके कटि प्रदेश में गुरियों की मेखला पहनाई गई है, जो सिन्धु घाटी का नारी मूर्तियों में भी था । अतएव इन्हीं विशेषताओं को दृष्टि में रखकर यह प्रायः सही धारणा है कि सिन्धु घाटी में विकसित मूर्ति-कला परम्परा इस समय तक जीवित रही और बाद में चलकर इन्हीं विशेषताओं से युक्त नारी प्रतिमाएँ भारतीय कला में बनाई गई।

(viii) ऐसी ही मृण्मूर्तियाँ मथुरा से भी प्राप्त हुई है जिन्हें मौर्य युग से पहले की कृतियाँ माना जाता है। इनमें भी प्रायः वही विशेषताएँ मिलती हैं जो लौरियानन्दनगढ़ की नारी मूर्ति में है। ऐसा लगता है कि यह मूर्ति-कला प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही थी । तक्षशिला के भीर नामक टीले से भी मूर्ति कला के उदाहरण मिले हैं जिनमें मृण्मूर्तियाँ भी हैं किन्तु गुरिया तथा खरादे पत्थर विशेष उल्लेखनीय है ।

(ix) पिपरहवा नामक स्थान से भी एक नारी प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसे मौर्य-काल से पहले की मूर्ति माना जाता है। इसका निर्माण भी लौरियानन्दनगढ़ से प्राप्त नारी - मूर्ति में मिली विशेषताओं के आधार पर किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि वैदिक काल के मानव-शिल्प की सामग्री हमें प्राप्त नहीं है तथापि कला के दार्शनिक दृष्टिकोण को समझने की महत्त्वपूर्ण रोचक सामग्री वैदिक साहित्य के मनन और विश्लेषण से प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौर्यकाल से पहले के कुछ पुरावशेष उत्तर प्रदेश मे इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी और गोरखपुर के निकट पिपरहवा से तथा बिहार मे पटना के निकट राजगीर की पहाडियो (प्राचीन गिरिव्रज) और लौरियानन्दनगढ़ के श्मशान चैत्य से मिले है। किन्तु इनमे मूर्तिकला के कोई साक्ष्य नही मिले हैं। केवल लौरियानन्दनगढ के श्मशान चैत्य से एक नग्न स्त्री की आकृति मिली है जो सोने के पत्र पर अंकित है। इसे मातृदेवी की आकृति माना गया है। इसी प्रकार उत्तरी भारत में तक्षशिला मथुरा कौशाम्बी पाटलिपुत्र आदि अनेक स्थानो से पत्थर की गोल चकरियाँ प्राप्त हुई है जिन पर प्राय सपक्ष पशुओ अथवा ताडवृक्षों के साथ एक नग्न मातृदेवी का भी अकन मिलता है। स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस देवी की पहचान श्री मातृदेवी से की है और इसीलिए उन्होने इन चकरियों को श्रीचक्र कहा है।

मौर्यकालीन कला की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थी जैसे- लकडी के स्थान पर भवनों में ईंटों और पत्थरों का प्रयोग तथा मूर्तियों में भी लकड़ी के स्थान पर पत्थर का प्रयोग एवं भवनो की दीवारो तथा मूर्तियो के ऊपर चमकदार पॉलिश का प्रयोग। इस पालिश के कारण पत्थर के स्थान पर धातु का भ्रम होने लगता था।

मौर्यकालीन कला प्राय दो प्रकार की मानी जाती है- राजकीय कला एवं लोक कला। राजकला के अन्तर्गत मौर्य नरेशो द्वारा बनवाए गए महलो स्तूपो चैत्यो और स्तभो की वास्तुकला तथा मूर्तिकला आती है। मौर्य नरेशों ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) मे एक भव्य राजप्रासाद (महल) बनवाया था जिसकी सुन्दरता की प्रशसा चीनी यात्री फाह्यान ने भी की थी। इस महल के अवशेष पटना के निकट बुलन्दीबाग तथा कुम्हरार नामक गाँवो मे मिले है। सम्राट अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने बिहार की बराबर और नागार्जुनी की पहाडियों मे भिक्षुओं के रहने के लिए गुफाओ का निर्माण करवाया था। इनमें लोमश ऋषि गुफा का प्रवेशद्वार बडा ही सुन्दर और उसका ऊपरी भाग स्तूपों और हाथियों की आकृतियों से अलंकृत है।

अशोक ने अपने राज्य मे स्तूप भी बनवाए थे जिनमे कुछ की नींवें ही मिल सकी हैं। सम्राट अशोक द्वारा स्थापित अनेक प्रस्तर- स्तभ आज भी मौजूद हैं। इन स्तम्भों को अशोक की लाट भी कहा जाता है। ये स्तम्भ तो गोल सादे और सपाट हैं परन्तु ऊपर एक अथवा चार सिँह अथवा हाथी एक बैल अथवा एक सिँह की आकृति जोडी गई है। सांची (म०प्र०) और सारनाथ (वाराणसी उ०प्र०) मे चार चार सिंहों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकृतियों से अशोक की लाटें सजाई गई थीं। इन लाटों (स्तम्भों) की सब ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सारनाथ वाली लाट के शीर्ष में नीचे उलटा कमल उसके ऊपर गोल घेरा जिसमे चार दिशाओं मे एक-एक चक्र बना है। इन चक्रों के बीच में एक सिँह एक हाथी एक घोड़ा और एक बैल की आकृति बनी है। इस घेरे के ऊपर चारो दिशाओ मे अपना मुँह खोलकर गर्जना करते हुए चार सिह बनाए गए है। ये सिह अगले पैरो से खड़े है किन्तु पिछले पैरो से पीठ मे पीठ सटाकर बैठ हे सारनाथ वाला यह सिँहशीष स्वतंत्र भारत की राजमुद्रा मान लिया गया है। इसे भारत के सिक्कों नोटों सरकारी दस्तावेजों तथा कार्यालयों की पट्टीकाओं पर अंकित किया जाता है। भारत के तिरंगे झण्डे पर इसी शीर्ष का चक्र बना रहता है। इसी को अशोक चक्र कहा जाता है।

चूँकि मौर्यकालीन राजकला में मानव आकृति नही बनाई गई थी इसलिए उसमे किसी देव मूर्ति का प्रश्न ही नही उठता है। मौर्य शुगकाल मे लोककला अपने विकास के चरम शिखर पर थी मूर्तियों के अतिरिक्त इस युग की लोककला के अन्तर्गत बडी-बडी आदमकद यक्ष-यक्षियों की पत्थर की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं इनमें परखम (मथुरा) से मिली मणिभद्र यक्ष की मूर्ति बारोद (मथुरा) से मिली यक्षमूर्ति झींग का नगर (मथुरा) से मनसा देवी यक्षी पटना संग्रहालय की यक्षमूर्ति दीदारगंज (पटना) की चामरधारणी यक्षीमूर्ति पवाया (गूजरीमहल संग्रहालय ग्वालियर) की मणिभद्र यक्षमूर्ति और विदिशा संग्रहालय की यक्ष यक्षी मूर्तियाँ विशेष रूप से गिनाई जा सकती है। ये सभी मूर्तियाँ विशालकाय है। यक्ष-मूर्तियों के शीश पर पगडी कंधों और भुजाओँ पर लहराता उत्तरीय कमरबन्ध तथा कण्ठा हार कर्णफूल भुजबन्ध (बाजूबन्द) और कलाई में कँगन आदि आभूषण हैं यक्षियों की कमर पर करधनी (मेखला) और पैरों मे पायल भी है। इन्हीं यक्ष मूर्तियों से प्रेरणा लेकर भारतीय मूर्तिकारो ने आगे चलकर बुद्ध बोधिसत्त्व और जैन तीर्थकरों की विशाल मूर्तियाँ गढ़ी और फिर कुषाण-गुप्तकाल मे शारीरिक समानुपात में मानव मूर्तियों को बनाया। भारतीय मूर्तिकला के विकास मे इन यक्ष - मूर्तियो का बड़ा महत्त्व है।

यक्षपूजा की परपरा भारत मे बड़ी पुरानी है जो किसी न किसी रूप मे आज भी देश के कोने-कोने में पाई जाती है। भारतीय साहित्य में विशेषकर बौद्ध साहित्य मे यक्षो की सूचियाँ मिलती हैं। प्रत्येक नगर अथवा गाँव का अपना एक यक्ष होता था जो उस नगर अथवा गाँव की रक्षा करता था। आज भी जक्ख अथवा जखैया' के नाम से ये गाँवों मे पूजे जाते हैं। इन्हें कहीं कहीं बीर, बरम्ह अथवा बरम बाबा' या बीर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैँ वाराणसी मे लहुराबीर और बुल्लाबीर की बड़ी मान्यता है। वहाँ डौडियाबीर कर्मनबीर आदि अन्य लोकदेवता भी पूज्य है।

प्राय प्रत्येक गाँव की आबादी के बाहर आज भी यक्ष परम्परा की माई (माता या देवी माता) अथवा बरम बाबा के थान (अधिष्ठान या चबूतरा) होते हैं किसी विशेष तीज-त्योहार अथवा जन्म या विवाह जैसे सामाजिक उत्सव के अवसर पर इनकी विशेष पूजा होती है। वर्ष मे किसी विशेष माह और तिथि पर इन लोक देवताओं के स्थान पर मेले भी लगते हैं पहले इन मेलो के अवसरो पर इन लोक देवताओं की शोभा यात्रा भी निकाली जाती थी जिसे जात्रा अथवा जत्ता कहते थे।

वस्तुत: एक समय लोकदेवो में यक्षो का बड़ा महत्त्व था। आर्य देवताओं के सम्पर्क में आने से पूर्व यक्षपूजा ही सर्वमान्य थी। मौर्यकाल की लोककला में मिलने वाली यक्ष- मूर्तियों इस बात की पुष्टि करती है। बौद्ध साहित्य में चार महाराज या बड़े यक्षो की पूजा का उल्लेख आता है। ये है उत्तर में वैश्रवण (कुबेर) पूर्व में धृतराष्ट्र दक्षिण में विरुढक और पश्चिम में विरूपाक्ष इनमे कुबेर यक्षो के अधिपति माने जाते थे। धन के देवता होने के कारण कुबेर की लोकप्रियता बहुत थी। शायद इसीलिए लक्ष्मी (धनदेवी) कुबेर की प्रिया कहलाई।

शुग-सातवाहन काल शुग- सातवाहन काल मे भारतीय मूर्तिकला का सर्वाग स्वरूप सामने आया। इस युग मे बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार अधिक होन के कारण भरहुत साँची (मध्य प्रदेश) सारनाथ (उत्तर प्रदेश) बोधगया (बिहार) तथा अमरावती (आन्ध्र प्रदेश) आदि स्थाना पर विशाल बौद्ध स्तूपों का निर्माण किया गया। इन स्तूपों की तोरण पट्टीकाओं स्तम्भों तथा वैदिका या बाढ़ के स्तंभों पर पत्थर के एक ओर उकेरकर मूर्तिकला आँकी गई। इसे उत्कीर्ण मूर्तिकला कहते हैं इसमे एक ओर तो उभरी हुई मूर्तियाँ दिखाई देती है किन्तु फलक के पीछे देखने पर सादा या सपाट रहता है या फिर दूसरी ओर दूसरी मूर्तियों को उकेर दिया जाता था जैसे आज के सिक्को के दोनो ओर दो प्रकार के अलग-अलग अंकन होते हैं।

शुगकाल में बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओ को तथा उनके पूर्व जन्म की जातक कथाओं को अंकित करके कथात्मक शैली का विकास हुआ। इस शैली के अन्तर्गत एक ही फलक में एक कहानी के अनेक दृश्य एक साथ उकेर दिए गए थे। जातक कथाओं मे छदन्त जातक महाकपि जातक वेस्सन्तर जातक ऋषि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शृग जातक आदि का तथा बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं मे उनका जन्म तपस्या के लिए गृह त्याग (महाभिनिष्क्रमण) बुद्धत्त्व की प्राप्ति (सम्बोधि) प्रथम उपदेश (प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन) और मृत्यु (महापरिनिर्वाण) का अकन उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त यक्ष-यक्षियों नाग-नागिनियाँ किन्नर - अप्सराएँ राजा-रानी सेवक-सेविकाएँ तथा विभिन्न वर्गों के नर-नारी काल्पनिक पशु-पक्षी (ईहामृग) हरे-भरे पुष्पित पल्लवित वृक्ष लताएँ कल्पवृक्ष झरने नदियाँ पर्वत वन उपवन आश्रम तपोवन तथा ऐतिहासिक नगरद्वार भी अंकित हैं।

स्त्री-पुरुषों के वस्त्राभूषण केश विन्यास राजाओं के जलूस युद्ध करती चतुरगिणी सेनाएँ किलेबन्दी महलों-झोपडियों की झांकी नृत्य सगीत वन विहार तथा पान-गोष्ठी आदि के दृश्य भी इन स्तूपों पर अंकित किए गए हैं वस्तुत शुग-सातवाहन कालीन इन स्तूपों पर तत्कालीन समाज की सजीव झांकी दिखाई देती है। जहाँ तक देव मूर्तियों की बात है इस काल की बौद्धकला में बुद्ध को मानव के रूप मे अंकित नहीं किया जाता था। बौद्ध धर्म की प्राचीन हीनयान विचारधारा मे ऐसी मान्यता थी कि जिसे बुद्धत्त्व या मुक्ति प्राप्त हो गयी हो या जो बुद्ध हो गया हो उसे पुन: आकृति या मूर्ति के बन्धन मे नही डालना चाहिए। इसीलिए इस काल मे बने बौद्ध स्तूपों चैत्यों विहारों अथवा बोधिघरों की उत्कीर्ण मूर्तिकला में बुद्ध को प्रतीको के रूप मे दिखाया गया था। उस युग के कलाकार ने ऐसे कई प्रतीकों की सर्जना की जिनसे तथागत बुद्ध की उपस्थिति दर्शायी गई। बुद्ध के जन्म को प्रदर्शित करने के लिए कलाकार ने पद्म या कमल की कल्पना की। इसी प्रकार उनके बुद्धत्त्व प्राप्त करने की घटना के लिए बोधिवृक्ष बनाया गया उनके प्रथम उपदेश (प्रथम) धर्मचक्र प्रवर्तन को चक्र बनाकर दिखाया गया जिसे प्राय धर्मचक्र कहा जाता है और उनके देहावसान (महापरिनिर्वाण) को स्तूप के रूप में अकित किया गया। चूँकि स्तूप एक प्रकार के स्मारक (समाधि) थे इसलिए उनके माध्यम से उनकी मृत्यु दर्शायी गई थी। छत्र लगे आसन तथा पदचिह्न के माध्यम से भी बुद्ध की उपस्थिति अंकित की गयी थी।

इस युग की बौद्ध मूर्तिकला में ब्रह्मा इन्द्र लक्ष्मी सूर्य और मार (कामदेव) तथा लोक देवताओं मे अप्सराएँ विद्याधर किन्नर यक्ष नाग गन्धर्व आदि अंकित किए जाने लगे थे। साँची, भरहुत, बोधगया, अमरावती आदि स्थानो के स्तूपों पर इन देवी-देवताओं के अंकन मिलते हैं एक लक्ष्मी को छोड़कर ये सभी देवी-देवता बुद्ध की उपासना और सेवा मे तल्लीन दिखाए गए हैं किन्तु इनमे अकेले लक्ष्मी को ही बुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीकों के समान स्वतंत्र और सपूज्य दिखाया गया है। लक्ष्मी को छत्र चामर और अभिषेक जैसे राज-चिह्नों से प्रतिष्ठित दिखाया गया है। ब्रह्मा और इन्द्र के समान उसे किसी भी फलक में बुद्ध की सेवा मे प्रदर्शित नही किया गया है।

ब्रह्मा तथा इन्द्र को शीश पर उष्णीष धारण किए सदैव बुद्ध के निकट दिखाया गया है। बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे तपस्या करते समय और स्वर्ग मे अपनी माता मायादेवी को उपदेश देने के बाद साकाश्य मे भूमि पर उतरते समय दोनो बुद्ध के साथ दिखाई देते हैं साँची शिल्प मे ब्रह्मा को प्राय: वस्त्र को ऊपर उछालकर या हिलाकर बुद्ध की प्रशंसा करते अंकित किया गया है। तपस्या के बीच मार (कामदेव) की पराजय पर और साकाश्य मे बुद्धावतरण पर उन्हें इसी रूप मे प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार वेस्सन्तर जातक के दृश्य मे इन्द्र को चोड़ा मुकुट पहने और हाथ मे वज्र धारण किए दिखाया गया था। वज्र इन्द्र का आयुध है और यह लक्षण सर्वप्रथम साँची के इस दृश्याकन में प्रकट होता है। इन्द्र को वैदिक साहित्य मे शक्र भी कहा गया है। ठीक इसी प्रकार बौद्ध साहित्य मे भी इन्द्र को सक्क ओर बजिरहत्था शची का उनकी पत्नी और एरावण (ऐरावत) को उनका हाथी बताया गया है।

लक्ष्मी का मुख्य लक्षण पद्म या कमल है इसीलिए उन्हें पद्मा और कमला भी कहा जाता है। उनका एक और स्वरूप प्रसिद्ध है गजलक्ष्मी का इसमे पद्म पर बैठी या खडी देवी के अगल-बगल प्राय: कमलो पर खडे दो हाथी अपनी सूँड मे घट लिए देवी को स्नान (अभिषेक) कराते दिखाए जाते हैं। इस युग के शिल्प में लक्ष्मी के ये दोनो रूप प्रकट हो चुके थे। शुगकाल मे अश्वरथ पर सवार सूर्य की मूर्तियाँ भी उकेरी जाने लगी थी। सर्वप्रथम द्वितीय शती ई०पू० में बने महाराष्ट्र में भाजा नामक स्थान के एक बौद्ध चैत्यगुहा के बरामदे की बाहरी दीवार पर चार अश्वो से जुते रथ पर सूर्य का अंकन पाया गया है। उदयगिरि-खण्डगिरि (उड़ीसा) तथा बोधगया के भी उत्कीर्ण शिल्प मे सूर्य को उकेरा गया था।

बौद्ध साहित्य मे मार नामक देवता वैदिक देवता कामदेव जैसा ही है। जब भी कभी कोई तपस्या करता है मार अपनी रूपवती कन्याओं तथा सेना के साथ उसका तप भग करने पहुँच जाता है। बोधगया मे जब पीपल के वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे तब इसी मार ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए बड़ा उत्पात मचाया। परन्तु बोधिसत्त्व सिद्धार्थ पर उसका कोई प्रभाव न पडा और वह पराजित होकर वापस हो गया। साँची स्तूप की एक तोरण पट्टीका पर पराजित होकर भागती मार सेना का अंकन है। इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार को धनुष धारण किए अपने रथ पर दिखाया गया है। वैदिक देवता कामदेव का आयुध भी धनुष माना जाता है।

शुग-कुषाण काल श्रीमदभगवदगीता के भक्ति आन्दोलन से पूर्णरूपेण प्रभावित था जिसका प्रभाव तत्कालीन सभी धर्मों पर स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। मथुरा, विदिशा तथा नागरी से मिले अभिलेख इस बात के साक्षी हैं कि उस युग मे इस क्षेत्र मे भागवतधर्म का बोलबाला था। भागवतधर्म मे वासुदेव (कृष्ण) और सकर्षण (बलराम) पूजे जाते थे। मथुरा से बलराम तथा वृष्णी पंचवीरों की मूर्तियाँ मिली हैं। शक क्षत्रप सोडाष के शासनकाल के एक द्वार स्तभ लेख मे वासुदेव के मन्दिर मे तोरण तथा वेदिका बनवाने का तथा मोरा कुएँ की जगत वाले लेख मे वृष्णीना पचवीरानाम की मूर्तियाँ स्थापित करने का उल्लेख मिलता है। ये पंचवीर थे- सकर्षण (बलराम) वासुदेव (कृष्ण) प्रद्युम्न साम्ब और अनिरुद्ध । इन्हीं पंचवीरों से आगे चलकर पंचवपीर की परम्परा विकसित हुई जिसे सूफी संतों द्वारा अधिक प्रचारित किया गया था। कुषाणकाल में बलराम विष्णु सूर्य स्कन्द ब्रह्मा कुबेर इन्द्र शिवलिंग शिव-पार्वती लक्ष्मी गणेश सप्तमातृका दुर्गा तथा कृष्णाख्यान वाले मूर्ति फलको का अकन मथुरा मे किया जाने लगा था। विदिशा के निकट तक्षशिला- नरेश के यवन दूत हेलियोडोरस ने विष्णु मन्दिर के सामने गरुड की प्रतिमा वाले शीर्ष का एक स्तम्भ स्थापित किया था। इस स्तम्भ पर उसने एक अभिलेख भी अंकित करवाया था जिसमें उसने अपने को भागवत तथा देवता को देवाधिदेव वासुदेव और इस स्तभ को गरुडध्वज कहा है। विदिशा से ही भागवत गौतमीपुत्र द्वारा भगवत- मन्दिर के समक्ष गरुडध्वज स्थापित किए जाने का उल्लेख वाला एक स्तम्भ लेख मिला है। इसी प्रकार नागरी (राजस्थान) नामक स्थान से भागवत पराशरिपुत्र सर्वतात का एक लेख मिला है जिसमे नारायण वाटिका यानी विष्णु मन्दिर में पूजाशिला की स्थापना का उल्लेख है।

भक्ति आन्दोलन का प्रभाव जैन धर्म पर भी पड़ा। मथुरा मे कंकाली टीले की खुदाई से वहाँ शुगकालीन स्तूप के अवशेष मिले हैं जिनमे उस युग की जैन कला-फलक भी है। बाद मे वही पर कुषाणकालीन जैन स्तूप का भी निमाण किया गया था। मथुरा से कई पत्थर के चौकोर उत्कीर्ण फलक मिले हैं जिन पर मांगलिक चिह्न उकेरे हुए हैं। जैन धर्म में अष्टमांगलिक चिह्न का बड़ा महत्त्व था। इनमे स्वस्तिक श्रीवत्स नन्दिपद कलश पुष्पदाम वर्द्धमान मीन-मिथुन वैजयन्ती आदि मुख्य थे। किसी-किसी फलक पर बीचो-बीच पदमासन में बैठे तीथकर की प्रतिमा भी बनी है। इन फलकों को आयागपट्टअर्थात पूजापट्ट कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। ये आयागपट्ट जैन पूजा के प्रथम सोपान कहे जा सकते हैं। बाद में जैन तीर्थकरों की स्वतंत्र मूर्तियाँ गढी जाने लगी थी। जैन तीर्थकरो की प्रतिमाएँ सर्वप्रथम मथुरा मे ही गढी गई थीं। मथुरा में पार्श्वनाथ, नेमिनाथ तथा महावीर के साथ-साथ सैकडो जैन तीर्थंकर प्रतिमाएँ स्थानक (कायोत्सर्ग) तथा आसनस्थ (पद्मासन) मुद्रा मे पाई जा चुकी है। इस युग ने मथुरा मे उत्कीर्ण की गई जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ तीन कोटि की थी-

(1) पालथी मारकर ध्यानमुद्रा में बेठी मूर्तियाँ

(2) कायोत्सर्ग मुद्रा मे खड़ी मूर्तियाँ

(3) एक ही पत्थर के फलक पर पीठ से पीठ जोड़कर खडी चार मूर्तियाँ।

कुषाणकाल से तीर्थंकरों के वक्ष पर श्रीवत्स का लाक्षन उकेरने की परम्परा भी सबसे पहले मथुरा के कलाकारों ने ही डाली। इस लाछन से जैन तथा बौद्ध मूर्तियो मे भेद करना सरल हो गया था। जैन धर्म की प्राय सभी खडी प्रतिमाएँ नग्न हैं।

बौद्ध धर्म भक्ति आन्दोलन से अछूता न रह सका। सर्वास्तिवादी या हीनयान विचारधारा में बुद्ध की मानव मूर्ति बनाना वर्जित था। लेकिन कुषाणकाल में महायानी बौद्ध भक्तों ने विकासवादी विचारों से प्रेरित होकर बुद्ध की मानवमूर्ति बनवा ली। उनका तर्क था कि जब हमारे सामने बुद्ध हैं ही नहीं तब फिर दीक्षा मे बुद्धम् शरणम् गच्छामि कहने का क्या अर्थ है ? बुद्ध सामने हो तभी हम उनकी शरण में जा सकते है। वस्तुत: ब्राह्मण धर्मावलम्बी और जैन धर्मावलम्बी भक्तों द्वारा अपने-अपने इष्टदेवो की सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ देखने के बाद बौद्ध अनुयायी भी अपने को न रोक सके। ये लोग महासाधिक अथवा महायानी कहलाए और इन्होने पूर्व परम्परा वाले सर्वास्तिवादी बौद्धों को हीनयानी बताया।

कुषाण सम्राट कनिष्क महायानी बौद्ध विचारधारा का प्रबल समर्थक था। उसके प्रशासनकाल में मथुरा से लेकर पश्चिमोत्तर भारत के गांधार क्षेत्र तक महायानी बौद्ध विचारधारा का प्रचार हुआ तथा अनेक स्तूप और बुद्ध बोधिसत्त्व की विशाल प्रतिमाएँ बनाई गई। कुषाणकालीन मथुरा कला की विशेषताएँ –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1 जैन तीर्थंकर बुद्ध बोधिसत्त्व तथा कुछ ब्राह्मण धर्म के देवी देवताओं की मूर्तियों का पहली बार अंकन,

2 सफेद चित्तीदार लाल बलुए पत्थर का प्रयोग

3 झीने सलवटोदार वस्त्रों का प्रयोग

4 आभूषणों में हल्कापन

5 मानव आकृतियों में सुडौलता

6 कुछ मूर्तियों पर गांधार कला का प्रभाव

7 बुद्ध तथा अन्य देव मूर्तियों मे उनके अंगों की सुन्दरता के स्थान पर मुख की भाव-भंगिमाओं का स्पष्ट अंकन

8 अनेक देवी-देवताओं का पहली बार अंकन जैसे विष्णु और उनके कुछ अवतार दुर्गा महिषमर्दिनी आदि।[66]

गांधार क्षेत्र मे कुषाण सम्राट कनिष्क के प्रयासों से बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसके फलस्वरूप वहाँ बौद्ध धर्म-सम्बन्धी मूर्तिकला का भी विकास हुआ। उस क्षेत्र मे यूनानी कलाकारों ने एक से बढकर एक बुद्ध की स्वतंत्र मूर्तियाँ बनाई तथा उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं को फलक पर उत्कीर्ण किया। गांधार क्षेत्र मे सिकन्दर के बाद से यूनानी लोग बस गए थे और वे भारतीय धर्म तथा जीवन-पद्धति से पूर्णरूपेण परिचित हो गए थे। तक्षशिला पुष्कलावती नगरहार स्वातघाटी उड्डियान कपिशा बमियान आदि स्थानो से कुषाणकालीन बौद्ध मूर्तियाँ पाई गई हैं।

मथुरा कला मे शारीरिक सौन्दर्य पर उतना ध्यान नही दिया गया था जितना मुख की भाव-भगिमाओं को स्पष्ट करने पर ध्यान दिया गया था जैसे ध्यान मुद्रा, शान्त मुद्रा अथवा स्मिति (मुस्कान युक्त) मुद्रा आदि। इसके विपरीत गाधार कला में मूर्तियों के शारीरिक सौन्दर्य और अगो के समानुपात पर अधिक जोर दिया गया था उनके मुख प्राय भावशून्य थे। इसीलिए मथुरा की मूर्तियाँ सजीव जान पडती हैं जबकि गांधार कला की मूर्तियाँ निर्जीव। शुग-कुषाण काल मे दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश मे अमरावती और उसके बाद नागार्जुनकोंडा में भी बौद्ध स्तूप बनाए गए थे जिनके फलकों पर बुद्ध की मूर्तियों उकेरी गई थी। बुद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्वतंत्र मूर्तियाँ भी बैठी तथा खडी मुद्राओं मे गढ़ी गई थीं। इन मूर्तियों पर मथुरा कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। कुछ मूर्तियों पर गाधार कला का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। ये मूर्तियाँ काले पत्थर की बनाई गई थीं।

अमरावती कला की बुद्ध मूर्तियों के केश शंख के घूँघर के समान घुँघराले है। पहले गांधार कला के प्रभाव से बुद्ध के दोनों कंधों पर सघाटि दिखाई गई थी परन्तु बाद में मथुरा-कला के प्रभाव से केवल बाएं कंधे पर ही सघाटि रखी गई। बाएँ हाथ मे सघाटि पकडे हुए बुद्ध को दिखाना अमरावती कला शैली की अपनी विशेषता है।

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल कहा जाता है। भारत मे उस समय तक शक,पहलव कुषाण आदि विदेशियो का शासन समाप्त हो चुका था और गुप्त वश ने अपने स्वतंत्र देश मे स्वच्छ और सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की। इससे समाज मे शान्ति स्थापित हुई व्यापारिक प्रगति से सम्पन्नता बढ़ी और देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागी राजनीतिक स्थिरता और सामाजिक समृद्धि से संस्कृति का चतुर्दिक विकास हुआ। साहित्य संगीत कला धर्म दर्शन विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक संरचना हुई। प्रत्येक क्षेत्र मे नए-नए मानदण्ड स्थापित हुए। कला तथा मूर्तिकला के क्षेत्र में भी कुछ मूलभूत नियम निर्धारित हुए और फिर अनेक शिल्प- शास्त्रों की रचना हुई। गुप्तकालीन शिल्पग्रंथों में विष्णुधर्मोत्तर पुराण मत्स्यपुराण और बृहत्सहिता प्रमुख हैं। अन्य कई पुराणों में भी शिल्प सम्बन्धी सामग्री पाई जाती है। मध्यकाल मे रचे गए शिल्प-ग्रंथों मे मानसोल्लास अपराजितपृच्छा समरागणसूत्रधार रूपमण्डन शिल्परत्न आदि उल्लेखनीय हैं।

आगे चलकर इन्हीं शिल्पशास्त्रों की मान्यताओं और विधानों को ध्यान मे रखकर कलाकारों ने मूर्तियों को गढना प्रारम्भ किया। शास्त्रानुकूल आचरण करने के कारण ही गुप्तयुग को शास्त्रीय युग भी कहा जाता है। गुप्त- नरेश परमभागवत थे इसलिए गुप्तकाल मे भागवत धर्म का विकास स्वाभाविक था। भागवत धर्म के केन्द्र विदिशा तथा मथुरा में पहले से ही थे। इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सकर्षण (बलराम) वासुदेव (कृष्ण) साम्ब प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की पूजा की जाती थी। गुप्त युग मे बलराम और कृष्ण को विष्णु का अवतार होने से स्वयं विष्णु की प्रतिमाओं का अंकन विकसित हो गया। विष्णु के साथ-साथ शिव सूर्य ब्रह्मा गणेश स्कन्द कुबेर लक्ष्मी पार्वती दुर्गा सप्तमातृकाएं तथा गंगा-यमुना आदि अनेक ब्राह्मण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मावलम्बी देवी-देवताओं का सुरुचिपूर्ण अंकन किया गया। बुद्ध-बोधिसत्त्व और जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ भी बराबर आँकी जाती रहीं। मथुरा में एक साथ तीनो धर्मों की त्रिवेणी बह रही थी। स्पष्ट है कि गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था।

जैसा कि पहले बताया गया है कि इस युग में मूर्तिकला से सम्बन्धित अनेक नए-नए विधान वाले शिल्पशास्त्र रचे गए थे। उन शिल्पशास्त्रो का प्रभाव तत्कालीन मूर्तिकला पर पडना स्वाभाविक था। गुप्तकालीन मूर्तिकला शुग-कुषाण काल की मूर्तिकला से अधिक विकसित और सुन्दर थी। शुगकाल की उत्कीर्ण कला में स्थूलता तथा चपटापन था कुषाणकालीन मूर्तिकला मे मासलता और कामुकता का पुट था। किन्तु गुप्तकाल की मूर्तिकला में इन कमियो को दूर कर लिया गया था।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की विशेषताएँ

1 देवत्व की भावना

गुप्तकालीन मूर्तिकला मे कलाकारों के दृष्टिकोण मे प्रशसनीय परिवर्तन हुआ था। वे मूर्ति के शरीर को सुन्दर बनाने के साथ-साथ उसमे देवता का स्वरूप भी प्रतिबिम्बित करते थे।

2 रूप और भाव का मेल

गुप्तकालीन मूर्तिकार मूर्तियो को रूपवान बनाने मे तो सफल था ही वह मुखमुद्रा मे हृदय के भाव अंकित करने में भी प्रवीण था। इस प्रकार शारीरिक सौन्दर्य और आत्मिक भावो का अनूठा सगम गुप्तकालीन मूर्तियों से सम्भव हुआ था।

3 निर्मल सौन्दर्य

गुप्तकालीन मूर्ति के अंग न अब शुगकाल जेसे चपटे और स्थूल थे और न कुषाणकाल जैसे मासल। उनमें अब सुडौलता छरहरापन कोमलता और सजीवता सी जान पडन लगी थी। सुकोमल अंगो पर पहले जैसे भारी भरकम न वस्त्र थे और न आभूषण झीने हल्के और पारदर्शी वस्त्र तथा एकावली या इकहरे कँगन ही शरीर की शोभा बढाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4 नए अंग-प्रतिमान

रूप और सौन्दर्य की पराकाष्ठा पाने के लिए गुप्तकाल मे विभिन्न अंगो के लिए नए-नए प्रतिमान निर्धारित किए गए थे। बलिष्ठ शरीर के स्थान पर अब सुकुमार शरीर बनाने का लक्ष्य था। अंगो की सुन्दरता और सजीवता के लिए अंडाकार का मुख धनुष के आकार की भौहे खजन पक्षी अथवा हिरनी जैसी चचल आँखे तोते के समान नुकीली नाक बिम्ब फल के समान लाल होठ शख की रेखाओ जैसी ग्रीवा (गर्दन) केले के वृक्ष जैसी जघाएँ मोटे स्थूल नितम्ब सिँह जैसी पतली कटि (कमर) और घट के समान स्तन बनाने के नए मानदण्ड भारतीय मूर्तिकारो के लिए निर्धारित किए गए थे।

5 आसन एव मुद्राएँ

शारीरिक सौन्दर्य में अभिवृद्धि के लिए गुप्तकाल मे विषय अथवा परिस्थिति के अनुकूल मूर्ति के खडे होने बैठने अथवा लेटने की स्थिति में बनाने के लिए हाथो तथा मुख की विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग भी किया गया था।

गुप्तकाल मे मूर्तिकला का चतुर्दिक विकास हुआ था जिसके फलस्वरूप कई ऐसे केन्द्र बन गए थे जहाँ पर मूर्तियाँ बहुत बडी सख्या मे गढी जाती थी। प्राय इन केन्द्रो पर गढी गई मूर्तियो मे उन केन्द्रो की अपनी कुछ न कुछ छाप अलग रहती थी। मथुरा शुग-कुषाण काल से ही मूर्तिकला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। वहाँ पहले से ही जैन तीर्थकरो बुद्ध बोधिसत्त्वो बलराम विष्णु आदि अनेक देवताओ की मूर्तियाँ बनाई जा रही थी। गुप्तकाल मे भी यहाँ एक से बढकर एक सुन्दर बुद्ध-मूर्तियो का निर्माण किया गया था। आदमकद समभग छरहरे शरीर और मुस्कराती अथवा शान्त मुद्रा वाली बुद्ध प्रतिमाएँ बेजोड हैं। वाराणसी के निकट सारनाथ में गुप्तकाल में चुनार के बलुआ पत्थर पर कलाकारो ने बुद्ध की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियो का अकन किया था। इस केन्द्र पर गढी गई मूर्तियो पर कई नए तत्त्व दिखाई देते है। मथुरा शैली जैसे गोल अलंकृत प्रभामण्डल तो हैं पर उसमे दोनो ओर एक-एक मालाधारी विद्याधर का अकन सारनाथ केन्द्र की विशेषता है। मथुरा की महीन सलवटोदार सघाटि के स्थान पर सारनाथ की बुद्ध मूर्तियो की सघाटि सपाट और पारदर्शी है। बुद्ध की मूर्तियो मे भूमिस्पर्श मुद्रा तथा धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा का अंकन भी सारनाथ कला केन्द्र ने ही पहली बार गुप्तकाल मे किया था। धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा वाली मूर्ति मे आसन के नीचे बीच मे एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्र तथा उसके अगल बगल हाथ जोडे उपासको का अंकन किया गया है। सारनाथ केन्द्र का प्रभाव पूर्वी भारत की मूर्तिकला पर पडा था । अहिच्छत्रा के ध्वसावशेष वर्तमान बरेली जनपद की आंवला तहसील मे रामनगर के निकट पाए गए है। गुप्तकाल मे यह वास्तुकला तथा मूर्तिकला का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। अहिच्छत्रा मे अब भी एक ऊँचा टीला है जिसमे नीचे गुप्तकालीन ईंटे दिखाई देती है। ऊपर एक विशाल शिव मन्दिर था। शिवलिंग अब भी मौजूद है। इस मन्दिर की दीवारो पर उत्कीर्ण मिट्टी के फलक जड़े हुए थे। ऐसे मृत्खण्ड तथा प्रवेशद्वार पर आदमकद नदी-देवता गंगा और यमुना की मृण्मूर्तियाँ अब भारत के नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय की अनुपम निधि है। नदी-देवताओ की मूर्तियाँ पहली बार गुप्तकाल मे आँकी गई थी। गुप्तकालीन मन्दिरों के प्रवेशद्वार के दोनो पक्खो मे नीचे एक ओर मकर पर खड़ी गंगा तथा दूसरी ओर कच्छप पर खडी यमुना की मूर्तियों लगाई जाती थी। गंगा नदी के सन्दर्भ मे तुलसी ने रामचरितमानस मे कहा है कि गंगा के दर्शन मज्जन अथवा स्नान से सभी पाप धुल जाते हैं। हमारे देश में मन्दिर मे प्रवेश के पहले स्नान की परम्परा रही है। सभव है स्नान का सुयोग न होने पर प्रवेशद्वार पर इन नदी देवियों के दर्शन मात्र से प्रवेश करने वाले का मन पवित्र हो जाने की कल्पना से ही इन नदी देवताओं को प्रवेशद्वार पर स्थापित किया गया हो। इसके अतिरिक्त कौशाम्बी गढवा कान्यकुब्ज (कन्नौज) तथा श्रावस्ती भी गुप्तकालीन कला के केन्द्र थे।

गुप्त वंश के पतन के बाद देश मे एक केन्द्रीय सत्ता का अभाव हो गया। देश भर मे अनेक अलग-अलग राज्यों की नींव पड गई। ये शासक स्वतंत्र होने के कारण भोग-विलास और तडक भडक वाला राजसी जीवन बिताने लगे। प्राय सभी राजाओ ने अपने-अपने राज्यो मे मंदिरों का निर्माण करवाया ये मन्दिर प्राय राजप्रासाद (महल) जैसे अत्यन्त विशाल और कई-कई परकोटो तथा मण्डपो वाले बनने लगे। देवी-देवता भी गर्भगृह सभामण्डप भोगमण्डप नटमण्डप वाले मन्दिरों मे राजाओं जैसा सम्मान तथा तड़क-भडक पाने लगे। देवी-देवता भी अब शयन (सोते) करते थे प्रभाती गाकर जगाए जाते थे उनका स्नान तथा वस्त्राभूषणों से श्रृंगार किया जाता था नटमन्दिर में उनका मनोरजन नृत्य-संगीत से किया जाता था। यही से देवदासी प्रथा का जन्म हुआ। वे सभामण्डप में विशेष आयोजनो के समय विराजते थे। सक्षेप मे राजाओ के ही समान मध्ययुगीन देवी-देवता भी भोग-विलास और तड़क-भड़क वाले बन गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलस्वरूप गुप्तकाल की सादगी के स्थान पर अब देवी-देवता पुन विभिन्न भारी-भरकम किन्तु सुरुचिपूर्ण अलंकरणों से सजाए जाने लगे। उनकी मूर्तियों को अब नाना प्रकार के आभूषणों से भव्य और वैभवपूर्ण बनाया जाने लगा। मूर्तिकला के विषयों में अब विस्तार आ गया था। प्रत्येक देवता से सम्बन्धित रामायण महाभारत तथा पुराणों मे दिए गए आख्यानो के आधार पर उनके विभिन्न स्वरूप आंके जाने लगे। अधिक राज्यों और राजाओं की प्रादेशिकता के कारण देव मण्डल का भी विस्तार हुआ और प्रत्येक राज्य के देवताओं मे प्रादेशिकता के लक्षण उभरने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ -

---

[1] पर्सी ब्राउन, इण्डियन आर्किटेक्चर, प्लेट संख्या 5, भाग 1

[2] लांहार्स्ट, द स्टोर ऑफ द स्तूप, 1936, पृ. 77

[3] ऋग्वेद, 5/32/5 त्वं चिदस्य क्रतुर्धिर्निषत्तम

मर्मणये विददिदस्य मर्म ।

यर्दा सुक्षत्र प्रभूता यदस्य

युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धा ।।

ऋग्वेद, 7/55/6 य आस्ते यश्च चरति, यस्य पश्चापि नोजनः।

तेषां सं हन्यो अश्राणि, यथेदं हर्म्य तथा।।

ऋग्वेद, 9/71/4 परिधुक्षं सहस्रः पर्वता वृधं,

महवः सिज्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।

आयस्मिन गाव, सुखाद अथमि मृर्धन्ड्रीणन्त्यग्रिय वशिभामि ।।

[4] भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय कला का इतिहास, पृ. 20

[5] वही, पृ. 20

[6] वही, पृ. 20

[7] परिपूर्णानन्द वर्मा, प्रतीक शास्त्र, 1964, पृ. 269-282

[8] वही, पृ. 269-282

[9] महाभारत, सभापर्व, 3-8

[10] बेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1909

[11] बौद्धयन गृहसूत्र, 2/13-16

[12] ई. वी. हैवेल, इंडियन आर्किटेचर थ्रू एजेज, पृ 58-59

[13] ई. वी. हैवेल, इंडियन आर्किटेचर थ्रू एजेज, पृ 58-59

[14] ई. वी. हैवेल, एंसिएंट एंड मेडिवल आर्किटेचर ऑफ इंडिया, 1915, पृ 6

[15] शरद चंद्र राय, द मुंडाज एंड देयर कंट्री, पृ. 221-222

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[16] रमन्ना, ओरिजिन ऑफ साउथ इंडियन टेम्पल्स, पृ. 68-70

[17] वही, पृ. 71

[18] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेचर, पृ. 9, प्लेट 8

[19] ऋग्वेद, 7/56/16, 7/76/2

[20] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेचर, पृ. 4

[21] ऋग्वेद, 1/5 वाथा इद ग्रे अग्रयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।

वैश्वानर नाभिरसि वितीनां स्थूणेव जनां उपनिद थपन्थ ॥

[22] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेचर, पृ. 4

[23] वही, पृ. 4

[24] अमरकोश, 3/5/19

[25] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेचर, पृ. 77

[26] शुक्ल यजुर्वेद, 35/15

[27] ई. वी. हैवेल, हैंड बुक ऑफ इंडियन आर्ट, पृ. 270

[28] तारापद भट्टाचार्य, द केनन्स ऑफ इंडियन आर्ट ओर अ स्टडी ऑन वास्तुविद्या, 1963, पृ. 273-274

[29] रामायण, 5/15

[30] तारापद भट्टाचार्य, द केनन्स ऑफ इंडियन आर्ट ओर अ स्टडी ऑन वास्तुविद्या, 1963, पृ. 270

[31] मत्स्य पुराण, 255/4

[32] ऋग्वेद, 6/30/20, 5/19/2

[33] वही, 10/67/2

[34] वसुदेव शरण उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर, 1969, पृ. 208-209

[35] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेक्चर, पृ. 77

[36] लांगहर्स्ट, द स्टोरी ऑफ द स्तूप, 1936, पृ. 77

[37] पर्सी ब्राउन, इंडियन आर्किटेक्चर, पृ. 78

[38] परमेश्वरी लाल गुप्त, भारतीय वास्तुकला, 1999, पृ. 16-18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[39] भगवत हरण उपाध्याय, भारतीय काला का विकास, 1981, पृ. 98

[40] वासुदेव शरण उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर, 1969, पृ. 215

[41] के पी जयसवाल, हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 55-60

[42] आर. डी. बनर्जी, द एज ऑफ इंपीरियल गुप्ताज, पृ. 148

[43] वासुदेव शरण उपाध्याय, प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मंदिर, 1969, पृ. 217

[44] भगवत हरण उपाध्याय, भारतीय काला का विकास, 1981, पृ. 98

[45] कृष्ण देव, दि टेम्पल्स आफ नार्दर्न इण्डिया, 1969, पृ० 8

[46] ए. एल. श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय देव मूर्तियाँ, 1998, पृ. 1

[47] बृजभूषण श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, पृ. 3

[48] डी. एन. शुक्ल, अ स्टडी इन वस्तु विद्या, पृ. 20-21

[49] सिंह, बी०पी०, भारतीय कला को बिहार की देन, पृ० 39

[50] ऋग्वेद, 4/30/ 20

[51] ऋग्वेद, 1/166/ 8

[52] सिंह, बी०पी०, भारतीय कला को बिहार की देन, पृ० 40-41

[53] मैक्समूलर, चिप्स फ्राम अ जर्मन वर्कशॉप, वॉल्यूम 1, पृ. 38

[54] एच०एच० विल्सन, विष्णुपुराण, भूमिका, पृ० 2

[55] ए ए मैकडोनल, वैदिक माइथोलोजी, पृ 17-18

[56] ब्लूमफील्ड, रिलीजन ऑफ वेद, पृ. 89

[57] ऋग्वेद, 3/ 4/ 5

[58] ऋग्वेद, 3/ 4/ 6

[59] ऋग्वेद, 2/ 33/ 9 'स्थिरैभिरङ्गै पुरू रूप उग्रो वधुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः'

[60] ऋग्वेद, 7/9/19

[61] ऋग्वेद, 1, 121, 3

[62] ऋग्वेद, 8, 69, 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[63] ऋग्वेद, 5, 52, 15

[64] ऋग्वेद, 8/ 17/ 8 तुविग्रीवी वयोदरः सूवाहुरन्धसोमदे। इन्द्राणि वृत्राणि जिघन्नते।

[65] ऋग्वेद, 8, 1, 5 महेचन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देवाम्।

न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामय॥

[66] ए. एल. श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय देव मूर्तियाँ, 1998, पृ. 6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन मंदिर एवं मूर्तियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन मंदिर एवं मूर्तियाँ

गुर्जर-प्रतिहार कालीन मंदिर स्थापत्य

मुरैना-ग्वालियर क्षेत्र में गुर्जर प्रतिहार शासकों ने लगभग 150 वर्षों तक अपना प्रभुत्व स्थापित रखा। इनके शासनकाल में गोपाचलगढ़ प्रतिहारों की उपराजधानी था। यह तथ्य प्रतिहारों के समय ग्वालियर की उन्नत तथा समृद्ध स्थिति को दर्शाता है। ग्वालियर-चम्बल संभाग में जिस उत्कृष्टता के साथ प्रतिहारों ने अपने साम्राज्य को स्थापित किया था उतनी ही कुशलता से यहां पर सांस्कृतिक गतिविधियों विशेषकर स्थापत्य कला को प्रश्रय प्रदान किया था। जिसके अनेक प्रमाण आज भी इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं। गुर्जर प्रतिहार शासक हिन्दू धार्मवलम्बी थे, जिस कारण इन्होंने अपने समस्त राज्य क्षेत्र के साथ-साथ मुरैना-ग्वालियर क्षेत्र में भी अनेक हिन्दू देवालयों का निर्माण कार्य बड़े स्तर पर करवाया था। 7वीं से 9वीं शताब्दी के मध्य मुरैना की भूमि पर इनका प्रत्यक्ष एवं सशक्त अधिकार रहा। इसी दौरान यहां पर नरेसर मन्दिर समूह एवं बटेश्वर मन्दिर समूह अस्तित्व में आये जिनमें सैकड़ों की संख्या में छोटे-बड़े मंदिरों का निर्माण कार्य हुआ था।

बटेश्वर मन्दिर समूह (चित्र सं 1)

बटेश्वर देवालय समूह पडावली ग्राम के पश्चिम दिशा स्थित पर्वत उत्पत्यका में निर्मित है। यहां आठवी.नवीं ईण् के अनेक देवालय हैं। कुछ देवालय अत्यंत जीर्ण.शीर्ण अवस्था में है परंतु प्रतिहार कला के क्रमिक विकास के अध्ययन में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मन्दिरों के प्राप्त अवशेषों के आधार पर प्रतीत होता है कि यहां पर लगभग 200 मंदिरों का निर्माण किया गया था। वर्तमान समय में लगभग 80 मन्दिर संरक्षित अवस्था में प्राप्त होते हैं। ये सभी मंदिर उत्तर भारतीय नागर शैली में निर्मित हैं, इन मंदिरों में कुछ मंदिर बौने शिखर एवं कुछ ऊंचे शिखर वाले हैं। संरचना के आधार पर बटेश्वर मंदिर समूह के मंदिरों को तीन भागों में बांटकर अध्ययन किया जा सकता है -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम श्रेणी में उन अत्यन्त छोटे आकार के मन्दिरों को सम्मिलित किया जा रहा है, जिनमें केवल गर्भगृह एवं उससे सटे अंतराल ही प्राप्त होते हैं।(चित्र सं 2) इस प्रकार के अनेक मंदिर बटेश्वर मंदिर समूह के प्रांगण में स्थित हैं। इस श्रेणी के कई मंदिरों का निर्माण एक ही जगती के ऊपर सीधी रेखा में एक के बाद एक किया गया है।

इन मंदिरों की क्षैतिज संरचना में गर्भगृह एवं अंतराल केवल दो ही अंग देखने को मिलते हैं। जबकि ऊर्ध्वाधर संरचना के तहत सभी मंदिर एक ही आधार पर निर्मित हैं। जिसमें प्रत्येक मंदिर की जंघा पर कुंभ पट्टिका निर्माण देखने को मिलता है। मंदिर की बाह्य भित्तियां प्रायः सादी हैं। कुछ मंदिरों की भित्तियों पर तीन दिशाओं में एक-एक मूर्ति का अंकन किया गया है। प्रवेश द्वार अपेक्षाकृत छोटा है। जिसके ललाट बिम्ब पर ही अलंकरण देखने को मिलता है। यह अलंकरण भी इस श्रेणी सभी मंदिरों पर नहीं किया गया है। द्वार शाखाओं पर गंगा एवं यमुना की आकृतियां उकेरी गई हैं। मंदिर का शिखर छोटे आकार का त्रिरथ प्रकार का है। जिसके ऊपर आमलक एवं कलश स्थापित किया गया है। यह मारु गुर्जर शैली में निर्मित मंडपिका प्रकार के मंदिर हैं। अलंतराल एवं गर्भगृह के मध्य किसी प्रकार का अवकाश स्थान नहीं है। इस श्रेणी के अधिकांश मंदिर शिव को ही समर्पित हैं। गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना की गई है। गर्भगृह की भीतरी भित्तियों पर किसी भी प्रकार का अलंकरण प्राप्त नहीं होता है। मंदिरों के आकार, संरचना एवं उन पर हुए अलंकरण को देखकर प्रतीत होता है कि ये सभी मंदिर आठवीं-नवीं शताब्दी के दौरान निर्मित किये गये थे। आरम्भिक प्रतिहार काल के हैं। जिनमें गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य के गुण देखे जा सकते हैं।

द्वितीय श्रेणी में उन मन्दिरों को सम्मिलित किया जा रहा है, जिनमें गर्भगृह, अंतराल, मण्डप एवं नन्दी को स्थान प्रदान किया गया है।(चित्र सं 3) ये मंदिर आकार की दृष्टि से प्रथम श्रेणी के मंदिरों से कुछ बड़े हैं। इस श्रेणी के मंदिरों का निर्माण भी एक समान जगती के ऊपर किया गया है। क्षैतिज संरचना के आधार पर इन मंदिरों में आयताकार मण्डप, अंतराल एवं गर्भगृह पाया गया है। मंडप का आकार गर्भगृह के आकार से छोटा है। जो कि चार स्तम्भों पर आधारित है, जिसमें से दो स्तम्भ अंतराल के हैं एवं दो स्तंभ मण्डप के हैं। अंतराल के बाह्य स्तंभों पर प्रायः किसी प्रकार अलंकरण नहीं किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतराल के स्तम्भ गर्भगृह के प्रवेश द्वार होने के कारण अलंकृत अवस्था में प्राप्त होते हैं। इन पर अनेक वादकों, नृत्यकों, गंगा-यमुना, विद्याधरों आदि का अलंकरण किया गया है। इसके अतिरिक्त पुष्प वल्लरी आदि का अलंकरण भी इस श्रेणी के मंदिरों पर देखा जाता है। इन मंदिरों का गर्भगृह भी वर्गाकार ही है, जिसकी भीतरी दीवारें बिल्कुल सपाट एवं सादी हैं। गर्भगृह के ऊपर छोटे आकार का ही त्रिरथ प्रकार का शिखर बनाया गया है, जिसके ऊपर आमलक एवं कलश स्थापित हैं। अंतराल सपाट छत वाले हैं। इन पर किसी प्रकार का अलंकरण नहीं किया गया है। मंदिरों की बाह्य दीवारों पर अलंकरण की दृष्टि से आठ अथवा दस मूर्तियों को उत्कीर्ण किया गया है जो कि प्रथम श्रेणी के मंदिरों में मात्र चार की संख्या में थीं। इस श्रेणी के जो मंदिर शिव को समर्पित हैं उनके अंतराल के बाहर ही नन्दी की स्थापना की की गई है। मंदिरों की द्वार शाखाएं एवं ललाट बिम्ब अलंकृत अवस्था में प्राप्त होते हैं। प्रायः सभी मंदिरों की द्वार शाखाओं पर गंगा-यमुना का अलंकरण समान रूप से देखने को मिलता है।

तृतीय श्रेणी के मंदिरों में बटेश्वर मंदिर समूह के दो मंदिर सम्मिलित किये जा सकते हैं, जो कि आकार एवं अलंकरण की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। इनमें से एक मंदिर जो अत्यधिक खण्डित अवस्था में है। स्थापत्य की दृष्टि से इसका विवेचन संभव नहीं है।(चित्र सं 4) दूसरे एवं मुख्य मंदिर को 'भूतेश्वर मंदिर' के नाम से जाना जाता है। शिव को ही भूत एवं गणों का ईश्वर माना जाता है, इसी परम्परा के आधार पर ही इस मंदिर का नाम भूतेश्वर मंदिर है।(चित्र सं 5) जहां आज भी पूजा-अर्चना का कार्य किया जाता है। यह मंदिर लगभग 50 फीट ऊंचा है। जिसके गर्भगृह में एक शिवलिंग स्थापित है। वेदिबंध में खुर, कुंभ तथा कलश का समावेश है। जंघा अन्य देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊंची है। भद्ररथों में चैत्य से आच्छादित एक देवकोष्ठ है। इनमें कार्तिकेय, यम एवं शिव की प्रतिमाएं प्रदर्शित हैं। घंटमाला तथा सादे बंधनों से युक्त खुरछाद्य के ऊपर शिखर है। चौकोर शिलाखण्ड के ऊपर स्थित विशाल आमलक एवं कलश स्थापित किया गया है। मंदिर का गर्भगृह वर्गाकार है। गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। (चित्र संख्या 6) गर्भगृह की भीतरी दीवारें सपाट हैं। इन पर किसी भी प्रकार का अलंकरण अथवा मूर्तियों का उत्कीर्णन नहीं हुआ है। यद्यपि मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां उकेरी गई हैं। मंदिर का अंतराल चार स्तम्भों पर निर्मित है, जो कि आयताकार है। द्वार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर निर्मित स्तम्भ सादे हैं, इन पर किसी भी प्रकार का अलंकरण नहीं किया गया है, जबकि गर्भगृह की ओर बने स्तम्भों पर पूजकों तथा वादकों के सुन्दर अंकन किये गए हैं। समतल वितान के मध्य पूर्ण विकसित कमल पुष्प अंकित है। द्वार में लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा पुनः लतापत्र युक्त शाखाएँ हैं। यहीं गंगा, यमुना, नाग- नागी सहित प्रदर्शित है। ललाटबिंब स्थित आकाशचारी गरुड़ के उभयपार्श्व में विद्याधर हैं। उत्तरंग में तीन देवकोष्ठ है परन्तु परवर्ती काल में उनका मूल स्वरूप लुप्त हो चुका था। चंद्रशिला में कमलपुष्प सहित दो सिंह उत्कीर्ण है। धरणी और समतल वितान कमल, रत्न, पुष्प, लता तथा व्याल से अलंकृत हैं। देवालय में उत्कीर्ण लिपि के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यह संभवत आठवीं शती ई. में निर्मित किया गया होगा। संभवतः कच्छपघात काल में देवालय के चारों ओर दहलान बना दिए गए हैं। बटेश्वर समूह में सभी मंदिरों का निर्माण एक साथ नहीं हुआ था। भूतेश्वर मंदिर का निर्माण यद्यपि गुर्जर प्रतिहार शासकों के द्वारा 8वीं-9वीं सदी में करवाया गया था, तथापि इससे पूर्व एवं पश्चात भी इनेक मंदिरों का निर्माण यहां पर हुआ था। जो कि आकार एवं अलंकरण की दृष्टि से प्रारम्भिक एवं उत्तर अवस्था के हैं।

नागर शैली के विशाल शिखर युक्त मंदिरों की दृष्टि से यहां पर निर्मित मंदिर आरंभिक अवस्था के ही हैं, जो कि नागर शैली की उपशैली मारु-गुर्जर शैली के मंदिर हैं। इन्हें मडंपिका शैली के मंदिर भी कहा जाता है। यहां उपस्थित पूर्णाकार के अधिकांश मंदिरों का निर्माण जगती पर किया गया है। जो कि सभी मंदिरों में समान आकार की न होकर यथायोग्य प्राप्त स्थान के अनुसार छोटी-बड़ी आकार की हैं। इनमे एक आयताकार लघु मण्डप, अंतराल, गर्भगृह एवं लघु शिखर निर्मित किया गया है। जो शिखर कुछ अधिक ऊंचे हैं, वे त्रिरथ शैली में बनाये गये हैं। शिखर के ऊपर आमलक एवं कलश की स्थापना भी मंदिरों में की गई है। अधिकांश मंदिरों के बाहर नन्दी के लिए स्थान दिया गया है। नन्दी के लिए किसी प्रकार के मण्डप की व्यवस्था प्रायः बटेश्वर के अधिकांश मंदिरों में देखने को नहीं मिलती है। कुछ मंदिरों के समक्ष नन्दी की पीठिका का साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है, प्रतीत होता है कि जो मंदिर शिव को समर्पित हैं, उन्ही के सामने ही खुले आकाश के नीचे अंतराल की परिधि के बाहर नन्दी की स्थापना की गई थी। अधिकांश मंदिरों के गर्भगृह वर्गाकार ही हैं, जिनकी आंतरिक भित्तियां अलंकरण रहित हैं। छोटे आकार के मंदिरों की द्वार शाखाएं भी सादी एवं अलंकरण विहीन हैं, जबकि कुछ बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार के मंदिरों की द्वार शाखाएं एवं द्वारपट्टों पर गंगा, यमुना, द्वारपाल, नवग्रह, सप्तमातृकाओं का सुन्दर अलंकरण प्राप्त होता है। यह अलंकरण भी प्रायः सभी मंदिरों पर कुछ एक विशेषताओं को छोड़कर एक समान ही है। छोटे मंदिरों की बाह्य भित्तियां अनलंकृत ही हैं, जबकि बड़े आकार के मंदिरों की बाह्य भित्तियों पर मूर्तियों का अलंकरण किया गया है। प्रायः एक दिशा की दीवार पर एक मूर्ति का अलंकरण देखने को मिलता है। उत्तर काल में बने मंदिरों की दीवारों पर चार से अधिक देवी-देवताओं की मूर्तियों का अंकन प्राप्त होता है।

नरेसर मंदिर समूह-

मुरैना-ग्वालियर राष्ट्रीय राजमार्ग के समीप ही बरेठा ग्राम पास ही नरेसर मंदिर समूह है। नरेसर को प्राचीन शिलालेखों में नालेश्वर भी कहा गया है। यहां निर्मित मंदिरों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग में मंडपिका आकार के वे मंदिर हैं, जो पर्वत उत्पत्यका पर सबसे ऊपर एक सरोवर के किनारे निर्मित किये गये हैं। (चित्र संख्या – 7) ये मंदिर स्थापत्य एवं अलंकरण की दृष्टि से अत्यन्त ही सादे हैं। सभी मंदिर शिव को समर्पित हैं। प्रत्येक मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना की गई है। सरोवर के दोनों ओर लगभग बारह मन्दिरों का निर्माण किया गया था। जिनमें अब केवल 5 मन्दिर ही शेष हैं। ये सभी मंदिर अत्यन्त लघु आकार के हैं। इन पर किसी भी प्रकार का अलंकरण देखने को नहीं मिलता है। क्षतिग्रस्त अवस्था में विद्यमान होने के कारण केवल दो ही मन्दिरों का पूर्ण आकार प्रकार दिखता है। मन्दिर की संरचना में लघु मण्डप, एवं गर्भगृह ही मौजूद हैं। यहां उपस्थित सभी मन्दिरों के गर्भगृह वर्गाकार हैं एवं लघु मण्डप आयताकार बनाये गये हैं। अधिकांश मंदिरों के शिखर क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से इन्हें संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। मंदिरों के गर्भगृहों में शिवलिंग की स्थापना योनिपीठ के ऊपर की गई है, जिसके साक्ष्य यहां से प्राप्त होते हैं। इन मंदिरों में जलाभिषे के पश्चात गर्भगृह से जलनिकासी की भी सुन्दर व्यवस्था देखने को मिलती है। गर्भगृह में योनिपीठ की जलहेरी की दिशा में ही जल निकास हेतु नाली बनाई गई है, जिससे होकर जल पुनः सरोवर में ही पहुंच जाता है।(चित्र संख्या – 8) योनिपीठ को देखने से प्रतीत होता है कि यहां स्थापित शिवलिंग अपेक्षाकृत छोटे आकार के रहे होंगे। यहां स्थित मंदिरों की द्वार शाखा पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र गणपति की प्रतिमा का अंकन किया गया है। जो कि अत्यन्त ही सादी एवं अलंकरण विहीन है। स्वरूप से ही इन प्रतिमाओं को पहचाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन मंदिरों से किसी प्रकार की मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। न ही मंदिर की बाह्य एवं भीतरी भित्तियों पर किसी प्रकार का अलंकरण ही प्राप्त होता है। ये मंदिर प्रतिहार कालीन प्रारम्भिक अवस्था के परिचायक हैं।

द्वितीय वर्ग में उत्तर दिशा में स्थित चार मंदिरों को सम्मिलित किया जा सकता है।(चित्र सं 9) ये मंदिर भी आकार-प्रकार की दृष्टि से द्वितीय चरण की कला के प्रतीक हैं। मंदिर प्रायः सादे एवं भव्य मूर्तांकन अलंकरणों से रहित हैं। पर्वत उत्पत्यका को काटकर इनके लिए प्लेटफार्म का निर्माण किया गया है। मन्दिरों की संरचना में मात्र गर्भगृह ही अब शेष है। अंतराल एवं मण्डप जैसी संरचनाएं यहां संभवतः बनाई नहीं गई थीं। वेदीबंधनो का पूर्णतः अभाव है। इन मंदिरों की जंघा की भित्तियां सादी हैं तथ खुरछाद्य दो सादे बंधनों से निर्मित है। जिसके ऊपर देवालय का शिखर प्रारम्भ होता है। चतुराण्डक शिखर अलंकरण विहीन है। ग्रीवा के स्थान पर एक चौकोर शिलाखण्ड रखा गया है। जिसके ऊपर आमलक एवं कलश की स्थापना की गई है। गर्भगृह पूर्व दिशा में स्थित मंदिरों के समान ही वर्गाकार का है। जिसमें योनिपीठ के ऊपर शिवलिंग स्थापित किये गये हैं। शिवलिंग पूर्व की अपेक्षा बड़े आकार एवं शास्त्रीय विधान से निर्मित हैं। जिनमें भोग, भद्र एवं ब्रह्म पीठ के दर्शन स्पष्टतः किये जा सकते हैं।

जहां प्रथम चरण के मंदिरों की द्वार शाखाएं पूर्णतः अलंकरण विहीन थी, द्वितीय चरण के मंदिरों की द्वार शाखाएं पर गंगा-यमुना का अलंकरण प्राप्त होता है। यद्यपि ये मूर्तियां अत्यधिक क्षतिग्रस्त अवस्था में हैं, परन्तु कला विधान के आधार पर स्पष्टतः इन्हें गंगा-यमुना के रूप में पहचाना जा सकता है। द्वार शाखाओं के ऊपर ललाट बिम्ब पर गणपित, ब्रह्मा, विष्णु की मूर्तियों की प्राप्ति होती है। इस वर्ग के मंदिरों के ललाट बिम्ब पर गणेश का अंकन प्राप्त होता है। (चित्र 10)

तृतीय वर्ग के अंतर्गत नरेसर मंदिर समूह के बड़े आकार के ऊंचे शिखर वाले मन्दिरों को शामिल किया जा सकता है। जो कि पर्वत उत्पत्यका के सबसे निचले भाग में बनाये गये हैं। (चित्र 11) इस भाग में निर्मित मंदिर त्रिरथ एवं पंचरथ निर्माण योजना के अंतर्गत बनाये गये हैं, जिनमें वेदिबंधनों में खुर, कुम्भ, कलश बंधन स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट हैं। इन मंदिरों की जंघा सादी है जिसके प्रमुख रथों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवकोष्ठों का निर्माण किया गया है, इनमें हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों का अंकन किया गया है। खुरछाद्य का निर्माण घंटमाला युक्त अलंकरण से किया गया है। प्रायः मन्दिरों के शुकनास में चैत्य अलंकरण युक्त बंधनों के मध्यवृत में विष्णु की प्रतिमा स्थापित की गई है। कुछ मंदिरों के कलश एवं आमलक नष्ट हो गये हैं। शिखरों के आकार-प्रकार के आधार पर ये मंदिर भी मारु-गुर्जर शैली में निर्मित किये गये हैं। यहां स्थित मंदिरों में अंतराल एवं गर्भगृह ही प्राप्त होता है। मंदिरों की निर्माण योजना के आधार पर कहा जा सकता है कि सभी मंदिरों के साथ मण्डप का निर्माण नहीं किया गया था। इस श्रेणी के देवालयों पर उच्च कोटि को मूर्तांकन किया गया है। इनकी द्वार शाखाएं सुसज्जित हैं, जिन पर गंगा एवं यमुना के चित्र द्वारपालों सहित अंकित किये गये हैं। गंगा-यमुना को पूर्ण वस्त्रालंकरण एवं वाहन के साथ अपने हाथों में घट लिए प्रदर्शित किया गया है। यहां स्थित मंदिरों के ललाट बिंब पर भी ललितासीन गणेश, गरुड़ का अंकन देखने को मिलता है।

चामुण्डा देवी मन्दिर

यह नरेसर का एक मात्र ऐसा मन्दिर है जहां वर्तमान समय में भी पूजा अर्चना की जाती है। इस मंदिर के शिखर पर स्थित चैत्य अलंकरण युक्त शुकनासिका के मध्य में चामुण्डा प्रदर्शित है। इसी कारण इस मंदिर को चामुंडा देवी मंदिर कहा जाता है। यह मन्दिर त्रिरथ निर्माण योजना में निर्मित देवालय में अंतराल और गर्भगृह है। वेदिबंध, खुर, कुंभ तथा तुलापीठ युक्त कलश बंधनों से समाविष्ट है। जंघा के प्रमुख रथों में चैत्य अलंकरण से आच्छादित देवकोष्ठ है। इनमें गणेश, ब्रह्मा, कार्तिकेय आदि का प्रदर्शन है। तीन विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत बंधनों के पश्चात् देवालय का शिखर प्रारंभ होता है जो त्रिअंडक है। इनके मध्य चैत्य अलंकरण है। सुभद्रा द्वार में लतापत्र, नाग तथा चम्पकछड़ी युक्त शाखाएं हैं। ललाटबिंब में आकाशचारी गरुड़ है जिसके हाथों में सधे हुए लहराते नाग द्वार शाखाओं में विस्तीर्ण हैं। देवालय का अन्य अलंकरण पूर्व वर्णित देवालयों के सदृश है। यहीं वलभी शैली का एक मन्दिर है, जिसके वेदिबंध के बंधनों में चैत्य के उद्गमों युक्त देवकोष्ठ है। कमल तथा तुलापीठ बंधनों के पश्चात देवालय का शाला शिखर प्रारम्भ होता है जिसमें अंडक तथा चैत्य अलंकरण है। इस मन्दिर की द्वार शाखाएं अत्यन्त अलंकृत अवस्था में हैं। द्वार शाखाओं के दोनों ओर गंगा एवं यमुना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकरण सुन्दर वस्त्रालंकरण के साथ उनके वाहनों के साथ किया गया है। मंदिर के ललाटबिम्ब पर गरुड़ का सुन्दर अंकन मिलता है। द्वार शाखाओं पर नृत्यकों एवं वादकों का अंकन भी किया गया है। इसके अतिरिक्त इन पर दो धाराओं में पत्रवल्लरियों का अंकन किया गया है।

चांचुल ग्राम का प्रतिहार कालीन शिव मंदिर (चित्र सं -13)

मुरैना जनपद में सर्वेक्षण के दौरान शोधार्थी को पहाड़गढ़ तहसील के सुदूर क्षेत्र में स्थित चांचुल ग्राम में एक तालाब के किनारे शिव मन्दिर की प्राप्ति हुई है। यह मंदिर स्थापत्य कला के आधार पर प्रतिहार कालीन कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। मन्दिर की सम्पूर्ण ऊंचाई लगभग 30 फीट के आस-पास है। यह मन्दिर लगभग दस फीट ऊंची जगती पर त्रिरथ प्रकार की शिखर शैली में निर्मित किया गया है। जगती पत्थरों द्वारा निर्मित आयताकार चतूबरा है, जिस पर किसी प्रकार का अलंकरण प्राप्त नहीं होता है। मन्दिर का शिखर त्रिरथ प्रकार है, जिस पर अन्य प्रतिहार कालीन मन्दिरों की भांति चैत्य अलंकरण भी विद्यमान है। शिखर के शीर्ष पर ग्रीवा एवं आमलक का दर्शन स्पष्ट रूप से होता है। आमलक के ऊपर विद्यमान होने वाला कलश खण्डित हो चुका है। मंदिर की जंघा सादी है। वेदिबंधन पर मात्र खुर एवं कुंभ का उत्कीर्णन हुआ है। किसी भी प्रकार की पत्रवल्लरी आदि का अलंकरण जंघा प्रदेश में देखने को नहीं मिलता है। मन्दिर में स्थापत्य अंगों की दृष्टि से क्षैतिज रूप से मण्डप, अंतराल एवं गर्भगृह प्राप्त होता है। प्रतिहार कालीन अन्य मन्दिरों की भांति ही इस मन्दिर का गर्भगृह भी वर्गाकार स्थिति में है, जिसके मध्य में शिवलिंग स्थापित किया गया है। गर्भगृह की आंतरिक भित्तियों पर किसी प्रकार अलंकरण नहीं किया गया है, जबकि गर्भगृह की बाह्य भित्तियों पर अनेक देव प्रकोष्ठ बनाये गये हैं, जिनमें विष्णु के दसावतारों से सम्बन्धित प्रतिमाएं, गणेश, कार्तिकेय आदि की प्रतिमाएं उत्कीर्ण की गई हैं।

गर्भगृह से सटे अंतराल पर द्वारशाखाएं अत्यन्त सुन्दर तरह से उत्कीर्ण की गई हैं। जिन पर गंगा-यमुना के उत्कीर्णन के साथ-साथ नर्तकों, पत्रवल्लरियों का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ अंकन किया गया है। ललाटबिम्ब के मध्य विद्यमान मूर्ति यद्यपि खंडित अवस्था में है, तथापि आयुध एवं वनमाला के आधार पर पहचान करते हुए यह विष्णु की प्रतिमा प्रतीत होती है। ललाट बिम्ब की ऊपरी पट्टिका पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण लीला से सम्बन्धित अनेक दृश्यों का सुन्दर अंकन प्राप्त होता है। अंतराल के बाहर आयताकार नन्दी मंडप प्राप्त होता है। इसके मध्य में नन्दी की प्रतिमा स्थापित की गई है। इसके साथ ही यह मण्डप चार अलंकृत स्तम्भों पर निर्मित किया गया है। मण्डप की छत के साथ ही तीनों ओर सुन्दर अलंकृत लिंटेल भी बनाये गये हैं। मण्डप की दायीं और बायीं तरफ वितान निर्मित किये गये हैं। मण्डप के स्तम्भों पर भारवाहकों का सुन्दर चित्रण इस मन्दिर में प्राप्त होता है।

निर्माण शैली एवं अलंकरण के आधार पर कहा जा सकता है कि यह मन्दिर प्रतिहार कालीन 9वीं-10वीं शताब्दी के दौरान निर्मित किया गया था। इससे पूर्व निर्मित मन्दिरों पर इस प्रकार का सूक्ष्म अलंकरण, वितान युक्त मण्डप, ऊंची जगती का विधान देखने को प्रायः नहीं मिलता है।

मुरैना जनपद की प्रतिहार कालीन मूर्तिकला

स्थापत्य की दृष्टि से बहुत बड़ी संख्या में प्रतिहार काल में मुरैना जनपद के नरेसर, बटेश्वर तथा चांचुल (चंचल) में अनेक मंदिरों का निर्माण कार्य किया गया था। यहां स्थित अधिकांश मंदिर क्योंकि सातवी से नवीं शताब्दी के मध्य के हैं, अतः इनमें प्राप्त मूर्तांकन अत्यधिक भव्य एवं अलंकृत अवस्था का नहीं है। इन मूर्तियों पर गुप्त कालीन मूर्तिकला का प्रभाव भी दृष्टव्य है। बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल से हिन्दू देवी-देवताओं के अनेक रूपों की प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं। यहां गणेश और कार्तिकेय के अनेक रूप चित्रित हैं। शक्ति के अनेक रूपों जैसे पार्वती, लक्ष्मी, गौरी, चामुण्डा, सप्तमातृकाओं आदि के चित्रण भी देखते ही बनते हैं। वैष्णव मूर्तियों में विष्णु की अनेक स्थानक, आसन और शयन मूर्तियां तथा उनके अनेक अवतार- मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, कृष्ण, बलराम आदि की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सूर्य, ब्रह्मा, सरस्वती आदि की मूर्तियां भी प्रापत होती हैं। देवताओं के अतिरिक्त अष्टदिक्पालों, नवग्रहों, विद्याधरों, नागों एवं अप्सराओं के भी अनेक चित्रण प्राप्त होते हैं। गर्भगृह द्वार के ललाटबिम्ब में गर्भगृह में प्रतिष्ठित देवता की अथवा उसके किसी संबंधित रूप की छोटी प्रतिमा प्रदर्शित है। उत्तरण के शेष भाग पर नवग्रह, गरुड़ एवं नागों का अंकन भी प्राप्त होता है। द्वारशाखाओं पर गंगा और यमुना की प्रतिमाएं उपस्थित हैं, जिनके पार्श्व में प्रधान देवता के द्वारपालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अंकन भी प्राप्त होता है। बड़े आकार के मंदिरों की जंघा पर नियमानुसार अपनी-अपनी दिशाओं में अष्टदिक्पालों का चित्रण हुआ है।

शैव मूर्तिकला-

पौराणिक धर्म के प्रमुख तीन देवताओं में शिव संहारक के रूप में स्वीकृत हैं। परन्तु शैव परम्परानुयायी, उन्हें सृष्टि का कर्त्ता भी मानते हैं, वे इन्हें सर्वोच्च- देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। शिव का व्यक्तित्व बहुपक्षीय है। एक ओर वे अपने भक्तों के लिए अत्यन्त कृपालु और अनुग्रहदाता हैं, तो दूसरी ओर सृष्टि के विनाश हेतु ताण्डव नृत्य कर्त्ता भी हैं। शिव को संगीत, नृत्य और योग का प्रणेता भी माना जाता है, पशुपति के रूप में वे समस्त प्राणियों के स्वामी हैं, वे माहेश्वर और महादेव हैं एवं शक्ति के प्रतीक उमा के पति हैं ।[1] शिव के शताधिक नाम हैं, जिसके विश्लेषण से उनके व्यक्तित्व के विविध पक्ष स्पष्ट हो जाते हैं। इससे यह भी विदित होता है कि शिव के व्यक्तित्व में अनेक संस्कृतियों एवं परम्पराओं की धारणाएँ अवतीर्ण हुई हैं। महाकाव्यों एवं पुराणों से रुद्र- शिव के जिस स्वरूप का परिचय मिलता है, उसमें शिव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का विकसित स्वरूप है, जिसमें कितने ही वैदिक एवं वैदिकोत्तर तत्त्वों का समावेश हुआ है। वैदिक देवताओं के अध्ययन से यह विदित होता है कि रुद्र ही ऐसे देवता हो सकते हैं, जिसमें परवर्तीकाल के शिव के व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। ऋग्वेद में रुद्र आकाश में चमकने वाली बिजली एवं वर्षा के देवता हैं।[2] उनके समस्त विशेषण इसी ओर संकेत करते हैं। वे जटाधारी तथा धनुषधारी हैं, वे मनुष्य एवं अन्य पशुओं के संहार में समर्थ हैं।[3] शिव के इस भीषण रूप के अतिरिक्त उनके चरित्र का सौम्य पक्ष भी है।[4] उन्हें 'भिषग' (चिकित्सक) कहा गया है[5], एक दूसरे स्थल पर उन्हें 'वृषभ' बतलाया गया। । वृषभ से तात्पर्य, यहाँ वर्षा और उससे बढ़ने वाली भूमि की उर्वरता से है। इस दृष्टि से 'वृषभ' शब्द प्रजनन का प्रतीक प्रतीत होता है।

यह प्रायः निर्विवाद है कि लिङ्ग-पूजा का विकास 'शिष्नु' पूजा से हुआ है। आदिम युग में मनुष्य शिष्नु की पूजा प्रजनन शक्ति के प्रतीक के रूप में करता था। शिष्नु-पूजा संसार की अनेक प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित थी। भारतीय सभ्यता में इसका प्रमाण सिन्ध के अवशेषों में मिलता है।[6] फिर भी यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि ऐतिहासिक रूप से लिङ्ग-पूजा का आरम्भ कब से हुआ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पातञ्जलि ने लिङ्ग-पूजा का वर्णन नहीं किया है। आर०जी० भण्डारकर के अनुसार कुषाणों के पूर्व लिङ्ग-पूजा का प्रचलन नहीं था। इसका प्रमाण 'विमकैडफ़ाइसेज' की मुद्रा पर शिव के मानव रूप का अंकन है।[7] इसके विपरीत जीतेन्द्रनाथ बनर्जी ने ई० सम्वत् के पूर्व की मुद्राओं एवं मूर्तियों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि शिव की पूजा मानव और लिङ्ग दोनों ही रूपों में साथ-साथ प्रचलित थी।[8] ई० सम्वत् के पूर्व उज्जैन की मुद्राओं पर एक या त्रिमुख पुरुष आकृति और लिङ्ग का चित्रण किया गया है। अन्य ढली मुद्राओं पर भी लिङ्ग की आकृति मिलती है।[9] इस सन्दर्भ में प्रथम शती ई०पू० का आन्ध्र के गुडीमल्लम से प्राप्त शिवलिङ्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें लिङ्ग पर बने हुए जटाधारी शिव के हाथों में कमण्डल तथा परशु प्रदर्शित है। शिव के प्रतीक रूप में लिङ्ग निर्माण का यह स्पष्ट प्रमाण है।[10] लखनऊ एवं मथुरा संग्रहालय[11] में सुरक्षित अनेक कुषाणकालीन शिवलिङ्ग में शिव के मुख का अंकन किया गया है। मथुरा संग्रहालय में शिव की एक चतुर्भुज प्रतिमा सुरक्षित है, जिसके मस्तक के ऊपर शिवलिङ्ग बना है। गुप्तकाल तक आते-आते शिवलिङ्ग का शिष्नाकार रूप समाप्त हो गया और वह सीधा निर्मित किया जाने लगा। कुमारगुप्त के समय का 'करमदण्डा' से प्राप्त लिङ्ग इसका सुन्दर उदाहरण है।

प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में लिङ्ग की संरचना तथा स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार लिङ्ग के तीन प्रमुख भाग होते हैं-1. भोग पीठ, 2. भद्र पीठ, 3. ब्रह्म पीठ। लिङ्ग का ऊपरी वृत्ताकार हिस्सा भोग पीठ, बीच का भाग भद्रपीठ और नीचे का भाग ब्रह्म पीठ होता है।[12] शास्त्रीय ग्रन्थों के विवरण के आधार पर गोपीनाथ राव ने निष्कल, सकल तथा निर्मित प्रकार में लिङ्ग रूप को विभाजित किया है।[13] स्थिरता और सरलता के आधार पर लिङ्ग को चल और अचल प्रकारों में विभक्त किया गया है। पुनः निर्माण पदार्थों के आधार पर इन्हें छः प्रकारों में बाँटा गया है- (i) मिट्टी के द्वारा निर्मित लिङ्ग (ii) धातुओं के द्वारा निर्मित लिङ्ग (iii) रत्नों के द्वारा निर्मित लिङ्ग (iv) काष्ठ द्वारा निर्मित लिङ्ग (v) पत्थरों द्वारा निर्मित लिङ्ग (vi) बालू, पुष्प, चावल, चन्दन, रुद्राक्ष आदि द्वारा निर्मित लिङ्ग। लिङ्ग के अन्तर्गत शिव के एक मुख से लेकर पाँच मुखों तक का चित्रण किया जाता था और लिङ्ग के इस रूप को मुख - लिङ्ग की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। शिव की एक मुखी तथा पंचमुखी लिङ्ग प्रतिमा का उल्लेख जीतेन्द्रनाथ बनर्जी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है।[14] गुप्तकाल के अनेक शिवलिङ्ग प्राप्त हुए हैं, जिनमें से कुछ सादे और कुछ मुखलिङ्ग है। सादे लिङ्ग, एरण और करमदण्डा से तथा मुखलिङ्ग नचना, खोह, मंदसौर आदि से मिले हैं। गुप्तोत्तर कालीन उत्तरभारतीय अनेक शिवलिङ्गों का उल्लेख डॉ० आर०के० दीक्षित ने किया है।

शिव की के मानव रूप प्रतिमाओं को मुख्यतः दो रूपों में विभक्त किया गया है— (i) सौम्यरूप प्रतिमा, और (ii) घोर, उग्र या संहार रूप प्रतिमा । पुनः इन्हें पौराणिक कथाओं से असम्बद्ध और सम्बद्ध दो भागों में वर्गीकृत किया गया है।[15] पौराणिक कथाओं से असम्बद्ध सौम्य प्रतिमाओं में चन्द्रशेखर, पशुपति, उमासहित शिव, सोमास्कन्द रूप, महादेव, माहेश्वर, उमा-माहेश्वर, दक्षिणा प्रतिमाएं, हरिहर, कल्याण सुन्दर, वृषभारूढ़ शिव, अर्द्धनारीश्वर प्रमुख हैं। जबकि पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध सौम्य प्रतिमाओं में चण्डेशानुग्रह, विष्णवानुग्रह, किरातार्जुन, लिंगोद्भव, गंगाधर शिव, रावणानुग्रह प्रतिमाएं प्रमुख हैं। शिव के रौद्र रूप से सम्बंधित रूपों में भैरव, कामान्तक, गजासुर संहार, कालारि, त्रिपुरान्तक, शरभेष, अंधकासुर वध, ब्रह्मशिरोच्छेदक, वीरभद्र एवं जलन्धर हर रूप की मूर्तियां प्रमुख हैं।

मुरैना जनपद के बटेश्वर मंदिर समूह के अधिकांश मंदिर खण्डित अवस्था में प्राप्त हुए हैं। जिनका पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा संरक्षण एवं जीर्णोद्धार कार्य किया गया है। प्राप्त मंदिरों के आधार पर कहा जा सकता है कि यहां स्थित अधिकांश मंदिर शिव को समर्पित हैं। चूंकि मंदिर आठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्यम निर्मित हुए हैं, इस कारण यहां पर स्थित मंदिरों की बाह्य भित्त्यिों पर अधिक मूर्तियों का अंकन प्राप्त नहीं होता है, परन्तु मंदिरों में स्थित शिव के लिंगरूप का अंकन अधिकांशतः प्राप्त हुआ है।

गभगृह में स्थापित योनिपीठ में शिवलिंग अनेक प्रकार के हैं। एक मुखी शिवलिंगों की संख्या अधिक है। जो कि शास्त्रीय आधार पर निर्मित किये गये हैं। इन शिवलिंगों में भद्र पीठ, भोगपीठ एवं ब्रह्म पीठ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। (चित्र सं 15) इस कोटि के लिंग का सबसे निचला हिस्सा अर्थात् ब्रह्मपीठ वर्गाकार होता है। भोग पीठ का निर्माण अष्टकोणीय आकार में किया जाता है एवं सबसे ऊपरी भद्र पीठ का निर्माण बेलनाकार किया जाता है। यहां स्थित अधिकांश शिवलिंग ऊंची योनि पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित किये गये हैं। योनि की ऊंचाई लगभग एक फीट एवं उससे कुछ अधिक है। (चित्र सं 16) एक मुखी लिंग के अतिरिक्त पंचमुखी शिवलिंग भी का उदाहरण भी मुरैना के बटेश्वर से प्राप्त होता है। (चित्र सं. 17) पंचमुखी शिवलिंग के विकास की आरम्भिक अवस्था को दर्शाने वाला यह उदाहरण अत्यन्त साधारण है। इसमें चार छोटे छोटे शिवलिंगों के बीच में ऊपर एक शिवलिंग स्थापित किया गया है। इसे अतिरिक्त बटेश्वर से ही कुछ ऐसे शिवलिग भी प्राप्त हुए हैं, जिनके भद्रपीठ की रचना पृथक है। इनकी आकृति शिव के जटाजूट के समान हैं। (चित्र सं 18) मुरैना जनपद में किसी भी अन्य प्रतिहार कालीन कलाकेन्द्र से इस प्रकार के शिवलिंग प्राप्त नहीं हुए हैं।

नरेसर मंदिर समूह से भी शास्त्रीय पद्धति पर आधारित शिवलिंग प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त नरेसर मंदिर समूह से एक योनिपीठ इस प्रकार का प्राप्त हुआ है, जिस पर एक साथ चौदह शिवलिंग स्थापित किये गये हैं। (चित्र सं. 19) मध्य में एक स्थापित शिवलिंग अन्य तेरह शिवलिंगों से ऊंचा है। इस प्रकार की संरचना मुरैना जनपद में और कहीं देखने को नहीं मिलती है। एक समय पर अधिकाधिक शिवलिंगों का अभिषेक करने के उद्देश्य से संभवतः इनका निर्माण किया गया होगा।

बटेश्वर एवं नरेसर मंदिर समूह के अधिकांश मंदिर शिव को समर्पित हैं। यहां पर मूर्तिकला की दृष्टि से शिव के लिंग स्वरूप का निर्माण ही अधिकांशतः किया गया है। पौराणिक कथाओं पर आधारित मानव रूप में शिव की प्रतिमाएं बटेश्वर एवं नरेसर से प्राप्त नही हुई हैं। इन प्रतिमाओं का निर्माण प्रतिहार कालीन अन्य केंद्रों पर यद्यपि किया गया था, परन्तु बटेश्वर एवं नरेसर में इस प्रकार का अंकन प्राप्त नहीं होता है। कुछ मंदिरों के ललाटबिम्ब पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अंकन के रूप में ही शिव के मानव रूप के दर्शन यहां पर होते हैं। (चित्र सं. 20) ललाटबिम्ब पर निर्मित शिव का मानव रूप अत्यन्त सादा है। शिव को चतुर्भुजी रूप में दर्शाया गया है। सिर पर जटामुकुट से शिव की पहचान संभव है। दोनों अग्र हाथों में से एक वरद मुद्रा में तथा दूसरे हाथ में कमण्डल है। पश्च हाथों में एक हाथ में त्रिशूल तथा दूसरे में कहीं-कहीं नाग को पकड़े हुए दिखाया गया है। शिव के कानों में चक्रकुण्डलों को पहचाना जा सकता है। हाथों में कंकण, कमर पर कटिबंध एवं दायें पैर में कड़ा स्पष्ट देखा जा सकता है। इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त किसी प्रकार का अंलकरण इन प्रतिमाओं पर प्राप्त नहीं होता है। ये प्रतिमाएं संभवतः 8वीं-9वीं सदी की हैं, जिस कारण इन पर बहुत भव्य अलंकरण की प्राप्ति नहीं होती है।

बटेश्वर एवं नरेसर मंदिर समूह के अनेक मन्दिरों से शिव के सौम्य रूप की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें वे अर्धपर्यंकासन स्थिति में आसनस्थ हैं। इसके अतिरिक्त शिव के रौद्र रूप की मूर्तियों में बटेश्वर से वीरभद्र की की मूर्ति प्राप्त होती है। दक्ष प्रजापति के विध्वंसक शिवरूप का नाम वीरभद्र है। इस यज्ञध्वंस की कथा का विवरण कूर्म, वराह, भागवत तथा शिवपुराण आदि में प्राप्त होता है। भागवतपुराण के विवरण के अनुसार शिव के इस रूप में उनकी हजार भुजाएं थीं, मेघ श्यामवर्ण था, सूर्य के समान जलते हुए तीन नेत्र थे, विकराल दाढ़ें थी, अग्नि की ज्वालाओं के समान लाल-लाल जटाएं थीं, गले में नरमुण्डों की माला थी और हाथों में तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र थे। मूर्ति निर्माण सम्बन्धी विधान के अनुसार शिव को वीरभद्र के रूप में चतुर्भुजी दिखाया जाता है। उनके तीन नेत्र तथा बाहर की ओर निकले हुए दांत को दिखाकर उनकी भयंकरता को स्पष्ट किया जाता है। उनके पार्श्व में भद्रकाली तथा सश्रृंग छागशिर दक्ष का अंकन होता है।

मुरैना के बटेश्वर से प्राप्त वीरभद्र की प्रतिमा में शिव को चतुर्भुजी रूप में ही अंकित किया गया है।(चित्र सं. 21) उनके अग्र दायें हाथ में खड्ग है जबकि बायें हाथ से उन्होने दख का सिर पकड़ रखा है। जो भयभीत अवस्था में दर्शाया गया है। यह मूर्ति प्रतिकालीन कला के आरम्भिक युग की प्रतीत होती है, जिस कारण इसमें समस्त प्रतिमाशास्त्रीय लक्षण विद्यमान नहीं हैं।

लकुलीश की मूर्तियों का अंकन एवं पूजन सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था, तथा लकुलीश शैव मन्दिरों में प्रमुख देव के रुप में माने जाते थे। नौवीं शताब्दी की शुरुआत में लकुलीश की मूर्तियों में लकुलीश तथा योगीश्वर शिव दोनों के स्वरूपों को अंकित किया जाता था। लकुलीश चार भुजाओं, श्रीवत्स लांछन, जटामुकुट तथा पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए उत्कीर्ण किए जाते थे। ग्याहरवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लकुलीश का प्रतिमा वैज्ञानिक विधान निश्चित रुप को प्राप्त हो चुका था। अब उनकी प्रतिमा तपस्वी के रुप में उत्कीर्ण की जाती थी, जो बुद्ध तथा तीर्थंकर की मूर्तियों से समानता धारण किये रहती थी। बुद्ध तथा जिन के समान मुड़े हुए बालों वाले सिर के स्थान पर जटामुकूट से युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकुलीश मूर्तियों की प्राप्ति भी इस धारणा को सिद्ध करने में मददगार है। इस प्रकार लकुलीश तथा योगीश्वर स्वरूपों की साम्यता एवं पहचान के लिए ही लकुलीश जटामुकुट युक्त अंकित होने लगे थे।

मुरैना जनपद के बटेश्वर एवं नरेसर से लकुलीश की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बटेश्वर से प्राप्त मूर्तियों (चित्र सं. 22) में लकुलीश को योगीश्वर के रूप में दर्शाया गया है। वे कमलासीन है तथा पद्मासन में बैठे हैं। उनके मस्तक पर जटाजूट है, जो कि बुद्ध के समान है। नरेसर मन्दिर समूह के दो मन्दिरों के गवाक्ष पर लकुलीश का इसी प्रकार का अंकन किया गया है। इन मूर्तियों में लकुलीश को योगपट्ट के साथ ध्यानमग्न अवस्था में पद्मासन में दर्शाया गया है। उनके शीश पर जटाजूट का स्पष्ट अंकन देखा जा सकता है।

विष्णु प्रतिमा

वैखानस आगम के अनुसार विष्णु की प्रतिमा का निर्माण चार प्रकार से किया जाना चाहिए। 1- योग, 2-भोग, 3- वीर, 4- अभिचारी। तत्पश्चात् मुद्राओं के आधार पर इन्हें तीन उपवर्ण में रखा जाता है – 1-स्थानक 2- आसन 3- शयन[16]

विष्णु की स्थानक प्रतिमा

विष्णु की स्थानक प्रतिमा का निर्माण शास्त्रीय पद्धति के आधार पर किया जाना चाहिए। विष्णु का स्वरूप चतुर्भुज गहरे रंग में होना चाहिए। विष्णु के पिछले दाहिने हाथ में चक्र, अगला दायां हाथ अभय या वरद मुद्रा में, पीछे वाले बाँये हाथ में शंख तथा बायाँ हाथ कट्यावलम्बित होना चाहिए। प्रतिमा के दाहिनी ओर श्री देवी हाथ में कमल लिए हुए तथा बायीं ओर भूदेवी को हाथ में नीला पद्म लिए हुए निर्मित होना चाहिए। यही नहीं, भृगु, मारकण्डेय ब्रह्मा आदि देवताओं को भी आवश्यकतानुसार निर्मित किया जाना चाहिए।

विष्णु की स्थानक मूर्ति नरेसर मंदिर समूह से प्राप्त हुई है। (चित्र सं 23) यह अलंकरण एवं आकार की दृष्टि से अत्यधिक सुन्दर एवं भव्य है। विष्णु के मस्तक पर अलंकृत किरीट मुकुट है, जिसके मध्य में ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक के समान आकृति बनायी गई है, जो कि वैष्णवों की पहचान है। कानों में सुन्दर एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े आकार के चक्र कुण्डल अंकित हैं। गले में अलंकृत ग्रैवेयक एवं तीन लड़ियों वाली माला का अंकन किया गया है। बांये कंधे पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। भुजाओं में कंकण, केयूर एवं भुजबन्द का अंकन भी इस मूर्ति में किया गया है। त्रिपट्टिका युक्त अलंकृत मेखला का अंकन कमर पर किया गया है। विष्णु के अगले बांये हाथ में चक्र है तथा दायां हाथा वरद मुद्रा में है। पिछले बायें हाथ में गदा एवं दायें हाथ में पद्म का सुन्दर अंकन किया गया है।

विष्णु की आसन प्रतिमा

विष्णु की आसन प्रतिमाओं को निम्नलिखित शास्त्रीय पद्धति पर निर्मित किया जाना चाहिए जैसे विष्णु को कमल पर ललितासन में निर्मित किया जाना चाहिए। इनकी भुजाएँ शंख, चक्र, गदा युक्त होनी चाहिए तथा एक हाथ अभय या वरद मुद्रा में होना चाहिए। कभी-कभी इनका एक हाथ गदा देवी पर दूसरा चक्रपुरुष पर तीसरा अभयमुद्रा में तथा चौथा वरदमुद्रा में होना चाहिए।

बटेश्वर स्थित भूतेश्वर मंदिर की बाह्य भित्ती पर गरुड़ासीन विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है। (चित्र सं. 24) जिसमें विष्णु अपने वाहन गरुड़ पर विराजमान हैं। विष्णु को चतुर्भुजी रूप में अंकित किया गया है। उनके दोनों अग्र करों में से एक कर वरद मुद्रा में तथा दूसरे में शंख है। दोनों ही पश्चकरों में चक्र एवं पद्म का अंकन किया गया है। विष्णु प्रतिमा का मुख भाग खण्डित है, इसके कारण इस भाग में उपस्थित अलंकरणों का वर्णन किया जाना असम्भव है। गले में कण्ठहार, छाती पर श्रीवत्सचिन्ह का सुन्दर अंकन किया गया है। विष्णु के कंधों एवं भुजाओं को स्पर्श करती हुई वनमाला भी स्पष्टतः दृष्टव्य है। बायें कंधे से नीचे उतरते हुए यज्ञोपवीत का अंकन भी इस मूर्ति में प्राप्त होता है। मूर्ति में गरुड़ का मुख भाग एवं विष्णु का बांया पैर भी खण्डित है। गरुड़ के गले में कण्ठहार का अलंकरण देखा जा सकता है।

विष्णु की एक अन्य चतुर्भुजी मूर्ति मंदिर के ललाट बिम्ब पर प्राप्त हुई है। (चित्र सं 25) इस मूर्ति में विष्णु गरूड़ पर अर्धपर्यंकासन में विराजमान हैं। उनके मस्तक पर शोभायमान किरीट मुकुट है, कानों में चक्र कुण्डल हैं तथा गले में एकावली का सुन्दर अंकन किया गया है। हाथों में भुजबंद तथा वलय का अंकन भी दृष्टव्य है। उनके अग्र बायें हाथ में शंख है तथा दायां हाथ वरद मुद्रा में है। पश्च बायें हाथ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्र तथा दायें हाथ में गदा अंकित हैं। गरुड़ गतिमान अवस्था में अंकित किये गये हैं, उनके गले में भी एकावली का अंकन किया गया है तथा हाथों में भुजबंद आदि अंलकरण प्रदर्शित किये गये हैं। विष्णु की आसनस्थ मूर्तियों में चतुर्भुजी मूर्तियां ही अधिकांशतः प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार की मूर्तियां अपेक्षाकृत आकार में छोटी एवं अलंकरण की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं। प्रतीत होता है कि आसनस्थ द्विभुजी विष्णु प्रतिमाएं प्रतिहार काल की आरम्भिक कला की प्रतीक हैं। इन प्रतिमाओं में विष्णु को किरीट मुकुट के साथ कानों में कुण्डल, गले में हार, वनमाला एवं वस्त्रों के साथ अंकित किया गया है। विष्णु को शंख, चक्र, गदा एवं पद्म के साथ अंकित किया गया है।

विष्णु की शयन प्रतिमा

वैखानस ने लिखा है कि विष्णु की शयन-प्रतिमा श्याम वर्ण और सुपुष्ट अंगवाली होनी चाहिए, उनका एक चौथाई भाग कुछ ऊपर उठा हो और तीन चौथाई भाग शेष शय्या पर शयन की स्थिति में हो, उनका एक दाहिना हाथ किरीट को स्पर्श करता अथवा मस्तक की ओर फैला हो, और एक बायां हाथ शरीर के समानान्तर फैला होकर जंघा पर स्थित हो, दक्षिण पाद सीधा प्रसारित हो, और वाम कुछ झुका हो, कंधे के निकट लक्ष्मी बैठी हों, और उनके चरणों के निकट भू-देवी हों। चरणों के निकट मधु और कैटभ सेवा करने के लिए तत्पर हों। विष्णु की नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा आसीन हों। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शेषशायी विष्णु को पद्मनाभ नाम से व्यक्त किया गया है। इस वर्णन के अनुसार पदमनाभ जल के बीच पड़े शेष पर शयन मुद्रा में हों, उनका एक चरण लक्ष्मी की गोद में और दूसरा शेष की गोद में रखा हो। उनकी नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा आसीन हों और कमलनाल से संलग्न मधु और कैटभ असुर हो, अपराजित पृच्छा और रूप मण्डन में भी विष्णु के इस रूप का वर्णन किया गया है। अपराजित पृच्छा के अनुसार - किरीट माला, हार, कुण्डलों और केयूरों से अलंकृत विष्णु शेष- पर्यङ्क पर शयन करते हों, उनके चार हाथ हों दाहिने हाथ क्रमशः सिर पर वृहत कमल पर स्थित हो तथा बायें हाथ क्रमशः चक्र और गदा युक्त हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरैना जनपद से प्रतिहार कालीन कला केन्द्रों में बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल से विष्णु की शयन प्रतिमाओं की प्राप्ति नहीं हुई है। यद्यपि इसके समकालीन अन्य कलाकेन्द्रों पर विष्णु की अनेक शयन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं।

मुरैना जनपद की प्रतिहार कालीन कला में विष्णु का अवतारवाद

धर्मशास्त्रों में विष्णु के अवतारों की संख्या प्रायः भिन्न-भिन्न बतलाई गई है। 1 परन्तु विष्णु के दस अवतार सम्प्रति मान्यता प्राप्त है जिन्हें (1) मत्स्यवतार (2) कूर्मावतार (3) वराहवतार (4) नृसिंहावतार (5) वामनावतार (परशुरामावतार (7) रामावातार (8) कृष्ण/बलरामावतार (9) बुद्धावतार (10) भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार के रूप में मान्यता प्राप्त है। बटेश्वर एवं नरेसर मंदिर समूह के अनेक मंदिरों से विष्णु के दशावतार रूपों का अंकन प्राप्त होता है। किन्तु इनकी स्वतंत्र मूर्तियों का यहां न के बराबर ही हैं। लगभग सभी अवतार रूप की प्रतिमाएं मंदिरों के ललाटबिम्ब पर प्राप्त होती हैं। (चित्र सं. 26) चांचुल स्थित शिव मंदिर की बाह्य भित्तियों पर अवश्य कुछ अवतार प्रतिमाएं स्वतंत्र रूप से बनाई गई हैं।

(1) मत्स्यावतार

धर्मशास्त्रों से ज्ञात होता है कि विष्णु का प्रथम अवतार मत्स्य का था। भागवत पुराण के अनुसार तीनों लोकों के समुद्र में डूबे जाने पर विष्णु ने मत्स्य का रूप धारण किया और पृथ्वी को मत्स्यरूपी नौका पर बिठाकर वैवस्वत मनु की रक्षा किया। महाभारत में मत्स्य को प्रजापति कहा गया है। मत्स्यावतार में विष्णु का पूरा शरीर मछली के समान बताया गया है। कहीं-कहीं कमर के नीचे का भाग मत्स्य का और ऊपर मानवाकृति का बतलाया गया है। विष्णु चतुर्भुज स्वरूप में बतलाये गये हैं। पीछे की दोनों भुजाओं में शंख चक्र, शेष दोनों भुजा अभय मुद्रा में निर्मित किये जाने का विधान है।

बटेश्वर के अधिकांश मंदिर खंडित अवस्था में है, परंतु वर्तमान समय में प्राप्त मंदिरों में से कुछ मंदिरों से प्राप्त अखण्डित ललाटबिम्बों पर मत्यावतार का अंकन प्राप्त होता है। इन सभी में लगभग एक समान ही विष्णु को पूर्ण मत्स्य के रूप में अंकित किया गया है, जो कि कमलासीन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) कूर्मावतार

श्रीमदभागवत गीता में वर्णित है कि दैत्यों के अत्याचार बढ़ने पर देवगण भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में गये एवम् स्वयं के बचाव का उपाय पूछा ब्रह्मा ने विष्णु के कच्छपावतार लेने की बात बतलाई। तदनन्तर में सभी देवता विष्णु के पास गये विष्णु ने मन्दराचल पर्वत द्वारा वासुकी नाग के सहयोग से समुद्र मथने की सलाह दी। देव एवम् दानव दोनों ने मिलकर समुद्र मंथन आरम्भ किया। एकाएक मथानी अन्दर जाने लगी ऐसी परिस्थिति में विष्णु ने कच्छप रूप धारण कर मथानी को अपनी पीठ पर रोक लिया। बाद में प्राप्त हुए विष और अमृत को मोहिनी रूप लेकर विष्णु ने क्रमशः दैत्यों एवम् देवताओं को बाँट दिया। देवता इसका पानकर अमर हो गये।

प्रथम विधान में कूर्मावतार प्रतिमा को पूर्ण कूर्म रूप तथा अर्द्ध कूर्म रूप में निर्मित करने का विधान है। अर्द्ध कूर्म रूप में विष्णु के कमर के नीचे का भाग कच्छप का तथा कमर के ऊपर का भाग चतुर्भुज मानव के रूप में निर्मित किया जाना चाहिए। चारों भुजाओं में से पीछे की भुजा में से शंख एवं चक्र तथा आगे की दो भुजा अभय एवम् वरद मुद्रा में निर्मित की जानी चाहिए पूर्ण कूर्मरूप को मन्दराचल को पीठ पर धारण किये हुए समझना चाहिए।

मुरैना जनपद में प्रतिहार कालीन विष्णु प्रतिमाओं में कूर्मावतार का अंकन बटेश्वर में प्राप्त होता है। कूर्मावतार की दृष्टि से भी बटेश्वर मंदिर समूह से प्राप्त प्रतिमाओं में विष्णु को पूर्ण कूर्म के रूप में अंकित किया गया है। कूर्म को खिले हुए कमल के ऊपर आसीन दिखाया गया है।

(3) वराह अवतार

श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रलय से जल में डूबी धरती को निकालने की चिन्ता में ब्रह्मा के नासिका छिद्र से अंगूठे के बराबर का एक वराह शिशु निकल पड़ा, देखते ही देखते शिशु आकाश में स्थित हो गया और आकार अत्यंत विशाल (हाथी के समान) हो गया। पर्वताकार अत्यंत विशाल रूप में भीषण गर्जना से सभी दिशायें गूज उठी, सभी देवता गण उनकी स्तुति करने लगे। वराह रूप में भगवान फिर गरजे और गजराज की भांति लीला दिखाते हुए जल में समाहित हुए। वराह का शरीर अत्यंत कठोर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वचा पर खड़े बाल, सफेद दाढ़े थीं और दोनों नेत्रों से तेज उत्पन्न हो रहा था। वराह प्रलयकर समुद्र में स्वतंत्र होकर विचरण करने लगे वही से उन्होंने पृथ्वी को पुनः यथा स्थान स्थापित किया। वराह प्रतिमा की आकृति पूरी वराह की होती है। वराह के चौड़े स्कन्ध, तीक्ष्ण दाढे, महाकाय शकल की भांति, उर्ध्वरोम युक्त होना चाहिए। वराह प्रतिमा का विस्तृत वर्णन उत्तर एवम् दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में उपलब्ध है। वराह के दायें हाथ में शंख और बायें हाथ में पद्म और उनकी कुहनी लक्ष्मी पर स्थित होनी चाहिए।

बटेश्वर मंदिर समूह से अवतार प्रतिमाओं में स्वतंत्र रूप से प्राप्त होने वाली सर्वाधिक संख्या की मूर्ति वराह अवतार की हैं। मंदिरों की बाह्य भित्तियों में बने देव प्रकोष्ठों में अनेक जगह वराह अवतार का अंकन किया गया है। यद्यपि ये मूर्तियां आकार में छोटी एवं अलंकरण में अधिक भव्य नहीं हैं। तथापि कला के विकासक्रम में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। ललाटबिम्ब पर स्थित दशावतार फलक में विष्णु को नृवराह रूप में अंकित किया गया है, उनका मुख वराह का है, जिनके दांत में मानवरूपी पृथ्वी को उठाये हुए दिखाया गया है। नृवराह का दायों हाथ उनकी जंघा पर पर है, जिसमें भुजबंद का सुन्दर अंकन किया गया है।

वराह अवतार की स्वतंत्र मूर्तियों में से एक में नृवराह विष्णु को द्विभुजी रूपा में ही दर्शाया गया है। यह प्रतिमा ललाटबिम्ब पर अंकित प्रतिमा के समान ही है। अलंकरण की दृष्टि से नृवराह अवतार का चतुर्भुजी रूप दर्शनीय है। द्विभुजी मूर्तियों में पृथ्वी को नृवराह द्वारा अपने दांतों में फंसाकर उठाया गया है। जबकि चतुर्भुजी रूप की मूर्ति में पृथ्वी देवी नृवराह की भुजा पर आसीन हैं। नृवराह के तन पर वनमाला का अंकन स्पष्ट देखा जा सकता हैं मूर्ति की ऊपरी सतरह का क्षरण हो जाने के कारण अन्य अलंकरण बहुत अधिक स्पष्ट नहीं हैं। तथापि अवतार प्रतिमाओं की दृष्टि से यह चतुर्भुजी नृवराह की प्रतिमा उल्लेखनीय है। (चित्र सं. 27)

नृवराह अवतार की प्रतिमा चांचुल मंदिर की बाह्य भित्ती पर भी उत्कीर्ण मिलती है। यह द्विभुजी प्रतिमा आकार में छोटी एवं अलंकरण की दृष्टि से सामान्य ही है। खंडित अवस्था में होने के कारण इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी का अंकन देखने को नहीं मिलता है। वस्त्रालंकरण की दृष्टि से यह भी बटेश्वर की नृवराह प्रतिमाओं के समान ही है।

(4) नृसिंह अवतार

विष्णु के दशावतारों में चौथा नरसिंह अवतार है। हिरण्यकश्यप का वध करने एवं भक्त प्रहलाद की रक्षा करने के लिए विष्णु ने नृसिंह का अवतार लिया। भागवत पुराण" से ज्ञात होता है कि नरसिंह भगवान स्तम्भ से प्रकट हुए थे और भक्त प्रहलाद की रक्षा की थी। नृसिंह ने दैत्य हिरण्यकश्यप के उस खम्भे को धक्का देकर गिरा दिया और दैत्य को अपनी जंघाओं में डालकर, उसके छटपटाते रहने पर भी अपने नखों से उसका उदर विदीर्ण कर डाला।

नृसिंह का रूप अत्यंत भयानक था । पीली-पीली आंखे तपाये हुए सोने के समान भयानक लग रही थीं। जम्हाई लेने के कारण गरदन के बाल विखरे हुए थे। बड़ी-बड़ी तीक्ष्ण विकराल दाढ़ें थी। तलवार के समान नख तेज और तीखी लपलपाती जीभ थी। टेढ़ी भौहें और मुख भंयकर लग रहा था। कान बड़े और ऊपर को उठे हुए थे। शरीर की विशालता आकाश को छू रही थी। कमर पतली और छाती चौड़ी थी। श्वेत और चन्द्रमा के समान उज्जवल रोम और सैकड़ो भुजाएं दोनों ओर फैली थी। नाखून किसी आयुध के समान थे। यह रूप देखने में बहुत भयंकर प्रतीत हो रहा था।

ऐसे रूप को देखकर किसी का साहस उनको समझाने का नहीं हो रहा था। हिरण्यकश्यप भी इस रूप को देखकर घबरा गया था। दैत्यराज के मन में यह रूप महामायावी विष्णु प्रतीत होने लगा यह रूप न मानव का ही था न सिंह का ही, ऐसा विचित्र रूप खम्भे से प्रकट हुआ" दैत्य ने नृसिंह के ऊपर गदा से प्रहार किया, लेकिन इस प्रहार से भगवान पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने उसे अपने नखों से फाड़ • डाला। दैत्य के रक्त से उनका शरीर और गरदन लाल हो गया। नृसिंह दैत्य की आंतों को बाहर निकालकर उसकी माला बनाकर धारण किये हुए सिंह के सदृश्य प्रतीत हो रहे थे।"

बटेश्वर मंदिर समूह के मंदिरों के ललाटबिम्ब पर दशावतार फलक पर नृसिंह प्रतिमा का अंकन प्राप्त होता है। नृसिंह की स्वतंत्र मूर्तियों का यहां पर अभाव है। फलक में लघ्वाकार एवं साधारण अलंकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रतिमा का ही निर्माण किया गया है। नृसिंह प्रतिमा में विष्णु का मुख भाग सिंह का दर्शाया गया है, जिसमें लहराते हुए केश देखे जा सकते हैं। वे आसनस्थ हैं, तथा जंघाओं पर हिरण्यकश्यप को लिटाकर उसके उदर को अपने नखों से फाड़ते हुए दर्शाया गया है। नृसिंह के हाथों में भुजबंद देखा जा सकता है। इसके साथ ही उनके तन पर वनमाला का अंकन भी किया गया है।

नृसिंह अवतार की स्वतंत्र प्रतिमा चांचुल स्थित शिव मंदिर से भी प्राप्त होती है। इस प्रतिमा में भी नृसिंह को द्विभुजी रूप में दर्शाया गया है। सिंह मुख के केश लहराते हुए देखे जा सकते हैं तथा रौद्र भाव की उपस्थिति भी उक्त प्रतिमा में देखी जा सकती है।

(5) वामन अवतार

वामन विष्णु के पांचवे अवतार हैं। इनकी प्राचीनता वैदिक काल तक स्वीकारी जा सकती है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि विष्णु ने तीन पगों से सारी पृथ्वी नाप डाली। इन्हीं तीन पगों के आधार पर रामायण तथा महाभारत में उनका वामन रूप विकसित हुआ। महाभारत में वामन रूप लेने के कारण वामन 20 कहलाये। तीन पगों से तीनों लोकों को नापने के कारण त्रिविक्रम कहे गये ।" वामन का विशद वर्णन श्रीमदभागवत् में प्राप्त होता है। इन्द्र की तपस्या से खुश होकर प्रभु आयुधों सहित प्रकट हुए। इसके उपरान्त नट की भांति रूप बदलकर वामन (ब्रह्माचारी) के वेष में प्रकट हुए।

बलि को पराजित करने और इन्द्र के ऐश्वर्य को प्रदान करने के लिए विष्णु ने यह रूप अपनाया था। ऐसे बालरूप को देखकर देव-महर्षि सभी आनन्दित हो उठे। वामन रूप में उनका जातकर्म संस्कार कराया गया। यज्ञोपवीत संस्कार होते समय देवता एवम् देवियों ने उन्हें अनेक उपहार दिये, गायत्री ने उपदेश, सविता ने देवत्व, देवगुरु बृहस्पति ने यज्ञोपवीत, कश्यप ने मेखला, पृथ्वी ने कृष्ण-मृगचर्म, चन्द्रमा ने दण्ड, माता अदिति ने कौपीन तथा कटिवस्त्र, आकाश के देवता ने छत्र, ब्रह्मा ने कमण्डल, सप्तर्षियों ने कुश, सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला समर्पित की, यज्ञराज कुबेर ने भिक्षापात्र, जगज्जननी सरस्वती ने स्वयं भिक्षा दी। यज्ञोपवीत संस्कार के सम्पूर्ण होने के बाद वामन रूपधारी विष्णु ने बलि की यज्ञशाला की ओर प्रस्थान किया, विष्णु के हाथ में छत्र, दण्ड और जल से भरा हुआ कमण्डल था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमर पर मूंज की मेखला बंधी थी और स्कन्ध पर यज्ञोपवीत पड़ा था। इनका शरीर छोटा होने के कारण अत्यंत सुदर्शन एवम् वात्सल्य युक्त दर्शित हो रहा था। बलि ने इसका यथोचित सत्कार किया। तथा शुक्राचार्य के मना करने पर भी बलि ने तीन पग भूमि देने का संकल्प किया। वामन का रूप इतना विस्तृत हो गया कि उनके इन पगों में सारा संसार समाहित हो गया। इस रूप से दैत्य गण भी भयभीत हो गये।

उस रूप में त्रिविक्रम भुजाओं में सुदर्शन चक्र, धनुष बाण, पांचजन्य शंख, कौमोदकी गदा, ढाल चन्द्राकार चिन्हों वाली, विद्याधर नाम की तलवार धारण किये हुए थे। मस्तक पर मुकुट, भुजाओं में केयूर, कानों में कुण्डल वक्षः स्थल पर श्रीवत्स चिन्ह, गले में कौस्तुभ मणि, कमर में मेखला, कन्धे पर पीताम्बर गले में पांच प्रकार के पुष्पों की वनमाला थी

वामन भगवान ने अपने एक पग से सारी पृथ्वी नाप ली, दूसरे पग से स्वर्गलोक को नापा। तीसरे पग से नापने के लिए बलि के पास कुछ नहीं बचा। अतः त्रिविक्रम ने तीसरे पैर को बलि के ऊपर रखकर, उसे नागपाश से छुड़ाकर रसातल में भेज दिया। प्रतिमा लक्षण के आधार पर वामन देवता का स्वरूप मोटे तथा नाटे रूप में होना चाहिए। उनका रंग श्याम हो, कृष्ण अजिन-यज्ञोपवीत धारण किये हों । ब्रह्मचारी बालक के रूप में सिर पर शिखा, कौपीन, मेखला और साथ में कमण्डल और पुस्तक हो ।

त्रिविक्रम के रूप में उनका वर्ण जलपूर्ण मेघ के समान हाथ में दण्ड, पाश शंख, गदा, चक्र और पदम् हो। जिनका स्वरूप आयुध पुरुष के समान न होकर प्राकृतिक हो । कहीं-कहीं पर चतुर्भुजी अथवा अष्टभुजी रूप में भी प्रतिमा प्राप्त होती है। दो हाथों में शंख चक्र तथा दाहिना हाथ अभय एवम् वरद् मुद्रा में है। प्रतिमा यदि अष्टभुजी हो तो पांच हाथों में चक्र, शंख गदा, शार्ंग और हल तथा शेष तीन हाथ पूर्ववत् हो।

वामन अवतार की स्वतंत्र प्रतिमाओं का अंकन प्रायः बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल में देखने को नहीं मिलता है। बटेश्वर मंदिरों के ललाटबिम्ब पर ही वामन अवतार का अंकन किया गया है। इस फलक में वामन को बौने आकार का सुन्दर रूपवान बनाया गया है। जिनके बायें हाथ में छत्र है तथा दायां हाथ अभय मुद्रा में है। इसी प्रकार का अंकन सभी दशावतार फलकों पर किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिविक्रम रूप की एक स्वतंत्र प्रतिमा बटेश्वर से प्राप्त होती है। जिसमें विष्णु को विराट रूप में अपना एक पाद आकाश की ओर उठाये हुए दिखाया गया है। उनके मस्तक पर किरीट मुकुट है। कानों में चक्रकुण्डल का अंकन किया गया है। गले में एकावली दृष्टव्य है। यह त्रिविक्रम प्रतिमा चतुर्भुजी है। विष्णु का अगला बायां हाथ अभय मुद्रा में है तथा दायां हाथ कट्यावलम्बित है। पिछले दायें हाथ में पद्म ग्रहण किये हुए हैं। कमर पर मेखला एवं कंधों व पैरों से लिपटी हुई वनमाला का अंकन भी इस प्रतिमा में किया गया है।

(6) परशुराम अवतार

परशुराम को भी विष्णु का अवतार माना गया है। पुराणों के अनुसर है वंश का सर्वनाश करने के लिए विष्णु ने परशुराम रूप में अवतार लेकर पृथ्वी को 21 बार क्षत्रियों से रहित कर दिया। विष्णु ने परशुराम के रूप में स्वयं ही अवतार धारण किया था। परशुराम से सम्बंधित विवरण रामायण और महाभारत" से प्राप्त होते हैं। परशुराम आवेश में रहते थे। शक्, क्षत्रप, ऋषभदात के नासिक अभिलेख में रामतीर्थ का उल्लेख है। महाभारत के अनुसार यहां परशुराम का पवित्र आश्रम था। परशुराम की प्रतिमा में काफी मतभेद पाया जाता है। प्रतिमा विज्ञान का अध्ययन करने पर उनके दो भुजाओं का परिज्ञान होता है। वे जटामुकुट, यज्ञोपवीत, हाथ में परशु तथा सफेद और लाल रंग के वस्त्र धारण किये थे। परशुराम काला मृगचर्म भी धारण करते थे। सिर की जटाएँ सूर्य की आभा लिए प्रकाशित होती थीं। परशुराम के मुख्य शस्त्र परशु, निषंग, ढाल एवम् धनुष हैं। श्रीमद्भागवत के 'अनुसार वे तेज धार के फरसे से सबको काट डालते थे।

परशुराम की प्रतिहार कालीन कोई भी स्वतंत्र प्रतिमा बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल से प्राप्त नहीं हुई है। मात्र बटेश्वर मंदिर के दशावतार फलक पर ही लघ्वाकार की परशुराम प्रतिमा अंकित की गई हैं। परशुराम को मुनिवेश में दिखाते हुए उनके मस्तक पर जटाएं अंकित की गई हैं। द्विभुजी परशुराम के हाथों में फरसा एवं धनुष का अंकन भी किया गया है। अधोवस्त्र के रूप में संघाटी का प्रयोग किया गया है जो कि उनके घुटनों तक आती है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार का अलंकरण परशुराम की प्रतिमा में देखने को नहीं मिलात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(7) रामावतार

राम विष्णु के ही रूप हैं। रावण का संहार करने के लिए विष्णु मानवीय रूप में इस धरती पर प्रकट हुए। इस रूप को राम का नाम दिया गया। राम के पिता सूर्यवंशी राजा दशरथ थे। राम के स्वरूप का विशद वर्णन रामायण से प्राप्त होता है। सभी प्राचीन काल से ही राम की वन्दना करते है। रामायण से राम को नर नारायण स्वीकारा गया है। राम की प्रतिमा निर्माण में कोई कठिनाई नहीं है। राम की प्रतिमा 120 अंगुल ऊंची होनी चाहिए। राम को दो भुजाओं वाला माना गया है। राम के चतुर्भुज रूप में धनुष, बाण खडग और शंख होना चाहिए। राम राजा होने के कारण किरीट मुकुट धारण किये हुए होते हैं। राम को त्रिभंग मुद्रा में होना चाहिए। बाएं पार्श्व में नीले रंग में सीता, लक्ष्मण और हनुमान को भी दिखाना चाहिए।

बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल में राम की स्वतंत्र मूर्तियां प्राप्त नहीं हुई हैं। दशावतार फलक पर ही अन्य अवतार प्रतिमाओं के साथ ही राम की प्रतिमा प्राप्त होती है। राम को भी परशुराम की ही भांति मुनिवेश में दर्शाया गया है। राम की प्रतिमा द्विभुजी है, उनके बायें हाथ में धनुष का अंकन किया गया है। भुजाओं में भुजबंद एवं मस्तक पर जटाजूट का अंकन स्पष्टतः देखा जा सकता है। अन्य प्रतिमाओं की भांति यह प्रतिमा भी आकार में छोटी एवं अलंकरण में प्रायः सामान्य ही है।

(8) कृष्णावतार/ बलरामावतार

कृष्ण को विष्णु का 8वां अवतार माना गया है। ये देवकी तथा वासुदेव के पुत्र और अंगिरस नामक ऋषि के शिष्य थे।[17] वासुदेव और मथुरा के दुष्ट राजा की बहन देवकी के पुत्र कृष्ण (शाब्दिक अर्थ है- काला या बादल के समान काला) का जन्म यादव वंश में हुआ। कंस ने यह भविष्यवाणी सुनने के बाद कि देवकी की संतान के हाथों ही उसकी मृत्यु होगी, उनके बच्चों को मार डालने का प्रयास किया, लेकिन कृष्ण को चोरी-छिपे यमुना नदी के पास गोकुल (ब्रज) ले जाया गया, जहाँ ग्वालों के मुखिया नंद और उनकी पत्नी यशोदा ने उनका पालन किया। जब वासुदेव कृष्ण को यमुना पार ले जा रहे थे, तो शेषनाग उनके ऊपर अपने फन से छाँव किये हये थे। कृष्ण के चरणों का स्पर्श करने के लिए यमुना का जल स्तर बढ़ जाता और जब यमुना ने कृष्ण के चरण स्पर्श कर लिए तो अपना जल स्तर कम कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। कंस को आकाशवाणी द्वारा पता चला कि कृष्ण का जन्म हो चुका है, तो कंस ने कृष्ण को मारने के लिए कई दैत्य भेजे और कृष्ण ने उन सबका बध कर दिया। इन्हीं दृश्यों को प्राचीन शिल्पी ने कला में अंकित किया है। उन्होंने अपना राज्य द्वारका (आधुनिक द्वारका, गुजरात) में स्थापित किया और उन्होंने राजकुमारी रूक्मिणी से विवाह किया। कला में कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए और उन पर आसक्त गोपियों से घिरा हुआ दिखाया जाता है।[18] कृष्ण के दायें रूक्मिणी तथा बायें सत्यभामा रहती हैं तथा ये करण्ड मुकट धारण किये हुये दिखायी देती है। इनके दाहिने हाथ में पुष्प तथा बायां हाथ नीचे की ओर रहता है। पूर्वमध्यकालीन एवं मध्यकालीन मंदिरों में कृष्णलीला से संबंधित दष्टयों का अंकन करना शिल्पकार का रोचक एवं प्रिय विशय बन गया था। कृष्ण लीला से संबंधित पात्र लोगों के मन में इतने बस गये थे कि गाँव-गाँव में लोगों द्वारा कृष्ण लीलाएँ की जाती थीं। कृष्ण से संबंधित कथा महाभारत, भागवतपुराण आदि में पायी जाती है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार देवकी पुत्र के रूप में जन्म लेने के पूर्व विष्णु देवकी के समक्ष चर्तुभुज रूप में प्रकट हुए। चर्तुभुज बालक के रूप में कृष्ण के नेत्र कमल के समान सुन्दर एवम् आकर्षक हैं। नीलवर्ण पर पीताम्बर शोभायमान हो रहा है। श्रीवत्स का चिन्ह वक्षस्थल पर है। गले में कौस्तुभ मणि की माला झिलमिला रही है। इनका रूप चर्तुभुजी है। भुजाओं में शंख, गदा, चक्र और कमल है। कुण्डल, मुकुट कमर में करधनी पहने है। बाल सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान हैं, कृष्ण की शोभा आर्कषक है।

बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल से विष्णु की अवतार प्रतिमाओं के क्रम में सर्वाधिक संख्या में कृष्ण एवं उनसे सम्बन्धित लीलाओं का अंकन किया गया है। कृष्ण जन्म से लेकर, यशोदा, नन्द, गोवर्धन पर्वतधारी, पूतना वध आदि अनेक घटनाओं का चित्रण यहां पर प्राप्त होता है। इस दृष्टि से बटेश्वर एवं चांचुल के मंदिर विशेष उल्लेखनीय हैं।

दशावतार फलको पर बटेश्वर के मंदिरों में कृष्ण के स्थान पर बलराम का अंकन प्राप्त होता है। प्रायः वेशभूषा में इनका चित्रण भी राम एवं परशुराम की भांति ही किया गया है, परन्तु मूल विशेषता के रूप में बलराम के सिर के पीछे शेषनाग का अंकन किया गया है। सभी फलकों में इस विशेषता का निर्वाह भलीभांति किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णावतार से संबंधित स्वतंत्र मूर्तियों का अंकन बटेश्वर एवं चांचुल में किया गया है, जिंका विवरण निम्नलिखित है-

कृष्ण जन्म

बटेश्वर से कृष्णलीला के दृश्य खण्डित पड़े हुए प्रस्तर खण्डों में प्राप्त होते हैं। बटेश्वर से प्राप्त इस दृश्य में कृष्ण एवं उनकी माँ देवकी को कारागार में ऊँची चारपाई पर लेटे हुए तथा कृष्ण को उनके बगल में लेटा हुआ दर्शाया गया है। इसमें कारगार का अभाव है। इसी प्रस्तर खण्ड पर कृष्ण जन्म के बाद नृत्य करते हुए गंधर्व एवं अन्य गणों का अंकन किया गया है। इसी प्रकार का अंकन चांचुल मंदिर के मण्डप पर उत्कीर्ण किया गया है। (चित्र सं 28)

वसुदेव को नवजात शिशु कृष्ण को देती हुई देवकी

कंस के कोप से बालक कृष्ण को बचाने के लिए वसुदेव कृष्ण को नन्द यशोदा के यहाँ गोकुल पहुँचा आये थे और बदले में उनकी कन्या (योगमाया) को ले आये थे। बटेश्वर के मंदिर से प्राप्त दृश्य में कृष्ण के जन्म के बाद देवकी द्वारा शिशु कृष्ण को वासुदेव को देने के लिए ले जाते हुए तथा वासुदेव यशोदा को शिशु रूप कृष्ण देकर उनसे कन्या लेते हुए दर्शाया गया है। (चित्र सं 29)

दधिमंथन

इस दृश्य में यशोदा दही मथ रही हैं और उनके नीचे बालक कृष्ण मथनी में से मक्खन निकाल रहे हैं तथा दूसरे बालक कृष्ण मक्खन खा रहे हैं और उनकी माँ यशोदा उन्हें विस्मय मुद्रा में देख रही हैं जबकि बटेश्वर से प्राप्त दूसरे दृश्य में कृष्ण मक्खन चुराकर घुटनों के बल भाग रहें हैं। इसी प्रकार का दृश्य चांचुल से भी प्राप्त हुआ है। (चित्र सं. 30)

पूतना वध

वास्तव में पूतना भोजराज कस की धाय और असुर राज बलि की पुत्री थी। वह एक राक्षसी थी और लोगों के बच्चों को मार डालना व उनका खून पीना उसका प्रमुख कार्य था। वह बच्चों के लिए ग्रह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान थी। कंस की आज्ञा से वह नगर, ग्राम और ब्रज की बस्तियों में बच्चों को मारने लिए (शिशुश्चार) घूमा करती थी। वह आकाश मार्ग से चल सकती थी और अपनी इच्छानुरूप मानुष रूप धारण कर सकती थी। | हरिवंश पुराण के अनुसार वह घोर पक्षिणी समस्त प्राणियों के लिए भयंकर थी। कंस के आज्ञा से वह कृष्ण ने अपनी लीला से उसका वध कर दिया था। हरिवंश और विष्णु पुराण में उसके वध होने का में उल्लेख है किन्तु भागवत पुराण में उसके पूतना मोक्ष (उद्धार) होने का उल्लेख है। ऐसा कदाचित भागवत धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव और निम्न वर्णों के लोगों में लोकप्रियता अर्जित करने की दृष्टि से किया गया लगता है।[19]

कृष्ण को विष पिलाकर मार डालने के लिए कंस द्वारा भेजी गयी राक्षसी पूतना ने जब अपने स्तनों में विष लगाकर दूध पिलाने के बहाने बालक कृष्ण के मुख को अपने स्तनों से लगाया, तो बालक कृष्ण ने पूतना के दूध के साथ-साथ उसके प्राण भी पी डाले। इस दृश्य को बटेश्वर में अंकित करते हुए दिखाया गया है कि बालरूप श्रीकृष्ण पूतना के दायें स्तन को पकड़कर विष पान कर रहे हैं तथा पूतना के हाथ ऊपर की ओर वेदना वश फैल गये हैं। उसका राक्षसी रूप प्रकट हो गया है और सहय पीड़ा के कारण उसका शरीर निश्चेष्ट होता जा रहा है। (चित्र सं. 31)

गोवर्धन धारण

इन्द्र के कोप से ब्रज की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को धारण किया था। अंकित दश्य में कृष्ण अपने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठाये हुये हैं तथा दूसरा हाथ वक्ष स्थल पर स्थित है। चांचुल मंदिर से गोवर्धन धारण का बहुत ही सुन्दर दृश्य प्राप्त हुआ है। जिसमें उन्होंने अपने दायें हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठा रखा है। इसके पार्श्व में गौ आदि पशु तथा बृजवासियों का अंकन भी किया गया है। (चित्र सं. 32)

तृणावर्त वध

इस दृश्य में कृष्ण तृणावर्त नामक असुर के स्कन्धों पर बैठे हुए प्रदर्शित हैं। भागवतपुराण के अनुसार तृणावर्त नामक एक दैत्य कंस का निजी सेवक था। कंस की प्रेरणा से कृष्ण के वध के उद्देश्य से वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झंझावात बन कर गोकुल आया और बैठे हुए बालक कृष्ण को आकाश में उड़ा ले गया। किन्तु कृष्ण के भारी बोझ को न सम्हाल सकने के कारण दैत्य अधिक न बढ़ सका और उसका वेग शान्त हो गया। कृष्ण ने उसका गला इस प्रकार पकड़ रखा था कि वह इस अद्भुत बालक को अपने से अलग न कर सका। वह निश्चेष्ट हो गया, उसके नेत्र बाहर निकल आए वाणी अवरूद्ध हो गई और अन्त में वह मारा गया तथा वह कृष्ण के साथ नीचे आ गिरा। इस मूर्ति में तृणावर्त की उड़ान का चित्रण है। उसके स्कन्धों पर कृष्ण बैठे हुए अंकित हैं तथा कृष्ण का चित्रण शिशु रूप में न होकर युवा रूप में हुआ है। (चित्र सं. 33)

प्रलंबासुर बध

प्रलंबासुर मथुरा के राजा कंस का असुर मित्र था। एक बार जब श्रीकष्ण अन्य गोपों तथा बलराम के साथ खेल रहे थे। इसी समय कृष्ण को मारने के उद्देश्य से असुर प्रलंब भी सखाओं में मिल गया और सबके साथ 'हरिण क्रीडन नामक खेल खेलने लगा। हरिण क्रीडन खेल में हारने वाला जीतने वाले को अपने कंधे पर बिठाकर चलता था। प्रलंबासुर इस खेल में जान-बूझकर हार गया और बलराम उसके कंधे पर बैठ गए। इस अवसर का लाभ उठाकर वह बलराम दूर ले जाना चाहता था, परन्तु बलराम और कृष्ण सबकुछ समझ जाते है और बलराम ने अपने शरीर का भार इतना अधिक कर लिया कि प्रलंबासुर के लिए चलना भी मुश्किल हो गया प्रलंबासुर तथा बलराम के मध्य कुछ देर तक युद्ध चलता है अन्ततः वह मारा जाता है। (चित्र सं. 34)

अरिष्टासुर बध

भागवतपुराण में उल्लेख है कि कृष्ण ने अरिष्टासुर (बृषण) की सींग पकड़कर उसे पृथ्वी पर गिराकर अपने पैरो से इस प्रकार कुचला जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ता है।[20] इस दृश्य का सुंदर अंकन बटेश्वर में देखने को मिलता है। जिसमें वनमालाधारी कृष्ण ने अरिष्टासुर की पीठ पर अपना बायां पैर रखा हुआ है तथा दायें हाथ से उसकी गर्दन को पकड़ रखा है। (चित्र सं. 35)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशी बध

भागवतपुराण के अनुसार केशी एक दैत्य था, जो कंश की प्रेरणा से अश्व का रूप धारण कर श्रीकृष्ण को मारने आया था। कंस के द्वारा अरिष्टासुर युद्ध का कष्ण के साथ समापन होने के बाद कंस ने अंत में अपने सबसे ताकतवर असुर केशी को ब्रज भेजा। वह एक घोड़े के रूप में रहता था तथा देवता भी उससे डरते थे। उसके भय से पशु भागने लगते थे। कृष्ण घर से निकलकर उसके सामने आये तथा कष्ण के ललकारने पर केशी जब मुख फाड़े उनके पास पहुँचा तो श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा उसके मुख में डाल दी। श्रीकृष्ण की भुजा के स्पर्श से ही केशी के सब दांत टूट गये और उनकी भुजा उसके शरीर में इतनी बढ़ी कि केशी मारा गया। (चित्र सं. 36)

सूत लोमहर्षण वध

सूत लोमहर्षण वध की कथा भागवतपुराण में मिलती है। एक बार बलराम ने नैमिषारण्य क्षेत्र की यात्रा की। उन दिनों वहाँ बड़े-बड़े ऋषि सत्संगरूप महान सत्र कर रहे थे। बलराम को आया देखकर उन सभी ने अपने-अपने आसनों से उठकर उनका अभिनन्दन किया। परन्तु महर्षि व्यास के शिष्य सूत लोमहर्षण ने न तो उठकर उनका स्वागत किया और न हाथ जोड़कर प्रणाम ही सूत की इस उद्दण्डता को देखकर बलराम क्रुद्ध हुए और तुरन्त अपने हाथ में स्थित कुश की नोंक से उन पर प्रहार कर उनका वध कर दिया। बटेश्वर में बलराम अपने विशेष आयुध हल से सूत का वध करते हुए प्रदर्शित है। इस दश्य में भागवतपुराण में वर्णित कुश प्रदर्शित नहीं है।[21] (चित्र सं. 37)

(9) बुद्ध अवतार

विष्णु के अवतारों में बुद्ध को भी सम्मिलित किया गया है। शाक्य वंश में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। बुद्ध ने धर्म का प्रचार-प्रसार किया। ब्राह्मण साहित्यों में कतिपय स्थलों पर बुद्ध को विष्णु का अवतार कहा गया है। किन्तु बौद्ध धर्मानुयायी बुद्ध को विष्णु के अवतार के रूप में नहीं मानते हैं। यह अवतार उस समय हुआ वैदिक धर्म में हिंसा एवं अनैतिकता का समावेश हो गया था। इसे दूर करने के लिए अंहिसा के पुजारी बुद्ध ने समाज में प्रवेश लिया। बौद्ध धर्म का प्रचार केवल भारत में न होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के बाहर भी होने लगा। यह धर्म भी अनैतिक आचरणों से बच नहीं सका। परन्तु फिर भी बुद्ध के महत्व में इससे कोई भी कमी नहीं आती है। इसमें भी अनेक बुराइयां उत्पन्न होने लगी, लोगों में ईर्ष्या-द्वेष भाव उत्पन्न होने लगा। श्रीमदभागवत् में स्पष्ट है कि जिस समय दैत्यगण वेद मार्ग का आश्रय लेकर दानव के बनाये हुए नगरों में रहकर आंतंक फैलायेंगे और विनाश लीलाऐं करेंगे तब बुद्ध लोगों में मोह और लोभ उत्पन्न करने वाला रूप बनाकर अनेक उपधर्मों का उपदेश देंगे तथा अंहिसा का प्रचार करेंगे। बुद्ध शान्त मुद्रा में तथा उनकी हथेलियों पर एक पद-ताल कमल चिन्हित है। बाल छोटे और सुसज्जित हैं। सम्पूर्ण विश्व के पिता की भांति कमल पर आसीन है। गौरवर्णवाले, श्वेतवस्त्रधारी हैं। उनके हाथ अभय एवम् वरद मुद्रा में हैं। बुद्ध ध्यान मुद्रा में पद्मासन रूप में आसन लगाये है। दोनों हथेली एक दूसरे पर गोद में रखी है।

बटेश्वर मंदिर समूह से प्राप्त ललाटबिम्बों के दशावतार फलकों में बुद्ध प्रतिमा का अंकन प्राप्त होता है। इन फलकों में बुद्ध को तपस्वी वेश में त्रिभंग एवं द्विभंग मुद्रा में दिखाया गया है। इनके सिर पर जटाजूट है तथा दायां हाथ अभय मुद्रा में अंकित है। मूर्ति का आकार छोटा होने के कारण अलंकरण कम ही किया गया है। इसके अतिरिक्त बुद्ध की स्वतंत्र मूर्तियों का बटेश्वर, नरेस एवं चांचुल में अभाव पाया जाता है।

(10) कल्कि अवतार

कलियुग के अन्त में विष्णु का अवतार कल्कि के रूप में होगा। श्रीमद्भागवत् में कल्कि का उल्लेख अनेक बार हुआ है। किन्तु उसके रूप का विशेष उल्लेख नहीं है। इसमें लिखा है कि कलियुग के अन्त के समय कल्कि अवतरित होगें। ब्राह्मण व्यवस्था में वर्णाश्रम धर्म को व्यवस्थित करने के लिए तथा याज्ञवल्क्य मुनि की सहायता से म्लेच्छों का विनाश करने के लिए पैदा होंगे। श्रीमदभागवत् के अनुसार जब सभी राजा चोर हो जाऐंगे, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य पाखण्डी, और राजा शूद्र होगें, कभी स्वाहा, यज्ञ आदि की ध्वनि नहीं सुनाई देगी, कल्कि का अवतार उस समय होगा | कल्कि को दो भुजाओं वाला कहा गया है। कल्कि के हाथ में खड्ग होगी, वे अश्वारूढ़, क्रोधित और बलवान हैं। म्लेच्छों का वध करने के लिए उनके दोनों हाथ उद्यत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बटेश्वर मंदिर समूह से ही दशावतार फलक पर कल्कि अवतार की प्रतिमा की प्राप्ति होती है। कल्कि अपने वाहन अश्व पर आरूढ हैं। अश्व पूर्णतः गतिमान अवस्था में दिखाया गया है। उनके सिर पर मुकुट का अंकन दृष्टव्य है। कल्कि द्विभुजी रूप में यहां पर अंकित हैं, जिनके दायें हाथ में तलवार का अंकन है और बायें हाथ से उन्होंने अश्व की लगाम पकड़ रखी है। मूर्ति का आकार अधिक छोटा होने के कारण अन्य किसी प्रकार का अलंकरण दृष्टव्य नहीं है।

देवी – मूर्तियाँ

देवी की उपासना मानव सभ्यता के आरम्भिक युग से ही होने लगी थी, क्योंकि आरम्भिक अवस्था में मनुष्य प्रजनन के रहस्य को नहीं समझता था। वह प्रजनन में समर्थ नारी में देवी शक्ति की कल्पना करता था। मानव की इसी भावना ने आदि काल में शक्ति का रूप ले लिया।

भारत में देवी शक्ति की उपासना का प्रमाण चौथी सहस्राब्दी ई०पू० की बलूचिस्तान में प्रस्फुटित होने वाली सभ्यताओं में मिलता है। इस सन्दर्भ में कुल्ली संस्कृति से प्राप्त मिट्टी की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ नारी मूर्तियाँ दो शिशुओं को लिये हुए निर्मित की गयी हैं। बलूचिस्तान की ही दूसरी संस्कृति झोब से प्राप्त नारी मृण्मूर्तियों के आँख के कोटर खाली हैं, जो अत्यन्त भयावह है और स्टुअर्ट पिगट के विचार से ये मूर्तियाँ मातृ शक्ति के उस स्वरूप को स्पष्ट करती हैं, जिसमें वह भूमिगत जगत की स्वामिनी समझी जाती है।[22]

मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चन्हूदड़ो तथा अन्य स्थानों से भी मिट्टी की बनी हुई कुछ स्त्रियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। पुरातत्त्वविद् इन मूर्तियों को मातृ-देवी की मूर्ति स्वीकार करते हैं। ये मूर्तियाँ प्रायः नग्न बनाई गयी हैं, वे कमर के नीचे एक पटका, जो कि मेखला से बँधा हुआ है, को धारण किये हैं; पैर तने के समान हैं; पैरों की अँगुलियों को प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं किया गया है; गले में कई लड़ियों के हार तथा कंठहार हैं; आँखें गोल बत्तियों से प्रदर्शित की गई हैं, सिर पर एक ऊँची कुल्हाड़ी की शकल की शिरोभूषा है, जो किसी नारे से थमी दीख पड़ती है। कुछ उदाहरणों में स्त्रियों के सिर के दोनों ओर (कानों के स्थान पर) प्याले जैसी वस्तुएँ हैं। इन मूर्तियों के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि ये मातृ-देवी की मूर्तियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृ-देवी की आराधना की प्रथा युगों-युगों तक चलते रहने का एक कारण यह भी था कि यह एक ऐसी देवी थी जिसकी ओर आसानी से व्यक्ति का ध्यान आकर्षित हो जाता था। मातृ देवी की पूजा का आरम्भ धरती माता की पूजा से भी सम्भवतः हुआ होगा। मेसोपोटामियाँ के साहित्य में तो प्रकृति को 'पृथ्वी की रानी' कहा गया है। वैबिलोन की कुछ मुद्राओं पर मातृ-देवियाँ अनाज के बाल के डंठल के साथ दिखायी गई हैं। मेसोपोटामियाँ में मातृ-देवी मनुष्य की अनेक व्याधियों से रक्षा भी करती थी। सम्भवतः इसी दृष्टिकोण के कारण सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत मातृ- देवी की उपसना होती रही होगी। वास्तव में दजला-फरात, नील तथा सिन्धु नदी के तट पर रहने वालों की जीविका बहुत कुछ खेती पर निर्भर थी और यह स्वाभाविक था कि पोषण करने वाली खेती या धरती माता की पूजा वे लोग करते रहे हों।

सैन्धव सभ्यता से प्राप्त देवी प्रतिमाओं में एक स्त्री प्रतिमा वृक्ष के नीचे बैठी है; उसके दोनों ओर दो पुरुष अंजली बाँधे खड़े हैं; देवी का रूप सौम्य है। इसे विचारकों के द्वारा पृथ्वी- देवी की प्रतिमा स्वीकार किया गया है।[23] यहाँ के प्राप्त खिलौनों में एक भयानक रूपवाली प्रतिमा है, उसके गले में मुण्डमाला है। डॉ० अग्रवाल ने बाद में विकसित हुए 'काली' अथवा 'चण्डिका' के रूप में इसकी कल्पना की है।[24] सिन्धु घाटी की एक मुद्रा पर एक नग्न स्त्री की आकृति बनी है; उसके उदर से एक वृक्ष को निकलता हुआ दिखाया गया है; उसके समीप हाथ में खड्ग लिये हुए एक व्यक्ति खड़ा है और पास ही एक स्त्री ऊपर की ओर हाथ जोड़े सिर नीचा किये हुए बैठी है।[25] मजूमदार महोदय ने इसे पृथ्वी- देवी की प्रतिमा बतलायी है[26], जिसे बलि चढ़ाई जा रही है। मोहनजोदड़ों से ही एक देवी प्रतिमा बहुत ही सुन्दर तथा सजी हुई प्राप्त हुई है, जिसके शरीर पर आभूषण हैं।[27] इसका आकार-प्रकार ऋग्वेद[28] में कही गयी महीमाता का ही रूप प्रतीत होता है। इसके साथ अनेक हाथी, वृषभ, गैंडे आदि पशुओं की प्रतिमाएँ भी प्राप्त हुई हैं।

वैदिक काल में देवताओं का महत्त्व देवियों से अधिक जान पड़ता है। वैदिक धर्म में उषा की कल्पना देवी के रूप में की गई है।[29] ऋग्वेद के वाकसूक्त, देवीसूक्त तथा रात्रि से सम्बन्धित सूक्त' के अन्तर्गत वाक्, पृथ्वी तथा रात्रि देवी की कल्पना की गयी है और उनकी स्तुति में मन्त्रों की रचना की गयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में 'अदिति' को प्रकृति का रूप माना गया है; वही आकाश, वायु, माता-पिता तथा पुत्र के रूप में हैं। सृष्टि में जो कुछ उत्पन्न हुआ है तथा उत्पन्न होगा, सब अदिति का ही रूप हैं। अथर्ववेद में 'विराज' नाम की एक देवी का उल्लेख किया गया है, जो तीनों लोकों की माता है।[30] इसी वेद में उसका तादात्म्य अदिति से स्थापित किया गया है[31] और उसे 'स्वाहा'[32] नाम से पुकारा गया है।

वैदिक कल्पना का आगे चलकर मातृ शक्ति की उपासना में महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ। परन्तु शाक्त सम्प्रदाय की कुछ प्रमुख देवियों - अम्बा और उमा इत्यादि का उल्लेख पूर्व वैदिक साहित्य में हमें प्राप्त नहीं होता, किन्तु उत्तर वैदिक कालीन ग्रन्थों में 'अम्बिका', 'उमा', 'दुर्गा', 'काली' आदि के नामों का उल्लेख किया गया है, जो शाक्त धर्म से सम्बन्धित हैं। वाजनेयी संहिता[33] और तैत्तिरीय ब्राह्मण[34] में अम्बिका को रुद्र की बहन बतलाया गया है। तैत्तिरीय आरण्यक[35] में उसे रुद्र की पत्नी कहा गया है। केन उपनिषद[36] में उमा को समस्त ब्रह्म विद्या का रूप कहा गया है। मुण्डकोपनिषद्[37] में अग्नि की सात जिह्वा बतलाई गई है—'काली', 'कराली', 'मनोजवा', 'सुलोहिता', 'सुधूम्रवर्णा', 'स्फुलिंगनी' और 'विश्वरुचि' । यहाँ पर सात की संख्या महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आगे चलकर सप्त मातृकाओं की कल्पना की गई। गुह्य सूत्रों में भद्रकाली, भवानी, दुर्गा आदि के नाम प्राप्त होते हैं। इस विवरण से स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल में वैदिकेत्तर परम्पराओं से नयी-नयी देवियों का प्रवेश वैदिक धारा में हो गया था।

शाक्त सम्प्रदाय के महती स्वरूप का चित्रण महाभारत के दुर्गास्त्रोत[38] एवं हरिवंशपुराण के 'आर्यास्तवन'[39] में प्राप्त होता है। इसके अध्ययन से विदित होता है। कि देवी के इस विराट रूप में एक ओर वैदिक तत्त्व है, तो दूसरी ओर वैदिकेत्तर तत्व भी विद्यमान है। 'आर्या', 'कौशितिकी' और 'कात्यायनी' नाम वैदिक परम्परा की ओर संकेत करते हैं, तो दूसरी ओर देवी की उपासना बर्बर, शबर, और पुलिन्दों द्वारा की जाती थी और उन्हें 'अर्पणा', 'नग्नशबरी', 'पर्णशबरी' भी कहा गया है, जो वैदिकोत्तर परम्परा की ओर संकेत करते हैं। दुर्गास्त्रोत में उल्लेख है कि एकान्त बन्धन और अरण्य के भय से बचने के लिए उनकी (अर्पणा) प्रार्थना करनी चाहिये। मारकण्डेय पुराण का देवीमाहात्म्य खण्ड पौराणिक काल में देवी की महत्ता का प्रतिपादन करता है; ये देवी स्तुतियाँ देवी की आदि, श्रेष्ठ एवं संरक्षिका शक्ति का प्रकटीकरण करती हैं। देवी को जगत माता तथा जगदम्बा आदि नामों से पुकारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, जो उसके मातृ-रूप को व्यक्त करता है। देवी का यह रूप पौराणिक युग में अधिक स्पष्ट एवं विकसित हुआ है, यहाँ तक कि दर्शन जैसा विषय भी देवी के महात्म्य से शून्य नहीं है। वेदान्तियों का माया का सिद्धान्त महामाया देवी के महत्त्व को प्रदर्शित करता है। सांख्य दर्शन का प्रकृति तथा पुरुष का सिद्धान्त भी इसी जगदम्बा आदि शक्ति का प्रतीक है।

महाभारत एवं हरिवंश की दूसरी दुर्गा स्तुति में दुर्गा के 'महिषमर्दिनी', 'मधुमांसादि-भक्षिणी', 'नारायणप्रियतमा', 'वासुदेवभगिनी', 'विन्ध्यवासिनी' आदि नामोल्लेखों के साथ-साथ उस आख्यान पर भी बल दिया गया है, जिसमें यशोदा की लड़की को कंस ने पत्थर पर पटक दिया तो वह देवी रूप धारण कर स्वर्ग चली गयी। विष्णु ने जब पाताल में शयनार्थ प्रवेश किया तो निद्राकालरूपिणी को यशोदा के गर्भ से जन्म लेने का आदेश दिया तथा यह भी कहा कि वह कौशिकी नाम से विन्ध्य पर्वत पर अपना निवास बनायेगी और वहाँ पर 'शुम्भ' एवं 'निशुम्भ' दैत्यों का संहार करेगी। वस्तुतः इस समय तक आते-आते ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिदेवों के साथ तीन देवियों का अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया। ब्रह्मा का सम्बन्ध सरस्वती, सावित्री या गायत्री से, विष्णु का लक्ष्मी से तथा शिव का पार्वती अथवा दुर्गा से बतलाया गया है। इस विषय में भी अनेक मतभेद हैं, यद्यपि देवों के साथ देवियों का यह विभाजन प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र स्पष्ट किया गया है, किन्तु पुराणों में विष्णु की ही आदि शक्ति का विष्णु के अनेक रूपों एवं अवतारों में विभिन्न रूप धारण करने का वर्णन किया गया है। यदि विष्णु अपनी ब्राह्मी मूर्ति में ब्रह्मा का रूप धारण कर लेते हैं, तो शक्ति सावित्री बनकर उनके साथ रहती है, विष्णु के रूप में वह लक्ष्मी रहती है; उमा के रूप में शिव का साथ देती है। मारकण्डेयपुराण[40] में महिषमर्दिनी के उदय में शैव, वैष्णव और ब्राह्म उग्र-तेज का वर्णन है। देवगण जब शुम्भ और निशुम्भ से पीड़ित हुए तो हिमालय गये और देवी स्तुति प्रारम्भ की तो पार्वती से अम्बिका उत्पन्न हुई। उसकी कौशिकी संज्ञा का आधार पार्वती के कोश (देह) से उत्पत्ति के कारण है; चूँकि अम्बिका कृष्ण वर्ण लेकर उत्पन्न हुई अतः उसका नाम काली हुआ। चण्ड-मुण्ड का विनाश करने के बाद यह अम्बिका जब पुनः पार्वती के पास गई तो पार्वती ने इसका दूसरा नाम चामुण्डा रखा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती

बटेश्वर मंदिर समूह से पार्वती की दो स्वतंत्र मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। पार्वती को तपस्विनी के रूप में अंकित किया गया है। (चित्र सं. 38) एक मूर्ति में वे योगपट्ट के साथ आसनस्थ हैं। पार्वती को तपस्विनी के रूप में अर्धपर्यंकासन में भी चित्रित किया गया है। उनके मस्तक पर जटाजूट का अंकन किया गया है। पार्वती को इन मूर्तियों में चतुर्भुजी रूप में अंकित किया गया है। उनके अग्र बायें हाथ में कमण्डल तथा दायों हाथ ध्यान मुद्रा में है। दूसरी प्रतिमा में वरद मुद्रा का अंकन प्राप्त होता है। अधिक आभूषण एवं अलंकरणों से रहित पार्वती को पूर्णतः ध्यानमग्नावस्था में अंकित किया गया है।

महिषासुरमर्दिनी

देवी के शक्ति रूपों में महिषासुरमर्दिनी स्वरूप सर्वाधिक प्रसिद्ध है। महिषासुर के विनाश के पश्चात् देवी महिषासुरमर्दिनी कहलाई। सम्पूर्ण भारतवर्ष में देवी के इस स्वरूप की आराधना होती है एवं मूर्तियों का निर्माण होता आ रहा है। प्रतिहार कालीन मुरैना जनपद के कलाकेन्द्रों से महिषासुर मर्दिनी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। यह प्रतिमा महिषासुर स्वरूप के मूर्तिकला के विकास के आरम्भिक स्वरूप की हैं। मूर्ति (चित्र सं. 39) में देवी स्थानक अवस्था में चतुर्भुजी स्वरूप में प्रदर्शित हैं। उनके पश्च दायें हाथ में खड्ग एवं बायें हाथ में खेटक का अंकन किया गया है। अग्र दायें हाथ में त्रिशूल है जो कि महिष की पीठ में धंसा हुआ है। देवी के चरणों के समीप महिषासुर का अंकन पशु के रूप में किया गया है, देवी के त्रिशूल के प्रहार से वह विचलित अवस्था में अंकित किया गया है। देवी को अपने वाहन सिंह के साथ अंकित किया गया है। सिंह ने महिष के पश्च भाग को अपने दांतों में जकड़ रखा है। देवी के सिर पर मुकुट एवं कानों में कुण्डल स्पष्ट देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण मूर्ति पर किसी भी प्रकार अलंकरण स्पष्ट नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमातृकाएँ

सप्तमातृका का प्रयोग सभी प्रकार की देवियों के लिये होता है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार सप्तमातृकाओं का मूल ऋग्वेद में विद्यमान है. किन्तु यह बात संदिग्ध है। सप्तमातृकाओं की संख्या और नाम के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न अवधारणाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल के गंगधर शिलालेख में मातृकाओं के मन्दिर का उल्लेख किया गया है किन्तु उसमें मातृकाओं की संख्या और नाम का उल्लेख नहीं किया गया है।[41] पूर्वकालीन चालुक्य शासकों के अभिलेखों की प्रस्तावना में सप्तमातृकाओं की संख्या प्रस्तुत की गई है, जिसमें बतलाया गया है कि हरिति के पुत्रों ने सप्तमातृकाओं से ज्ञान प्राप्त किया था। वाराहमिहिर ने वृहत्संहिता में मातृकाओं के सम्बन्ध में मात्र इतना ही कहा है कि सभी अपने देवता के वाहन, आयुध तथा चिह्नों से युक्त होती हैं।[42]

सप्तमातृका कल्पना के विकास में वस्तुतः कई शताब्दियाँ लगी हैं। इनकी कल्पना के विकास के सम्बन्ध में महाभारत और पुराणों में रोचक प्रसंग है- "एक बार शिव अन्धकासुर से युद्ध कर रहे थे, उस समय अन्धकासुर के शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरती थीं, उतने ही नवीन अन्धकासुर उत्पन्न हो जाते थे। उस समय शिव ने घबड़ाकर अपनी योगेश्वरी नामक शक्ति उद्भूत की। इसके साथ ही साथ ब्रह्मा- विष्णु, स्कन्द, इन्द्र, यम आदि देवों ने भी अपनी-अपनी शक्तियाँ छोड़ी। इन सप्तमातृकाओं ने अन्धकासुर के रक्त को भूमि पर गिरने से रोक लिया।[43] इस प्रकार ब्रह्मा की शक्ति 'ब्राह्मी', विष्णु की शक्ति 'वैष्णवी', शिव की शक्ति 'माहेश्वरी', कुमार की शक्ति 'कौमारी, वराह की शक्ति 'वाराही', इन्द्र की शक्ति 'इन्द्राणी' तथा यम की शक्ति 'चामुण्डा' कहलायी। कूर्मपुराण में एक कथा प्रस्तुत की गई है. अन्धकासुर के पराजय के बाद शिव ने भैरव और मातृकाओं को नृसिंह के लोक में भेज दिया। मातृकाओं ने खाद्य के अभाव में उपलब्ध वस्तु का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया, इस पर भैरव ने नरसिंह से मातृकाओं की विनाशात्मक शक्ति को समाप्त करने की प्रार्थना की और नरसिंह ने ऐसा ही किया। देवीमहात्म्य की कथा' में बतलाया गया है कि जब देवी शुम्भ राक्षस से लड़ रही थीं तो असुर सेना के साथ घिर गयी। उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं ने अपनी-अपनी शक्तियाँ भेजीं जो उन देवताओं के वाहनों पर आसीन थी और उस देवता विशेष के आभूषणों से अलंकृत थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वराहपुराण में सप्त के स्थान पर अष्ट मातृकाओं का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में मातृका, देव (जिसकी वह शक्ति है) तथा उसके दुर्गुणों का भी उल्लेख किया गया है।

1. योगेश्वरी	शिव
2. माहेश्वरी	महेश्वर
3. वैष्णवी	विष्णु
4. ब्राह्मी	ब्रह्मा
5. कौमारी	कुमार
6. इन्द्राणी	इन्द्र
7. चामुण्डा	यम
8. वराही	वराह

सप्तमातृकाओं की सामान्य सूची में 'ब्राह्मी', 'माहेश्वरी', 'वैष्णवी', 'वाराही', 'इन्द्राणी', 'कौमारी' और 'चामुण्डा' का उल्लेख हुआ है। प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में इन सप्तमातृकाओं के प्रतिमा निर्माण का विधान निश्चित किया गया है।

ब्राह्मी - ब्रह्मा के द्वारा भेजी गयी शक्ति का नाम ब्राह्मी है। अतः इसका रूप भी ब्रह्मा के समान ही है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में बतलाया गया है कि इस देवी की छः भुजाएँ तथा चार मुख होना चाहिये; उसके दाहिने हाथ में स्त्रुव, सूत्र और बाएँ हाथ पुस्तक तथा कुण्डी होना चाहिये, उसका रंग पीला रहता है, वह समस्त आभूषणों से सुसज्जित तथा मृग चर्म का उत्तरीय धारण किये हुए हंस पर आरूढ़ रहती है।[44] हंस ब्रह्मा का वाहन है तथा ब्रह्मा भी स्त्रुव को धारण करते हैं, ब्रह्मा के चार मुखों का भी वर्णन किया गया है।[45] इस प्रकार ब्रह्मा की शक्ति ब्राह्मी को भी ब्रह्मा के समान ही निर्मित करने का विधान निश्चित किया गया है। रूपमण्डन[46] में भी बतलाया गया है कि ब्राह्मी को हंस पर आसीन दिखाना चाहिये, उसके चारों हाथों में अक्षसूत्र, कमण्डलु, स्त्रव और पुस्तक होनी चाहिये। देवतामूर्तिप्रकरण में चतुर्भुजी ब्राह्मी को पुस्तक, माला तथा पद्म धारण किये हुए बतलाया गया है, उसका एक हाथ वरद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रा में रहता है। बाद के ग्रन्थ श्री तत्त्वनिधि में विष्णुधर्मोत्तरपुराण के विवरण को ही संकलित कर लिया गया है।[47]

दक्षिण भारतीय ग्रन्थ अंशुमद्भेदागम्[48] के विवरण के अनुसार चतुर्मुखी और चतुर्भुजी ब्राह्मी के दो हाथों में शूल और अक्षमाला होनी चाहिये, शेष दो हाथों में से दाहिना अभय मुद्रा में और बाँया वरद मुद्रा में होना चाहिये । पूर्वकर्णागम् में भी ब्राह्मी के इसी रूप का वर्णन है, किन्तु उसके एक हाथ में कमण्डलु प्रदर्शित करने का विधान निश्चित किया गया है। 1

माहेश्वरी - शिव के द्वारा उद्भूत शक्ति का नाम माहेश्वरी है। विष्णुधर्मोत्तर- पुराण में बतलाया गया है कि श्वेतवर्णी, जटाजूटधारी माहेश्वरी के पाँच मुख तीन नेत्र होने चाहिये; वह वृषभासीन होती हैं; उसकी छः भुजायें होती हैं; दाहिनी ओर और तीन भुजाओं में से दो में क्रमशः सूत्र और डमरू रहता है और एक वरद-मुद्रा में रहता है। बाँए हाथों में दो में शूल और घण्टा और एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है।[49] श्री तत्त्वनिधि में विष्णुधर्मोत्तरपुराण के विवरण को ही उद्धृत किया गया है, किन्तु उसकी पाँच और तीन नेत्रवाली अनुसार मुख भुजाओं की संख्या में वृद्धि हो गयी है। इसके माहेश्वरी वृषभ पर आसीन होती है; उसका वर्ण श्वेत होता है; भुजाएँ दस होती हैं और ललाट चन्द्र-रेखा से अलंकृत होता है। उसके दसों हाथों में से आठ हाथों में खड्ग, वज्र, त्रिशूल, परशु, पाश, घण्टा, नाग और अंकुश होता है तथा शेष दो हाथों में से एक हाथ अभय-मुद्रा में तथा दूसरा वरद मुद्रा में होता है।[50] रूपमण्डन[51] के अनुसार माहेश्वरी को वृषभ पर आरुढ़ होना चाहिये; उसके चार हाथ होने चाहिये, जिसमें से तीन हाथों में कपाल, शूल और खटवाङ्ग हो और एक हाथ वरद- मुद्रा में हो।

अंशुमद्भेदागम् में जटा-मुकुटधारी माहेश्वरी के हाथ में जप माला और शूल प्रदर्शित करने का विधान है। पूर्वकर्णागम् भी श्वेतवर्णी, त्रिनेत्री माहेश्वरी के हाथों में शूल और अक्षमाला दिखाने की बात कहता है।[52]

वैष्णवी - विष्णु से उद्भूत शक्ति का नाम वैष्णवी है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण[53] में बतलाया गया है कि वैष्णवी गरुड़ पर स्थित होती है; उसका रंग श्याम तथा भुजाएँ छः होती हैं। उसके दाहिने के दो हाथों में गदा तथा पद्म, और एक हाथ अभय मुद्रा में होता है; बाँये के दो हाथों में शंख, चक्र तथा एक हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरद मुद्रा में होता है। देवी पुराण में उसके वस्त्र को पीला तथा हाथों को शंख, चक्र, गदा और कमल से युक्त बतलाया गया है।[54] रूपमण्डन में इसे विष्णु के सदृश तथा गरुड़ पर आसीन दिखाया गया है। इसके अनुसार वैष्णवी की चार भुजा होनी चाहिये। उनकी चार भुजाओं में क्रमशः शंख, चक्र, गदा तथा एक हाथ वरद मुद्रा में होता है।[55] दक्षिण भारतीय ग्रन्थ पूर्वकर्णागम् में भी वैष्णवी को ठीक इसी रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसके अनुसार श्यामवर्णवाली चतुर्भुजी वैष्णवी के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म होना चाहिये।[56]

वाराही - विष्णुधर्मोत्तर पुराण[57] में बतलाया गया है कि वाराही का वर्ण काला और उदर विशाल होता है। उसके बाँबे हाथों में खेट, पाश रहता है और एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है। उसके दाहिने हाथ में दण्ड, खड्ग रहता है और एक हाथ वरद मुद्रा में होता है। रूपमण्डन[58] महिष पर स्थित वाराही के हाथों में घण्टा, चक्र, गदा और पद्म का उल्लेख करता है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थ अंशुमद्भेदागम वाराही के स्वरूप को कुछ भिन्न रूप में प्रस्तुत करता है, उसके अनुसार बाराही के दो हाथों में हल और शक्ति तथा दो हाथों में से एक हाथ वरद मुद्रा में और दूसरा अभय मुद्रा में होता है। पूर्वकर्णागम् में हल के साथ मूसल भी दिखाने को कहा गया है।[59]

इन्द्राणी - विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बतलाया गया है इन्द्राणी स्वर्ण के समान आभा वाली, गज पर आसीन तथा सहस्त्र नेत्रों वाली होती है। उसके दाहिने हाथ में सूत्र, वज्र तथा बाँए हाथों में कलश पात्र रहता है, शेष दोनों हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में होते हैं।' गज और वज्र को वृहत्संहिता तथा अग्निपुराण' में इन्द्र की सवारी तथा आयुध बतलाया गया है। रूपमण्डन' में इन्द्राणी को सहस्त्र नेत्रों वाली गजारूढ़ वज्र, शूल और गदा को धारण करने वाली बतलाया गया है। अंशुमभेदागम्' में भी गजासीन, आभरणों से अलंकृत, किरीटधारी, चतुर्भुजी और त्रिनेत्री इन्द्राणी के दो हाथों में शक्ति और वज्र तथा शेष दो हाथों को अभय और वरद मुद्रा में स्थित वर्णित किया गया है।

कौमारी – विष्णुधर्मोत्तरपुराण[60] में मयूरासीन कौमारी को रक्त वर्ण का द्वादश भुजी बतलाया गया है। उसके दाँए हाथों में शक्ति, पताका, दण्ड, पात्र, और बाण होता है तथा एक हाथ वरद मुद्रा में होता है; बाँए हाथों में धनुष, घण्टा, कपाल, कुक्कुट और परशु होता है। रूपमण्डन कौमारी को चतुर्भुजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाता है उसके अनुसार मयूरासीन कौमारी के वस्त्र लाल और चारों हाथों में पद्म, शूल, शक्ति और गदा होती है।[61] अंशुमद्भेदागम् में चतुर्भुजी, त्रिनेत्री, कौमारी के हाथों में शक्ति, कुक्कुट तथा दो हाथों में से एक हाथ अभय और एक वरद मुद्रा में दिखाने का विधान निश्चित किया गया है। पूर्वकर्णागम् उसके दो हाथों में शक्ति और अंकुश बतलाता है।[62]

चामुण्डा – विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चामुण्डा को प्रेत पर बैठी हुई रक्तवर्णी, क्षीण, विकृत देहवाली बतलाया गया है। उसके दाँत निकले हुए होते हैं और उसका रूप भयंकर होता है; उसकी दस भुजाएँ होती हैं, जिसमें से दाहिने तरफ की पाँच भुजाओं में मूसल, चक्र, वाण, अंकुश और खड्ग तथा बाँए तरफ की पाँच भुजाओं में ढाल, पाश, धनुष, दण्ड और कुल्हाड़ी (कुठार) होती है। अपराजितपृच्छा में उसे शव पर स्थित बतलाया गया है। चामुण्डा के इसी भयानक रूप का वर्णन रूपमण्डन में भी किया गया है।

बटेश्वर मन्दिर समूह के अनेक मन्दिरों के ललाटबिम्ब पर नवग्रहों के साथ-साथ सप्तमातृकाओं का अंकन भी प्राप्त हुआ है। (चित्र सं. 40) मातृकाओं को स्थानक एवं आसनस्थ दोनों ही रूपों में अंकित किया गया है। प्रतिमाशास्त्रीय विधान के अनुसार मातृकाओं के आरम्भ में वीरभद्र तथा अंत में गणेश का अंकन यहां पर प्राप्त होता है। सभी देवियों को उनके अस्त्र-शस्त्रों के साथ अंकित किया गया है। स्थानक प्रकार की मूर्तियों में सभी देवियों को द्विभंग मुद्रा में दर्शाया गया है। मूर्तियों का आकार बहुत छोटा होने के कारण इन पर किये गये अलंकरण एवं आयुध बहुत अधिक स्पष्ट नहीं हैं। मातृकाओं के आरम्भ में उपस्थित वीरभद्र के हाथों में वीणा का स्पष्ट अंकन देखा जा सकता है। वाराही देवी के मुख को वराह के रूप में ही अंकित किया गया है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित समस्त लांछनों को इन मूर्तियों पर अंकित नहीं किया गया है।

गणेश -

पौराणिक देवमण्डल में गणपति का महत्वपूर्ण स्थान है। विघ्ननाशक और मंगलकारी देव के रूप में इनका अस्तित्व है। गणपति और गणेश नाम से अभिहित इस देवता को शिव और पार्वती के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है। गणपति और गणेश का शाब्दिक अर्थ गणों का अधिपति और गणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश है। गणपति शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी हुआ है।[63] कालान्तर में शिव और उमा के पुत्र को शिव के गणों के अधिपति के रूप में गणपति की संज्ञा प्रदान की गई है।

पुराणों, आगमों तथा शिल्प-ग्रन्थों में गणपति- प्रतिमा को अनेक रूपों में प्रदर्शित करने का विधान निश्चित किया गया है। गणपति प्रतिमा-विधान का प्राचीनतम विवरण हमें वाराहमिहिर की वृहत्संहिता में प्राप्त होता है। जिसके अनुसार एकदन्ती गजमुख और लम्बोदर गणपति को परशु तथा कन्दमूलधारी प्रदर्शित करना चाहिये।[64] वृहत्संहिता में वर्णित गणपति प्रतिमा-लक्षण के विवरण को विचारकों ने क्षेपक स्वीकार किया है, फिर भी गुप्तकाल के आरम्भिक चरण में गणपति की प्रतिमाओं का निर्माण प्रतिमाशास्त्रीय आधार पर होने लगा था।[65]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण[66] में अपने एक पैर को पाद पीठ पर और दूसरे को आसन पर रखे हुए गजमुख और चतुर्भुजी गणपति को अपने दाहिने हाथों में त्रिशूल और अक्षमाला तथा बाँए हाथों में परशु और मोदक से भरा पात्र लिये हुए वर्णित किया गया है। इस पुराण के अनुसार वे लम्बोदर और शूर्पकर्ण हों तथा सर्प यज्ञोपवीत और व्याघ्र-चर्म का वस्त्र धारण किये हुए हों, उनके बायीं ओर के दाँत का प्रदर्शन न हो। मत्स्यपुराण में गणपति प्रतिमा-विधान के अन्तर्गत कुछ अन्य तत्त्वों को भी समाविष्ट किया गया है। इस पुराण में वर्णित विवरण के अनुसार वे चतुर्भुजी रूप में अपने दाँए हाथों में स्वदन्त और कमल तथा बाँए हाथों में मोदक और परशु धारण किये हुए हों। उनका मुख गजमुख हो, वे लम्बोदर, शूर्पकर्ण, विशालतुण्ड, एकदन्ती, सर्प यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिनेत्र युक्त हों। उनके साथ उनका वाहन मूषक तथा ऋद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियाँ हों, उनके कन्धे और हाथ पुष्ट हों तथा मुख नीचे की तरफ झुका हुआ हो।[67]

अग्निपुराण[68] के विवरण के अनुसार गजमुख, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, चतुर्भुजी गणपति के हाथों में स्वदन्त परशु कमल और मोदक होना चाहिये। अपराजित पृच्छा' में भी गजमुख, लम्बोदर और चतुर्भुजी गणपति को अपने दाहिने हाथों में स्वदन्त, परशु और बाँए हाथों में कमल और मोदक लिये हुए वर्णित किया गया है। रूपमण्डन' में भी ठीक इसी प्रकार का विवरण प्राप्त होता है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशुमद्भेदागम् और सुप्रभेदागम् में भी गणपति प्रतिमा-विधान का उल्लेख हुआ है, जो पौराणिक विवरण के ही समान है।[69]

विभिन्न शास्त्रों में वर्णित गणपति-प्रतिमा लक्षण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि चतुर्भुजी गणपति के हाथों में परशु मोदक, त्रिशूल, अक्षमाला, पात्र स्वदन्त, कमल, कपित्थ, अंकुश, नाग, फल आदि में से किसी चार का प्रदर्शन होना चाहिये। उनका मुख गज का और उदर बड़ा एवं लम्बा तथा उन्हें एकदन्ती होना चाहिए। उनके साथ उनकी पत्नि ऋद्धि और बुद्धि तथा वाहन मूषक का प्रदर्शन होना चाहिए। कुछ ग्रन्थों में उनकी पत्नियों का नाम श्री, विघ्नेश्वरी, भारती (सरस्वती), बुद्धि और कुबुद्धि आदि भी दिया गया है। उनके तीन नेत्र होने चाहिये। वे व्याघ्रचर्म का वस्त्र पहने हों तथा सर्प-यज्ञोपवीत धारण किये हुए किरीट-मुकुट तथा अन्य आभूषणों से युक्त हों।

परवर्ती लक्षण ग्रन्थों में गणपति के अन्य अनेक प्रतिमा प्रकारों का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें विविध रूपों में दिखाने का विधान है। इन प्रतिमा प्रकारों में हेरम्ब गणेश, क्षिप्रगणेश, बालगणेश, गजानन, वक्रतुण्ड गणेश, उच्छिष्ट गणेश, उन्मत गणेश, नृत्त गणपति, रात्रि गणेश, नागेश्वर, बीजगणेश, शक्तिगणेश आदि प्रमुख हैं।

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन कलाकेन्द्रों से अनेक प्रकार की गणेश प्रतिमाओं की प्राप्ति हुई है। ध्यातव्य है कि बटेश्वर एवं नरेसर मन्दिर समूह के सभी मन्दिर एक ही समय पर नहीं बनाये गये थे, ये मन्दिर जहां एक ओर स्थापत्य कला के विकास क्रम को दर्शाते हैं, वहीं दूसरी ओर इन पर अंकित मूर्तियों में भी विकासक्रम के दर्शन होते हैं। गणेश प्रतिमाओं के सम्बन्ध में भी यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है। बटेश्वर मन्दिर समूह में गणेश की प्राप्त प्रतिमाओं में वे आसन, स्थानक एवं नृत्य तीनों ही रूपों में अंकित किये गये हैं। आरम्भिक काल की प्रतिमाओं में गणेश का अंकन अत्यन्त सादा किया गया है। आकार एवं वस्त्रालंकरण की दृष्टि से भी ये प्रतिमाएं अत्यन्त सादी हैं। भूतेश्वर मंदिर प्रांगण में स्थित गणेश की आरम्भिक मूर्तियों में से एक आसनस्थ मूर्ति में गणेश को गजमुख एवं गजदन्तों के साथ दर्शाया गया है। उनके अग्र बायें हाथ में मोदक है, जिस पर सूंड का अग्र भाग भी रखा हुआ है। गणेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कान सूर्पफण के आकार के उत्कीर्ण किये गये हैं। उक्त मूर्ति में शेष अलंकरण प्रदर्शित नहीं हैं। गणेश की आरम्भिक मूर्तियां द्विभुजी ही प्रदर्शित की गई हैं।

गणेश की स्थानक प्रकार की मूर्तियों में उन्हें द्विभंग मुद्रा खड़े दिखाया गया है। अलंकरण की दृष्टि से यह मूर्ति भी सामान्य कोटि की है। गणेश के सूर्पफणाकार कान एवं गजदन्त मूर्ति के मुख्य आकर्षण हैं। यह मूर्ति भी द्विभुजी है। गणेश का बायां हाथ कमर पर है तथा दूसरे हाथ में परशु का अंकन किया गया है। (चित्र सं. 41)

बटेश्वर मंदिर समूह से गणेश की नृत्य मुद्रा की मूर्तियां सर्वाधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं। जो कि आकार एवं अलंकरण की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। भूतेश्वर मन्दिर की गाह्य भित्ती पर अंकित गणेश को लम्बोदर रूपा में दर्शाया गया है। यहां अष्टभुजी गणेश का अंकन किया गया है। उनके कान सूर्पफणाकार हैं। गणेश के हाथों में मोदक, परशु, अंकुश, धनुष का अंकन किया गया है। उनका एक दायां हाथ नृत्यरत मुद्रा में है जबकि एक बायां हाथ कट्यावलम्बित है। गणेश के पैर नृत्य मुद्रा में हैं। यज्ञोपवीत का अंकन भी उनके बायें कंधे के ऊपर किया गया है। गणेश को इस मूर्ति में लम्बोदर के रूप में प्रदर्शित किया गया है। उनके पैरों में सुन्दर अलंकृत कड़े देखे जा सकते हैं। (चित्र सं. 42)

गणेश की एक अन्य नृत्यरत प्रतिमा षटभुजी रूप में प्राप्त हुई है। बटेश्वर से प्राप्त मूर्ति गणेश के 'क्षिप्र-गणेश' रूप को प्रस्तुत करती है। इसमें गणेश को एकदन्त रूप में दर्शाया गया है। उनके हाथों में परशु, स्वदन्त, मोदक, रत्नकुम्भ का अंकन किया गया है। गणेश के साथ उनके वाहन मूषक का भी सुन्दर अंकन किया गया है। गणेश को इस मूर्ति में विभिन्न आभूषणों के साथ दर्शाया गया है। शरीर के ऊपरी भाग में कोई वस्त्र नहीं है, जबकि कमर पर मेखला दर्शाते हुए अधोवस्त्र सहित मुक्तादम और उरुदम का अंकन किया गया है। (चित्र सं. 43)

उपरोक्त मूर्तियों के अतिरिक्त गणेश की नृत्यरत चतुर्भुजी मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं, जो कि आकार एवं अलंकरण की दृष्टि से आरम्भिक काल की ही प्रतीत होती हैं। इन प्रतिमाओं में उनके साथ वाहन मूषक का अंकन भी प्राप्त होता है। इसके साथ ही गणेश के हाथों में मोदक एवं परशु का अंकन सर्वत्र प्राप्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्तिकेय -

हिन्दू देव परिवार में स्कन्द - कार्तिकेय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। परवर्ती ग्रन्थों में शिव और पार्वती के पुत्र कार्तिकेय को एक महान सेनानायक तथा युद्ध के देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस देवता को कुमार, स्कन्द, कार्तिकेय, महेशान आदि नामों से अभिहित किया गया है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार वैदिक युग की जीवन विधि या साहित्य से अनेक प्रतीक कालान्तर में भारतीय संस्कृति में अपनाये गये। उनके अनुसार देवसेना का पति, अग्नि का पुत्र और गंगा का पुत्र विराट प्राण या जीवन तत्त्व का प्रतीक है और इसी की संज्ञा सकन्द है । किन्तु स्वतन्त्र रूप से स्कन्द का नामोल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् और अथर्ववेद के परिशिष्ट भाग में हमें प्राप्त होता है। इसके स्वरूप के विभिन्न पक्षों का स्पष्ट ज्ञान महाभारत से पहले नहीं हो पाता है। महाभारत में इसे अग्नि का पुत्र, एक युद्ध के देवता के रूप में तथा देवताओं के सेनापति के रूप में वर्णित किया गया है। महाभारत के अनुसार उसे छः ऋषियों की पत्नियों का पुत्र होने का सौभाग्य मिला था, अपनी छः माताओं से स्तनपान करने के लिए उनके छः मुखों की कल्पना की गई और इस कारण उन्हें षडानन कहा गया। रामायण में भी इन्हें अग्नि तथा गंगा का पुत्र स्वीकार किया गया है। रामायण और महाभारत में इनके स्कन्द, कुमार, कार्तिकेय, गुहा आदि नामों का उल्लेख होने के साथ ही साथ इनके नामोल्लेख के अनेक कारणों पर भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।[70] उन्हें हाथ में शक्ति लिये हुए एक योद्धा के रूप में वर्णित किया गया है।

वाराहमिहिर की वृहत्संहिता[71] में स्कन्द कार्तिकेय स्वरूप का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ में कार्तिकेय को मयूरासीन, हाथ में शक्ति धारण किये हुए एक युवक कुमार के रूप में वर्णित किया गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कार्तिकेय प्रतिमा लक्षण का विस्तृत विवेचन है, जिससे उनके स्वरूप के विभिन्न पक्षों का पूर्ण स्पष्टीकरण हो जाता है। इस ग्रन्थ के अनुसार उनके छः मुख तथा चार हाथ हैं, उनका वस्त्र लाल तथा मयूर पर आसीन होते हैं। उनके दाहिने हाथों में कुक्कुट और घण्टा तथा बाँए हाथों में विजयध्वज (पताका) और शक्ति होती है। इस ग्रन्थ में कार्तिकेय के तीन रूपों स्कन्द, कुमार और गुहा को भी कार्तिकेय के सदृश ही बताया गया है, किन्तु उन्हें षडानन और मयूरासीन रूप में वर्णित नहीं किया गया है।[72] मत्स्यपुराण' में कार्तिकेय प्रतिमा लक्षण के अन्तर्गत उन्हें मध्यकालीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की प्रभा के सदृश देदीप्यमान, कमल सदृश वर्णवाले एक सुकोमल कुमार के रूप में, दण्डधारी, मयूरासीन बतलाया गया है। उन्हें द्विभुजी, चतुर्भुजी और द्वादशभुजी रूप में दिखाया जाना चाहिए। द्वादश भुजी प्रतिमा की स्थापना नगर में, चतुर्भुज की खर्वट में और द्विभुज प्रतिमा की स्थापना ग्रामों में होनी चाहिए।

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन कलाकेन्द्रों से कार्तिकेय की अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - स्थानक एवं आसन। स्थानक प्रकार की मूर्ति में कार्तिकेय को द्विभंग मुद्रा में दिखाया गया है। उनके मस्तक पर त्रिशिख प्रकार की केश सज्जा की गई है। कानों में बड़े आकार के गोलाकार कुण्डल धारण किये गये हैं। यह मूर्ति चतुर्भुजी है। उनके हाथ में त्रिशूल, खेटक का अंकन किया गया है। कार्तिकेय के साथ उनके वाहन मयूर का अंकन भी दृष्टव्य है। यह प्रतिमा सम्भवतः आरम्भिक काल की है, जिस कारण इस पर अत्यन्त सादा अलंकरण किया गया है। (चित्र सं. 44)

कार्तिकेय की आसनस्थ मूर्तियों में उन्हें मयूर के ऊपर आसीन दिखाया गया है। आरम्भिक काल की एक द्विभुजी कार्तिकेय प्रतिमा में वे मयूर के ऊपर अर्धपर्यंकासन में विराजमान हैं। उनके मस्तक पर त्रिशिख प्रकार की केश सज्जा की गई है। कानों में कुण्डल , गले में माला का अंकन भी किया गया है। वे अपने दायें हाथ से मयूर को भोजन खिला रहे हैं, तथा बायें हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए हैं। अलंकरणों की दृष्टि से यह प्रतिमा अत्यन्त ही साधारण है।

बटेश्वर मन्दिर समूह से कार्तिकेय की आसनस्थ चतुर्भुजी प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई हैं। जो कि यहां अंकित प्रतिमाओं में सबसे उच्च कोटि की हैं। (चित्र सं. 45) इन प्रतिमाओं में भी कार्तिकेय मस्तक पर त्रिशिख प्रकार का केशविन्यास प्रदर्शित किया गया है। उनके एक हाथ में शक्ति है तथा दूसरे हाथ से वे मयूर को खिला रहे हैं। खण्डित होने के कारण शेष दो हाथों में उपस्थित आयुध अस्पष्ट हैं। उनके कानों में बड़े आकार के कुण्डल, गले में ग्रैवेयक एवं मालाएं अंकित हैं। भुजाओं में भुजबन्द सहित कड़े पहने गये हैं। इसके साथ ही पैरों में भी मोटे कड़े दर्शाए गये हैं। वे अपने वाहन मयूर पर अर्धपर्यंकासन स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आसीन हैं। अन्य चतुभुर्जजी प्रकार की मूर्तियों में भी सामान्यतः इसी प्रकार का अलंकरण यहां पर प्राप्त होता है।

नवग्रह –

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन कलाकेन्द्रों बटेश्वर एवं नरेसर से नवग्रह फलक भी प्राप्त हाते हैं। जो कि मंदिरों के ललाटबिम्ब पर अंकित हैं। ललाटबिम्ब पर एक ओर नवग्रहों का अंकन किया गया है तथा दूसरी ओर सप्तमातृकाओं का अंकन किया गया है। आकार की दृष्टि से नवग्रहों की मूर्तियों अत्यन्त छोटे आकार की हैं, जिस कारण उन पर किया गया अलंकरण विशिष्टता को प्राप्त नहीं कर पाया है। नवग्रहों के आरम्भ में सूर्य का अंकन किया गया है जबकि अन्त में राहु एवं केतु का अलंकरण प्राप्त होता है। वस्त्राभूषणों की पहचान करना इन फलक प्रतिमाओं में संभव नहीं है। (चित्र सं. 46) नवग्रहों का अंकन फलक में दो प्रकार से किया गया है- आसन एवं स्थानक। स्थानक प्रकार की मूर्तियों में सूर्य एवं राहु के अतिरिक्त सभी ग्रहों को द्विभंग मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। वहीं आसन प्रकार की मूर्तियों में सूर्य को उत्कट्यासन में बैठे दोनों हाथों में कमल धारण किए दिखाया गया है।

नवग्रहों में से सूर्य की स्वतंत्र मूर्तियां मुरैना के बटेश्वर मन्दिर समूह में अंकित की गई हैं। इन मूर्तियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम- स्थानक प्रकार की मूर्तियां एवं द्वितीय - आसन मुद्रा की मूर्तियां। सूर्य की स्थानक मूर्ति में उन्हें द्विभुजी रूप में प्रदर्शित किया गया है। उनके दोनों हाथों में कमल पुष्प का सुन्दर अंकन किया गया है। सूर्य के मस्तक पर किरीट मुकुट शोभायमान है। उनके कानों बड़े आकार के चक्र कुण्डल अंकित किये गये हैं, गले में ग्रैवेयक तथा वनमाला का अंकन भी किया गया है। अलंकरण एवं आकार की दृष्टि से यह मूर्ति आरम्भिक प्रतिहार कालीन कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। (चित्र सं. 47)

सूर्य की आसनस्थ मूर्ति भी प्रतिहार कालीन आरम्भिक कला का उदाहरण प्रस्तुत करती है। सूर्य उत्कुट्कासन में बैठे हुए प्रदर्शित हैं। उनका स्वरूप द्विभुजी है, दोनों हाथों में कमल पुष्पों का अंकन किया गया है। उनके मस्तक पर अलंकृत किरीट मुकुट दृष्टव्य है साथ ही गले में हार, कानों में कुण्डल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा हाथों में कड़े प्रदर्शित किये गये हैं। सूर्य के सम्पूर्ण शरीर पर वस्त्रों का अलंकरण इस मूर्ति में किया गया है। (चित्र सं. 48)

बटेश्वर से ही प्राप्त सूर्य की दूसरी आसनस्थ प्रतिमा में भी उन्हें द्विभुजी रूप में अंकित किया गया है। सूर्य के साथ उनके चरणों के पास महाश्वेता का अंकन भी मिलता है। सूर्य के दोनों हाथों में कमल पुष्पों का अंकन किया गया है। उनके मस्तक पर सुन्दर अलंकृत किरीट मुकुट है तथा गले में ग्रैवेयक, हाल एवं मालाओं का अंकन किया गया है। सूर्य सम्पूर्ण वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। (चित्र सं. 49)

दिक्पाल-

मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन कला केन्द्रों में से बटेश्वर में ही अष्टदिक्पालों का अंकन मिलता है। ध्यातव्य है कि यहां के मन्दिर अत्यधिक खण्डित अवस्था में थे अतः किसी भी एक मन्दिर पर दिशावार दिक्पालों का अंकन विरल ही है। यद्यपि भूतेश्वर मन्दिर में अष्टदिक्पालो में से कुबेर, इन्द्र, अग्नि, यम, की प्रतिमाएं अंकित हैं। इसके अतिरिक्त दिक्पालों की अनेक स्वतंत्र प्रतिमाएं भी बटेश्वर मन्दिर समूह में प्राप्त होती हैं। भूतेश्वर मन्दिर से प्राप्त पूर्व दिशा के स्वामी इन्द्र की प्रतिमा चतुर्भुजी है। इस मूर्ति का मुख भाग खण्डित है। इन्द्र का एक हाथ वरद मुद्रा में है तथा दूसरा हाथ कट्यावलम्बित है। संभवतः खण्डित भुजा में वज्र का अंकन किया गया था। इन्द्र से साथ उनका वाहन ऐरावत हाथी भी अंकित किया गया है। इन्द्र के कानों में कुण्डल, गले में हार तथा हाथों में भुजबन्द तथा वलय का अंकन किया गया है। (चित्र सं. 50) एक अन्य आरम्भिक काल की मूर्ति में इन्द्र को हाथी के साथ द्विभुजी रूप में अंकित किया गया है। उनका एक हाथ कट्यवालम्बित है तथा दूसरा हाथ अभय मुद्रा में है। इन्द्र के मस्तक पर किरीट मुकुट का अंकन भी दृष्टव्य है। दक्षिण पूर्व दिशा के स्वामी अग्नि की तीन प्रतिमाएं बटेश्वर मंदिर समूह से प्राप्त हुई हैं। इन्द्र की आरम्भिक प्रतिमाओं में उन्हें द्विभुजी दर्शाया गया है।

अग्नि की पहचान स्वरूप उनके आभामण्डल के रूप में अग्निज्वालाओं का अंकन किया गया है। अग्नि के साथ उनके वाहन मेष का अंकन भी प्राप्त होता है। भूतेश्वर मन्दिर की अग्नि प्रतिमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलंकरणों की दृष्टि से उत्तम है। यह प्रतिमा चतुर्भुजी है। अग्नि के मस्तक पर जटाजूट का अंकन किया गया है। गले में हार एवं बायें कंधे पर यज्ञोपवीत का अंकन भी किया गया है।

अग्नि के साथ उनके वाहन मेष का अंकन भी इस मूर्ति में किया गया है। अग्नि के हाथों में श्रुवा एवं कमण्डल स्पष्ट है, एक हाथ वरद मुद्रा में अंकित किया गया है। अग्नि के शरीर को इस मूर्ति में स्थूलकाय बनाया गया है। (चित्र सं. 51)

दक्षिण दिशा के स्वामी यम का अंकन भी भूतेश्वर मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर प्राप्त हुआ है। यहां यम का चतुर्भुजी रूप अंकित किया गया है। यम का बायां अग्रभाग जंघा पर स्थित है। जबकि दायें अग्र हाथ में दण्ड धारण किये हुए हैं। पश्च दोनों हाथों के खण्डित हो जाने के कारण इनके आयुधों की पहचान करना दुष्कर है। उनके साथ वाहन भैंसे का अंकन भी किया गया है। (चित्र सं. 52) यम की चतुर्भुजी मूर्ति के साथ-साथ बटेश्वर में आरम्भिक प्रतिहार कालीन द्विभुजी मूर्ति भी प्राप्त हुई है। यह अलंकरण की दृष्टि से अत्यन्त साधारण है। द्विभंग मुद्रा में स्थानक यम के दायें हाथ में दण्ड का अंकन किया गया है जबकि उनका बायां हाथ उनकी जंघा पर स्थित है। यम के पैरों के समीप ही उनका वाहन भैंसा अंकित है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार का अलंकरण इस प्रकार की मूर्तियों पर दृष्टव्य नहीं है।

नैऋति को दक्षिण-पश्चिम दिशा का स्वामी माना जाता है। मुरैना के बटेश्वर मंदिर समूह से एक मूर्ति नैऋति की प्राप्त हुई है, जो कि प्रतिहारकालीन कला के आरम्भिक चरण की है। इस मूर्ति में नैऋति को उनके वाहन 'नर' के साथ अंकित किया गया है। मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्उल हाथों में भुजबन्दर अंकित हैं। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के विशेष अलंकरण इस मूर्ति में दृष्टव्य नहीं है।

पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण की एक सुन्दर चतुर्भुजी मूर्ति बटेश्वर से प्राप्त हुई है। उक्त मूर्ति में वे अपने वाहन मकर के साथ स्थानक अवस्था में प्रदर्शित हैं। उनके हाथों में पाश, कमण्डल का सुन्दर अंकन किया गया है। वरुण का एक हाथ वरद मुद्रा में प्रदर्शित है। वस्त्राभूषणों की दृष्टि से भी यह मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। वरुण के मस्तक पर किरीट मुकुट का अंकन किया गया है। उनके कानों बड़े आकार के पत्रकुण्डल अंकित हैं। गले में चैड़ा ग्रैवेयक अंकित है। हाथों में भुजबन्द एवं कलाइयों में कंकंण का अंकन भी प्राप्त होता है। (चित्र सं. 53)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर पश्चिम दिशा का स्वामी वायु को माना जाता है। बटेश्वर मन्दिर समूह से दिक्पाल वायु की दो मूर्तियों की प्राप्ति हुई है। दोनों ही मूर्तियों में वायु को द्विभुजी रूप में स्थानक प्रदर्शित किया गया है। उनके मस्तक पर जटाएं, कानों में कुण्डल, गले में हार, मेखला एवं हाथों में कंकणों का अंकन किया गया है। उनके साथ वाहन हिरण का भी सुन्दर अंकन प्राप्त होता है। मूर्ति में वायु की प्रमुख विशेषता अपने वस्त्र के कोनों को अपने हाथों से पकड़े रहना भी दर्शाया गया है। (चित्र सं. 54)

उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर हैं। कुबेर को ग्रन्थों में अलकापुरी के राजा एवं धनपति कहकर भी सम्बोधित किया गया है। मुरैना जनपद के प्रतिहार कालीन कलाकेन्द्रों से कुबेर की कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। जिनमें से अधिकांश मूर्तियां आरम्भिक काल की हैं। भूतेश्वर मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर अंकित कुबेर को स्थानक रूपे उनके वाहन नकुलक के साथ अंकित किया गया है। कुबेर का चतुर्भुजी रूप ही बटेश्वर के मन्दिरों में अंकित किया गया है। कुबेर के अग्र हाथों में से एक हाथ वरद मुद्रा में है, दूसरे में नकुलक है। पश्च हाथों में चषक तथा रत्नपात्र का अंकन किया गया है। कुबेर का शरीर स्थूलकाल एवं भारीभरकम बनाया गया है। (चित्र सं. 55)

उत्तरपूर्व दिशा का स्वामी ईशान को माना जाता है। ईशान को शिव का ही स्वरूप माना गया है। मुरैना के बटेश्वर से प्राप्त ईशान की मूर्ति द्विभुजी है। उनके मस्तक पर जटाजूट का अंकन किया गया है। उनके बायें हाथ में त्रिशूल तथा दायां हाथ वरद मुद्रा में अंकित है। कानों में कुण्डल, गले में हार, मेखला तथा कंकण एवं भुजबंदों के साथ ईशान देवता को सुसज्जित किया गया है। उनके पैरों के समीप ही वाहन वृषभ का अंकन भी गतिमान अवस्था में किया गया है। (चित्र सं. 56)

गंगा-यमुना

गुप्तकालीन मन्दिर स्थापत्य कला में द्वार शाखाओं पर गंगा एवं यमुना देवियों का अंकन किया जाने लगा था। इसके पश्चात् निर्मित हुए लगभग सभी मन्दिरों की द्वारशाखाओं पर गंगा-यमुना का अंकन प्राप्त होता है। प्रतिहार कालीन कला में में भी गंगा-यमुना का अंकन मन्दिरों की द्वार शाखाओं पर किया गया है। बटेश्वर, नरेसर एवं चांचुल के मन्दिरों की द्वार शाखाएं गंगा-यमुना के अलंकरण से सुसज्जित हैं। दोनों ही नदियों के जल में स्नान के महत्व का वर्णन पुराणों एवं विभिन्न साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों में प्राप्त होता है। संभवतः इनकी पवित्रता के गुण को ध्यान में रखते हुए गंगा-यमुना की मूर्तियों का अंकन मन्दिरों की द्वारशाखाओं पर किया जाने लगा था। गंगा-यमुना को विभिन्न वस्त्रालंकरणों के साथ सुसज्जित अवस्था में हाथों में घट लिए अपने वाहनों क्रमशः मकर एवं कूर्म के साथ चित्रित किया गया है। प्रतिहार कालीन आरिम्भक मन्दिरों में देवियों को अकेले ही अपने वाहनों के साथ प्रदर्शित किया गया है। जबकि बटेश्वर एवं नरेसर के तृतीय श्रेणी के बड़े मन्दिरों में गंगा-यमुना को उनकी सहचरियों के साथ विशिष्ट वस्त्राभूषणों एवं अलंकरणों के साथ अंकित किया गया है। (चित्र सं. 57)

कहा जा सकता है कि गुर्जर प्रतिहार मूर्तिकला शैली और विषयवस्तु दोनों ही दृष्टियों से गुप्तकालीन मूर्तिकला का परवर्ती विकास दर्शाती है जिसमें गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला परम्परा को काफी सीमा तक जीवित रखा गया है। सन्तुलित अंग-रचना वाली ओसियाँ, कन्नौज, आबनेरी तथा कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में किंचित् ठिगनी किन्तु क्षीण काया सहज और स्वाभाविक शारीरिक चेष्टाओं वाली दिखायी गयी हैं। प्रतिहार मूर्तियों में वस्तुतः नयी स्फूर्ति के साथ मूर्तियों को अभिव्यक्त किया गया है जो कुछ सीमा तक परवर्ती गुप्तकालीन मूर्तियों से सौम्य सहज भाव और अलंकरणों की दृष्टि से अधिक ओजस्वी हैं। मूर्तियों की शरीर रचना में पहले की अपेक्षा चौड़ाई या घनत्व अधिक दिखायी देता है प्रतिहार मूर्तिकला में विशाल आकारवाली मूर्तियाँ नहीं बनीं और इस प्रकार मानवेतर या महाकाय आकृतियों के स्थान पर सामान्य मानवाकार मूर्तियों के माध्यम से देवत्वभाव को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार गुप्तकालीन परम्परा के अनुरूप प्रतिहार कला में भी मानव स्वरूप की प्रधानता रही है जो देव तथा सामान्य मानव आकृतियों दोनों में द्रष्टव्य है।

मन्दिरों के निर्माण की परम्परा के साथ प्रतिहार मूर्तियाँ भी मुख्यतः मन्दिरों के ही विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण की गयीं, जिनमें मूर्तियों के उत्कीर्णन में 8वीं 9वीं शताब्दी ई. तक स्थान का संयोजन विलक्षण है ये मूर्तियाँ मन्दिरों का स्वाभाविक अंग और स्थापत्य योजना में समाहित दिखायी देती हैं। खजुराहो, हलेबिड, बेलूर, कोणार्क और आबू के मध्यकालीन मन्दिरों के समान प्रतिहार मन्दिरों पर मूर्तियाँ बहुत अधिक संख्या में नहीं उकेरी गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार मूर्तिकला में ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध देवमूर्तियों के अतिरिक्त समुद्रमन्थन जैसे पौराणिक दृश्य (चांचुल), अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, प्रवेशद्वार पर गंगा, यमुना, द्वारपाल, विद्याधर, गन्धर्व, नाग या नागिनी (बटेश्वर), प्रेमी युगल (चाँचुल), कीर्तिमुख तथा जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित लौकिक विषयों और ऋषियों की भी आकृतियाँ बनीं। इस प्रकार सम्पूर्ण देव, मानव, पशु और प्रकृति जगत् को प्रतिहार शिल्पी ने विराट् सन्दर्भ में एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है, जो ऋग्वेद के 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' वाक्य के अनुरूप है।

प्रतिहार मूर्तियों में मध्ययुगीन मूर्तियों के समान शून्यता से भरी मुखमुद्रा और कठोर वर्तुल रेखाओं का लेशमात्र भी भाव नहीं है। इनमें गुप्तकालीन मूर्तियों का ओज, मृदुता और निष्कपट सौन्दर्य स्पष्टतः देखा जा सकता है। प्रतिहार शिल्पियों ने गुप्त मूर्तिकला की सामान्य विशेषताओं का पालन किया है जिसके अन्तर्गत स्वाभाविक और मृदु शरीर रचना और विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति में सहजता द्रष्टव्य है। प्रतिहार मूर्तियों में विवरणों, तालमानों और अनुपातों की शुद्धता पर बल दिया गया है। मूर्तियों को विभिन्न मुद्राओं और स्वरूपों में बनाया गया, जिनमें कपोल और ठुड्डी जैसे भागों को पूरी स्पष्टता के साथ दिखाया गया है। प्रतिहार मूर्तियों में मनोहारी शारीरिक रचना एवं अवयवों की आनुपातिक योजना सर्वत्र देखी जा सकती है।

मन्दिर के गर्भगृहों में स्थापित देव-प्रतिमाओं (ध्रुव मूर्तियाँ) की शारीरिक मुद्राओं में स्थिरता का भाव है जबकि मन्दिरों के अधिष्ठान, जंघा तथा अन्य भागों की मूर्तियों में विविध चेष्टाओं के माध्यम से उनकी गतिशीलता दिखायी गयी है। मूर्तियों की शरीर रचना में चौड़ाई में वृद्धि के बाद भी आकृतियाँ युवारूप में ऊर्जा से युक्त हैं। शरीर रचना में लयात्मकता और मृदुता का भाव भी मूर्तियों में स्पष्ट है।

वस्त्राभूषणों के संयत होते हुए भी विभिन्न देव, अप्सरा एवं मानव मूर्तियों में अवसरानुकूल अलंकरणों के प्रति पहले की अपेक्षा रुझान की प्रवृत्ति दिखायी देती है जो क्रमशः बढ़ती गयी। आठवीं नवीं शताब्दी ई० की बटेश्वर, नरेसर और चांचुल की मूर्तियों में वस्त्राभूषण पूरी तरह संयत और सुरुचिपूर्ण है। यहाँ निर्मित मूर्तियों के अलंकरणों में वृद्धि न होने के कारण मूर्तियाँ अधिक आकर्षक और भव्य नहीं है जिस कारण उनमें गुप्त मूर्तियों की सहज सादगी देखी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार मूर्तियों में भावपक्ष की अभिव्यक्ति सशक्त रही है। आवश्यकतानुसार शिल्पियों ने सफलतापूर्वक आकृतियों के मुखों पर करुणा, शान्ति, मृदुता, आध्यात्मिक चिन्तन और ऐन्द्रिकता के भावों को अभिव्यक्त किया है। ग्यारसपुर की सुर-सुन्दरी और जगत की अप्सरा मूर्तियों में श्रृंगार, सौन्दर्य और उल्लास का भाव स्पष्ट है। आकृतियों की आकर्षक शरीर रचना, मुख- मुद्रा, तीखी भंगिमा और वस्त्राभूषणों से विषयसुख या ऐन्द्रिकता का भाव प्रकट हुआ है।

आठवीं शताब्दी ई० तक की मूर्तियों में प्रतिमालक्षण की दृष्टि से बहुत क्लिष्टता या विविधता नहीं दिखायी देती, किन्तु नवीं शताब्दी ई० और उसके बाद की मूर्तियों में क्रमशः प्रतिमालाक्षणिक विवरणों में वृद्धि होती गयी। फलतः शिल्पशास्त्रीय विवरणों के पालन की बाध्यता के कारण रूपकारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नियन्त्रित हुई और मूर्तियों में शनैः-शनैः यान्त्रिकता आने लगी। इन विवरणों में न केवल विभिन्न देवताओं के नवीन स्वरूपों की सर्जना की गयी बल्कि उनके हाथों की संख्या और उनमें दिखाये जाने वाले आयुधों वाहनों तथा परिकर की सहवर्ती या पार्षद आकृतियों की संख्या में भी वृद्धि हुई जिससे शिल्पी धीरे-धीरे इन विवरणों की क्लिष्टता में ही बँधकर रह गया और मूर्तियों की सहजता क्रमशः समाप्त सी होती गयी। स्टेला क्रमरिश के अनुसार मध्यकालीन मूर्तियाँ यन्त्र का कार्य करती हैं क्योंकि उनका उद्देश्य साधक या उपासक के समक्ष देवता का ऐसा शास्त्रसम्मत स्वरूप प्रस्तुत करना था जिसका साक्षात्कार कर वह देवता से तादात्म्य स्थापित कर सके।

गुप्त शैली से प्रभावित होते हुए भी प्रतिहार मूर्तियों की कुछ निजी और क्षेत्रीय विशेषताएँ रही हैं जो आकृतियों के मुख और शरीर रचना के अलंकरणों और लाक्षणिक विवरणों के स्तर पर प्रकट हुई हैं। किंचित् भारीपन और चौड़ाई वाली इन मूर्तियों में शरीर रचना की मृदुता और रेखाओं का तरंगयुक्त प्रवाह एवं सन्तुलित आवयविक अनुपात तथा जीवन्त और भव्य भावों की अभिव्यक्ति प्रशंसनीय और सामान्यतः दुर्लभ है। स्वाभाविक तथा मर्यादित भंगिमाओं वाली ये प्रतिहार मूर्तियाँ पूरी तरह जीवन की लयात्मक गतिशीलता से युक्त हैं।

गणेश की नृत्यमूर्ति में सम्पूर्ण अभिव्यक्ति से उल्लास और नृत्य की लयात्मक गतिशीलता व्यक्त है। भारी-भरकम शरीर वाले गणेश के नृत्य की मुद्रा में सन्तुलन देखते ही बनता है । नृत्य की मुद्रा में उठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए पैर के लय में ही गणेश के शुण्ड का घुमाव भी दिखाया गया है। देवता के चंचल नेत्रों से भी नृत्य की गतिशीलता का भाव व्यक्त हुआ है। ओसियों की मूर्तियों में भी कन्नौज की मूर्तियों की विशेषताएँ विद्यमान हैं।

महिषमर्दिनी की मूर्ति में देवी की संहारक शक्ति और क्रियाशीलता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। प्रतिहार मन्दिरों के प्रवेश द्वारों पर गुप्तकालीन मन्दिरों के समान ही मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मनोज्ञ मूर्तियों का उकेरन भी उल्लेखनीय है।

यहाँ की धार्मिक सामंजस्य का भाव व्यक्त करने वाली विभिन्न मूर्तियों तथा अन्य देव आकृतियों में शरीर रचना किंचित ठिगनी एवं मुख और मुद्रा सहज और स्वाभाविक हैं। यहाँ की त्रिविक्रम मूर्तियों में परवर्ती गुप्तकालीन मूर्तियों की सम्पूर्ण विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। इस स्वरूप में सौम्य स्वरूप वाले देवता की शरीर रचना में मृदुता के साथ मुद्रा में दृढ़ता का भाव भी व्यक्त है जो विष्णु के त्रिविक्रम स्वरूप के अनुरूप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

[1] जे. एन. बनर्जी, द डेव्लपमेंट ऑफ हिन्दू आईकोनोग्राफी, पृ. 465

[2] ऋग्वेद, 6/ 4/ 1, 4/ 12/ 16, 9/ 13/ 3

[3] ऋग्वेद, 7/46/3; 1/114/10; 1/114/1

[4] ऋग्वेद, 1/114/9

[5] ऋग्वेद, 2/33/4

[6] बृजभूषण श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्ति कला, 2015, पृ. 59

[7] आर. जी. भंडारकर, वैष्णविस्म, शैविज़्म एंड रिलीजियस सेक्ट्स, पृ. 132

[8] जे. एन. बनर्जी, थे डेव्लपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ. 455-56

[9] वही, पृ० 117

[10] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, 1914, पृ. 63-64

[11] जे. एन. बनर्जी, थे डेव्लपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ. 461-62

[12] बृजभूषण श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्ति कला, 2015, पृ. 59

[13] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, 1914, पृ. 279

[14] जे. एन. बनर्जी, थे डेव्लपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ. 479

[15] वही, पृ. 464

[16] बृजभूषण श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्ति कला, 2015, पृ. 13

[17] द्विवेदी, एस. के. मधुबाला कुलश्रेष्ठ ग्वालियर, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011, पृ. 401

[18] गुप्ते आर. एस. आइकोनोग्राफी ऑफ हिन्दु बौद्धीष्ठ एण्ड जैना मुम्बई, 1972, पृ. 33,34

[19] गिरीश चन्द्र, सर्वतोभद्र कृष्ण लीला स्तम्भः मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, प्रागु-धारा, अंक-10. पृ. 218

[20] भागवतपुराण, 10/36

[21] गिरीश चन्द्र, सर्वतोभद्र कृष्ण लीला स्तम्भः मीरजापुर, उत्तर प्रदेश, प्रागु-धारा, अंक-10. पृ. 224

[22] स्टुअर्ट पिग्गट, प्री हिस्टोरीक इंडिया, पृ 108-109

[23] वासुदेव शरण अग्रवाल, इंडियन आर्ट, पृ 24

[24] वही, पृ० 25

[25] ई मैके, फर्दर एक्स्केवेशन एट मोहनजोदाड़ो, पृ 337

[26] आर सी मजूमदार, द वैदिक एज, पृ 187

[27] वासुदेव शरण अग्रवाल, इंडियन आर्ट, पृ 24

[28] ऋग्वेद, 5/47/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[29] ऋग्वेद, 1/48/1 सह वामन न उषो व्युच्छा दुहितार्दिव।
सह युग्नेन वृहता विभावरी राया देवि दास्वनि ॥

[30] अथर्ववेद, 8/9/21

[31] वही, 8/9/21

[32] वही, 8/10/11-23

[33] वाजनेयी संहिता, 3/57

[34] तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1/6/10/4-5

[35] तैत्तिरीय आरण्यक, 10/18-10

[36] केनोपनिषद्, 3/25

[37] मुण्डकोपनिषद्, 1/2/4

[38] महाभारत, 4/6, 6/23

[39] हरीपुराण, 1/3

[40] मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 82

[41] द डेवेलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ 503

[42] वृहत्संहिता, अ० 57 मातृगण: कर्तव्यः स्वनामदेवानुरूप कृत चिह्नः । यस्य देवस्य यत्रूपं यथा भूषण वाहनम् ॥

[43] मार्कण्डेयपुराण, 82/12

[44] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 119-28-33 तत्र ब्राह्मी चतुर्वक्त्रा षडभुजा हंससंस्थिता ।
पिङ्गलाभूषणोपेता मृगचर्मेत्तरीयका ॥
वरं सूत्रं स्त्रुवं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात् ।
वामे तु पुस्तकं कुण्डी विभ्रती चाभयप्रदा ॥

[45] मत्स्यपुराण, 249, 11-14 ब्रह्मा कमण्डुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः ।
हंसारूढः क्वचित कार्यैः क्वचिच्च्च कमलासनः ॥
कमण्डलं वामकरे स्त्रुवं हस्ते च दक्षिणे ।
वामे दण्डधरं तद्वत् स्त्रुवश्चापि प्रदर्शयेत ॥

[46] रूपमंडन, 5/63 हंसारूढ़ा प्रकर्त्तव्या साक्षसूत्रं कमण्डलुः ।
स्क्रूवं च पुस्तकं धत्ते उर्ध्वहस्तद्वये शुभा ॥

[47] श्रीतत्त्वनिधि, 43/1-2 तत्र ब्राह्मी चर्तुवक्त्रा षडभुजा हंस संस्थिता ।
पिङ्गाभा भूषणोपेता मृगचर्मोत्तरीयका ॥
वरं सूत्रं स्त्रवं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात् ।
वामे तु पुस्तकं कुण्डी विभ्रती चाभयङ्करम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[48] अंशुमद्भेदागम्, चतुर्वक्त्रा चतुर्वाह संयुक्ता हेमसन्निभा।
दक्षिणेऽभवशूलं च वरदं चाक्षमालिका॥

[49] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 119/56-57 माहेश्वरी वृषभारूढा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना।
शुक्लेन्दु भृज्जटाजूटा शुक्लासर्वसुखप्रदा॥
षडभुजावरदा दक्षे सूत्र डमरूकं तथा।
शूलघण्टाभयं वामे धत्ते महाभुजा॥

[50] श्रीतत्त्वनिधि, 44, 1-2 माहेश्वरी वृषभारूढा पञ्चवक्त्रा त्रिलोचना।
श्वेतवर्णा दशभुजा चन्द्ररेखा विभूषिता॥
खड्ग वज्र त्रिशूलञ्च परशुञ्चाभयंवरम्।
पाशं घण्टा तथा नागमङ्कुशं विभ्रती करैः॥

[51] रूपमंडन, 5/64 माहेश्वरी प्रकर्त्तव्या वृषभासन संस्थिता।
कपालशूलखट्वाङ्ग वरहस्ता चतुर्भुजा॥

[52] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग 1, प्लेट 2, पृ 145-146

[53] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 119/55 वैष्णवी ताक्ष्र्यगा श्यामा षडभुजा वनमालिनी।
वरदा गंदिनी दक्षे विभ्रती चाम्बुजस्त्रजम्॥
शङ्खचक्राभयान्वामे साचेयं विलसद्भुजा।

[54] देवीपुराण, 8, 18-19 सुसिद्धा वैष्णवी कार्या शङ्खचक्रगदाम्बुजा।
वनमाला कृतापीड़ा पीतवस्त्रा सुशोभिता॥

[55] रूपमण्डन, 5, 66 वैष्णवी विष्णु सदृशी गरुडोपरि संस्थिता।
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा॥

[56] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग 1, प्लेट 2, पृ 149

[57] विष्णुपुराण 122, 17 कृष्ण वर्णा तु वाराही सूकरास्या महोदरी।
वरदा दाण्डिनी खड्गं विभ्रतो दक्षिणे सदा॥

[58] रूपमण्डन, 5, 67-68 वाराहीं तु प्रवक्ष्यामि महिषोपरिसंस्थिताम्।
बाराहसदृशी घण्टानादा चामरधारिणी॥
गदाचक्रधरा दानवेन्द्रविघातिनी।
लोकानाञ्च हिताचार्य सर्वव्याधिं विनाशिनी॥

[59] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग 1, प्लेट 2, पृ 150-51

[60] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग 1, प्लेट 2, पृ 147-148
कौमारी रक्तवर्णा स्यात् षड्वक्त्रा सार्कलोचना।
रविबाहुर्मयूरस्था वरदां शक्तिधारिणी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पताकां विभ्रती दण्डं पात्रं बाणं च दक्षिणे ।
वामे चापमधो घण्टा कपालं कुक्कुटं त्वधः ॥
परशु विभ्रती तीक्ष्णं तदधस्त्वमयान्विता ॥

[61] रूपमण्डन, 5, 56 8 कुमाररूपा कौमारी मयूर वाहना ।
रक्त वस्त्रधरा पद्मच्छूलशक्ति गदा धरा ॥

[62] गोपीनाथ राव, एलीमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग 1, प्लेट 2, पृ 147

[63] ऋग्वेद, 2/23/1, गणनां त्वां गणपति हवांमहे

[64] एलिमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, वाल्यूम 1, भाग 1, पृ. 35-66

[65] वृहत्संहिता, 58/58 प्रथमाधिप गजमुखः प्रलम्ब जठरः कुठारधारी स्यात् ।
एकविषाणो विभ्रन्मूलककन्दं सुनीलदलकन्दम् ॥

[66] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 71, 13-16

[67] मत्स्यपुराण, 260, 52-55 विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्रं त्रिलोचनम् ।
लम्बोदरं चतुर्वाहुँ व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥
ध्वस्तकर्णे वृहत्तण्डमेकं दष्ट्रं पृथूदरम्।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं चापरे तथा ॥
मोदकं परशु चैव वामतः परिकल्पयेत ।
वृहत्वाक्षिप्तवदनं पीनस्कन्धांघ्रिपाणिकन् ॥
युक्तं तु ऋद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम् ॥

[68] अग्निपुराण, 50/23-26

[69] रूपमण्डन, 5/15

[70] महाभारत वनपर्व, 232/3-9, 225/16-18, शान्तिपर्व, 122/32, 327/9-11

[71] वृहत्संहिता, 57/41 स्कन्दः कुमाररुपः शक्ति वर्हिकेतुश्च ।

[72] विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3/71/3-6

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

कच्छपघात कालीन मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

कच्छपघात कालीन मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला

धार्मिक मान्यताऐं उसके पौराणिक देवी-देवता, आचार-विचार एवं उसकी नीति परम्पराएँ कला में अभिव्यक्ति पाती हैं। कला देश में धर्म, दर्शन और जीवन की प्राकृतिक परिवेष्टनी की परिधि में रहती हुई उसी देश की विशेषता को लेकर रूपायित और पुष्ट होती हैं। दसवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्य राजपूत शक्ति ने अनेक क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की। इस काल में उत्तर भारत में नागर शैली नामक एक श्रेष्ठ वास्तु शैली का विकास हुआ। इस समय वास्तुकृति के रूप में सबसे अधिक मंदिर निर्मित हुए।

ग्वालियर, दूबकुण्ड व नरवर के कच्छपघात, जेजाकभुक्ति के चंदेल, डाहल के कलचुरी, मालवा के परमार बड़े ही प्रभावशाली और शक्तिशाली राजवंश थे, जो एक-दूसरे के समानान्तर शासन करते रहे। इनमें युद्ध, शांति दोनों ही स्थिति में स्पर्धा होती रही। इस क्षेत्र (मध्य भारत) में अन्य छोटे राजवंश भी शासनरत रहे। ये विभिन्न शक्तियाँ एक-दूसरे से स्पर्धा करते हुए मंदिरों के निर्माण कार्य को भी प्रोत्साहित करती रहीं, जिस कारण यह क्षेत्र मंदिरों से छा गया। जिनमें से कुछ ही मंदिर शेष है।

दसवीं व बारहवीं शताब्दी ई. के मध्य में कच्छपघातों के समानान्तर कलचुरी वंश दक्षिण पूर्वी खण्ड में, चंदेल वंश ने पूर्व भाग में तथा परमार वंश ने पश्चिमी क्षेत्र में कला को प्रोत्साहन दिया। इन्हीं (कच्छपघातों) के समानान्तर इस क्षेत्र के कुछ हिस्सों पर परवर्ती प्रतीहार राजाओं ने शासन किया तथा इनके द्वारा भी कला को प्रोत्साहन मिला। गुप्त व प्रतीहार परम्परा का समान प्रभाव पड़ने के कारण इन मंदिरों या भवनों में तलविन्यास तथा अलंकरण की दृष्टि से समानता दिखाई पड़ती है। इन मंदिरों में गर्भगृह, अंतराल व मंडप सामान्यतः सभी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। चंदेल (लगभग 9वीं-12वीं शता. ई.) धर्म सहिष्णु शासक थे इनके शासनकाल में ब्राह्मण धर्म के शैव, शाक्त, सौर एवं गाणपत्य तथा जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित कला के उदाहरण ज्ञात हैं। इन्होंने अपने राज्य को तालाब, किलों, राजप्रासादों तथा मंदिरों से भर दिया। इनके उदाहरण खजुराहो (खर्जुरवाहक), महोबा (प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महोत्सव नगर), कालिंजर (कालंजर) एवं अजयगढ़ (जयपुर दुर्ग) से ज्ञात है। झांसी जिले के दुधई, चाँदपुर, मदनपुर व देवगढ़ में भी कुछ स्मारक पाए गये हैं, किन्तु इन स्थानों के मंदिर खजुराहो की अपेक्षा निम्न कोटि के है। कृष्ण देव ने मध्य भारत के मध्ययुगीन मंदिरों को क्षेत्रीय शैलियों में विभाजित कर उनका नामकरण क्षेत्र विशेष में शासनरत राजवंश के नाम पर किया। ग्वालियर चंबल संभाग में शासनरत कच्छपघात राजवंश के नाम पर कृष्णदेव ने दसवीं-बारहवीं शता. में निर्मित मंदिर स्थापत्य को "कच्छपघात कला' नाम से अभिहित किया। दसवीं-बारहवीं शता के मध्य निर्मित ये मंदिर नागर शैली के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। रमानाथ मिश्र द्वारा इन्हें परवर्ती गोपाद्रि शैली (दसवीं-तेरहवीं शता. ई.) के अन्तर्गत वर्णित किया गया। कृष्णदेव, रमानाथ मिश्र, माइकल डी. विलिस, कनिंघम आदि विद्वानों के लेख इस कला पर प्रकाश डालने में सहायक है। कच्छपघात कला दो रूपों में विद्यमान है- 1. स्थापत्य 2. मूर्ति शिल्प।

कच्छपघात कालीन मंदिर स्थापत्य कला :

भवन निर्माण से संबंधित कला को स्थापत्य कला या वास्तुकला कहा जाता है। स्थापत्य कला के अन्तर्गत 'मंदिर वास्तु' का अध्ययन किया गया है। कच्छपघात अभिलेखों से ककनमठ मंदिर (सिहोनिया, मुरैना), सास-बहू मंदिर (ग्वालियर दुर्ग, ग्वालियर), जैन मंदिर (दूबकुण्ड, श्योपुर) के अतिरिक्त एक शिव मंदिर (स्मरारि मंदिर) के अस्तित्व की सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मंदिरों को भी कच्छपघात मंदिर के रूप में कृष्णदेव, अहमद अली ने वर्णित किया है, लेकिन कदवाहा एवं उसका समीपवर्ती क्षेत्र परवर्ती प्रतिहारों द्वारा शासित था, जिससे वहाँ के मंदिरों को कच्छपघात मंदिर कहना उचित नहीं जान पड़ता। मुरैना जनपद में कच्छपघात कालीन मंदिर स्थापत्य कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ककनमठ मन्दिर है।

ककनमठ मंदिर-

सिहोनिया, ग्राम मुरैना से 35 किमी. दूर स्थित है। ग्राम सिहोनिया से ककनमठ मंदिर उत्तर की ओर 2 किमी. की दूरी पर निर्मित है। वर्तमान में मंदिर जर्जर अवस्था में है।(चित्र सं 58) कच्छपात शासक महीपाल के लेख में इसके निर्माण का श्रेय कीर्तिराज को दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ककनमठ मंदिर के सम्मुख भाग का रेखा चित्र

पूर्वाभिमुख मंदिर ऊँची जगती पर निर्मित है। जगती की लम्बाई 300 फीट, चौड़ाई 150 फीट व ऊँचाई 12 फीट है। विशाल मंदिर की जगती पर पूर्व दिशा में नंदी मण्डप का निर्माण किया गया। वर्तमान में यह नंदी, मंदिर के समीप स्थापित है। मंदिर में अर्द्ध मण्डप, मुख मण्डप, महामण्डप, अन्तराल एवं गर्भगृह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

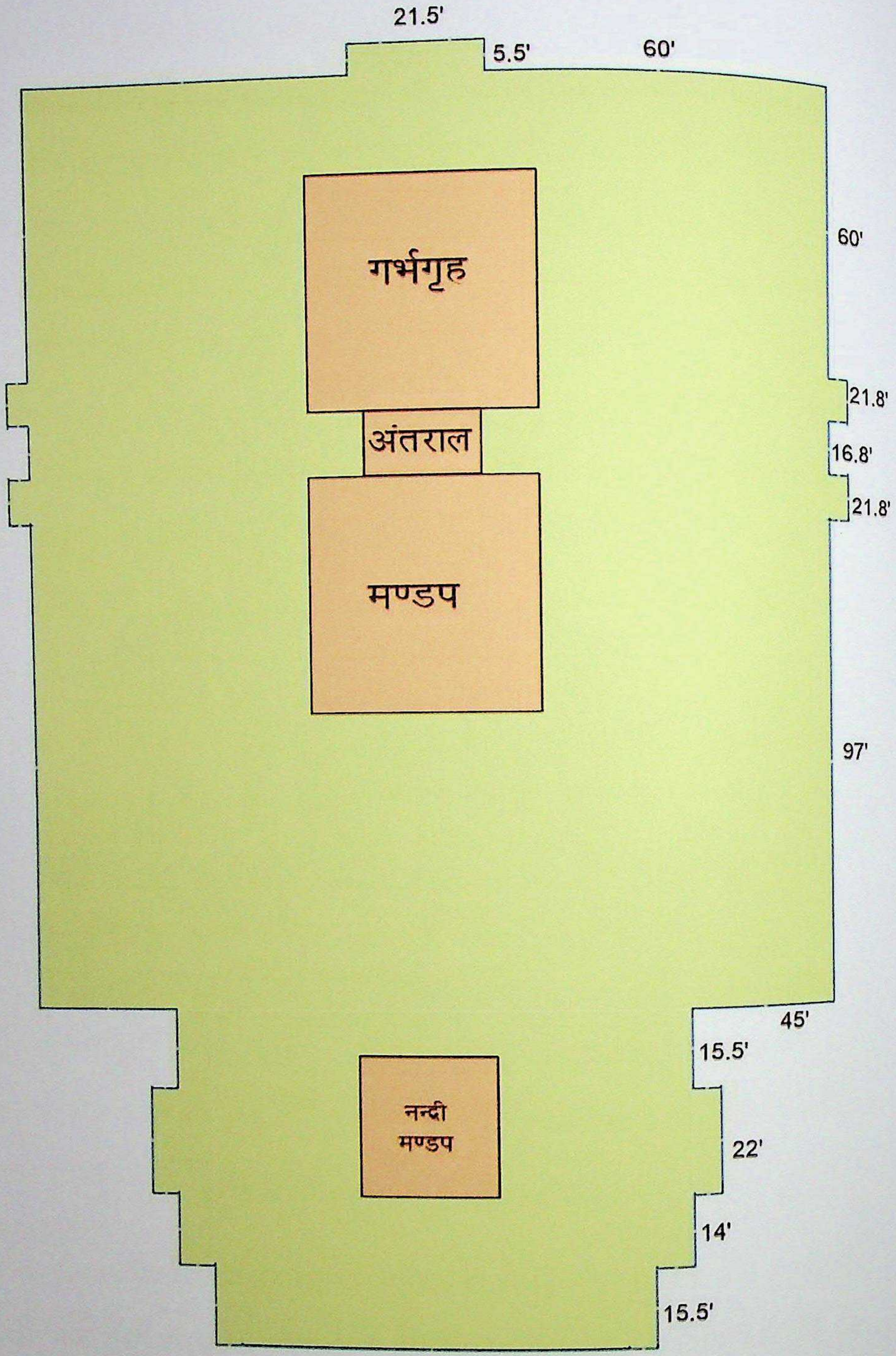

ककनमठ मंदिर के तल विन्यास का रेखा चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

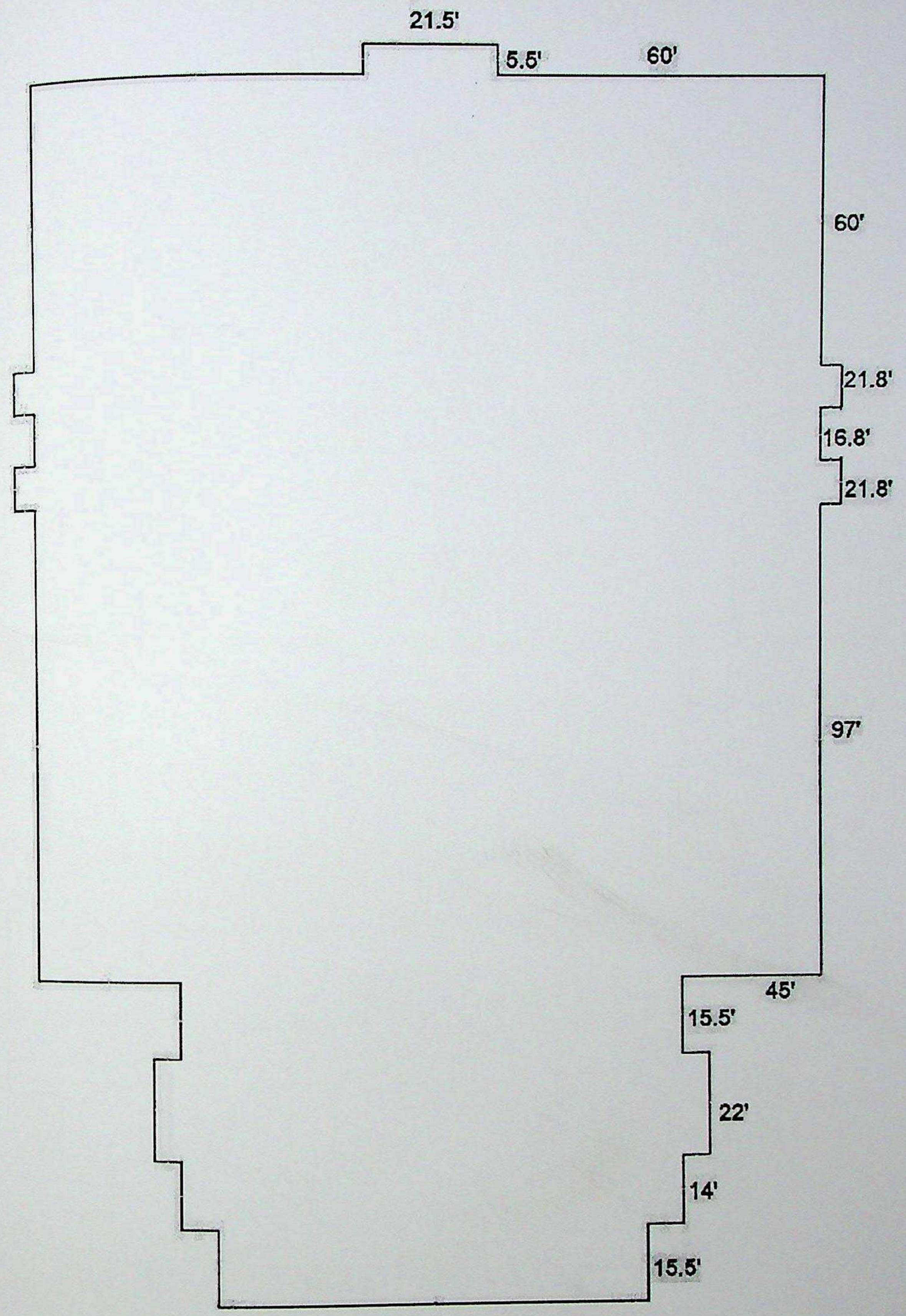

ककनमठ देवालय की जगती का रेखा चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

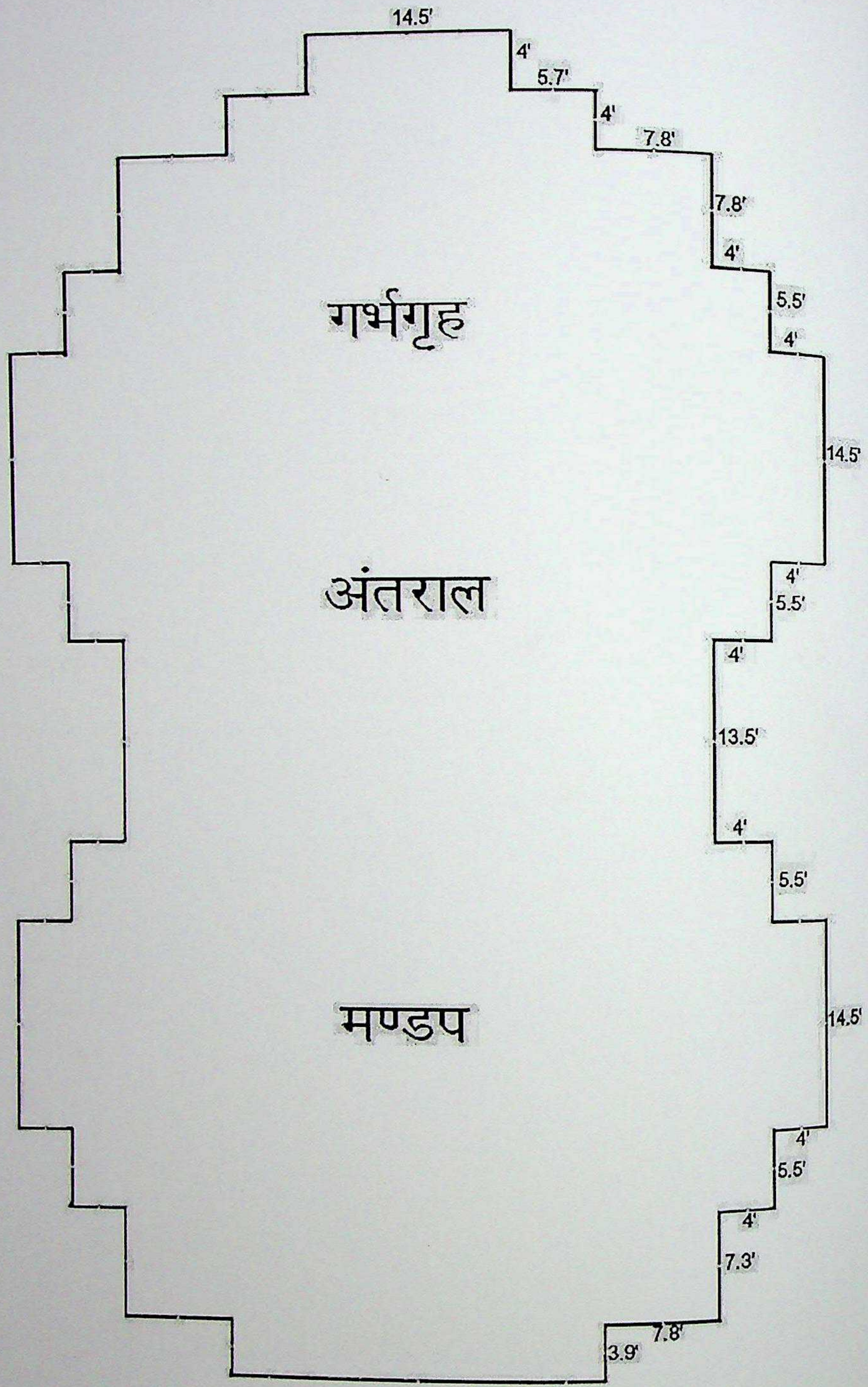

ककनमठ देवालय के तलविन्यास का रेखा चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगती खुर, कुम्भ, कलश, पट्टिका, तालपत्र युक्त अन्तर्पत्र, कपोतिका, बसंतपट्टिका एवं पर्णबंध युक्त है।

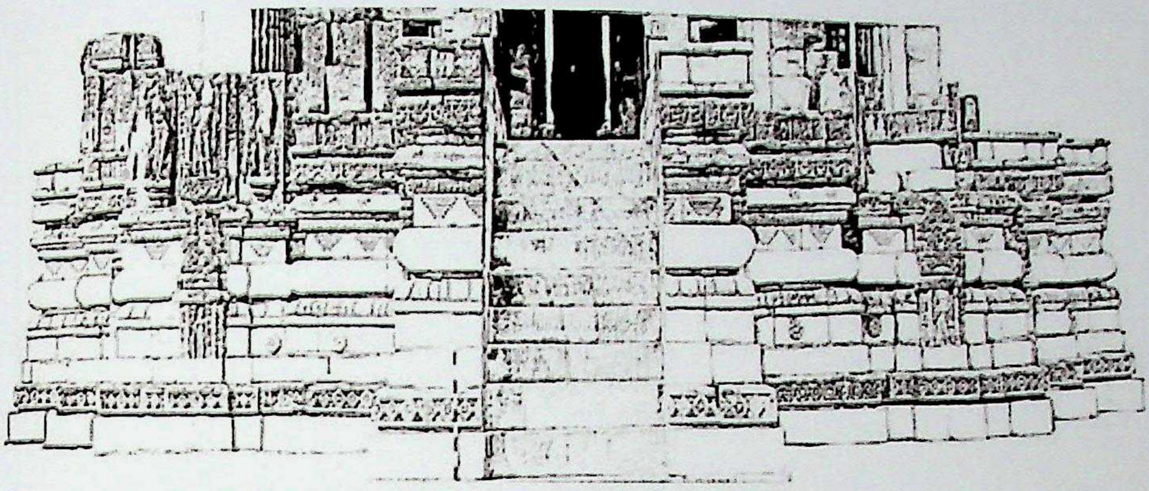

ककनमठ मंदिर के अधिष्ठान का रेखा चित्र

जगती की विशाल रथिकाओं पर गणेश, कार्तिकेय एवं पार्वती का अंकन है। मूल प्रासाद में वेदीबंध पीठ की भांति है। इसे खुर अन्तरपत्र पद्मपत्र युक्त जाड्यकुम्भ, कलश, तालपत्र युक्त अन्तरपत्र, पर्णबंध एवं कपोतिका से अलंकृत किया गया।

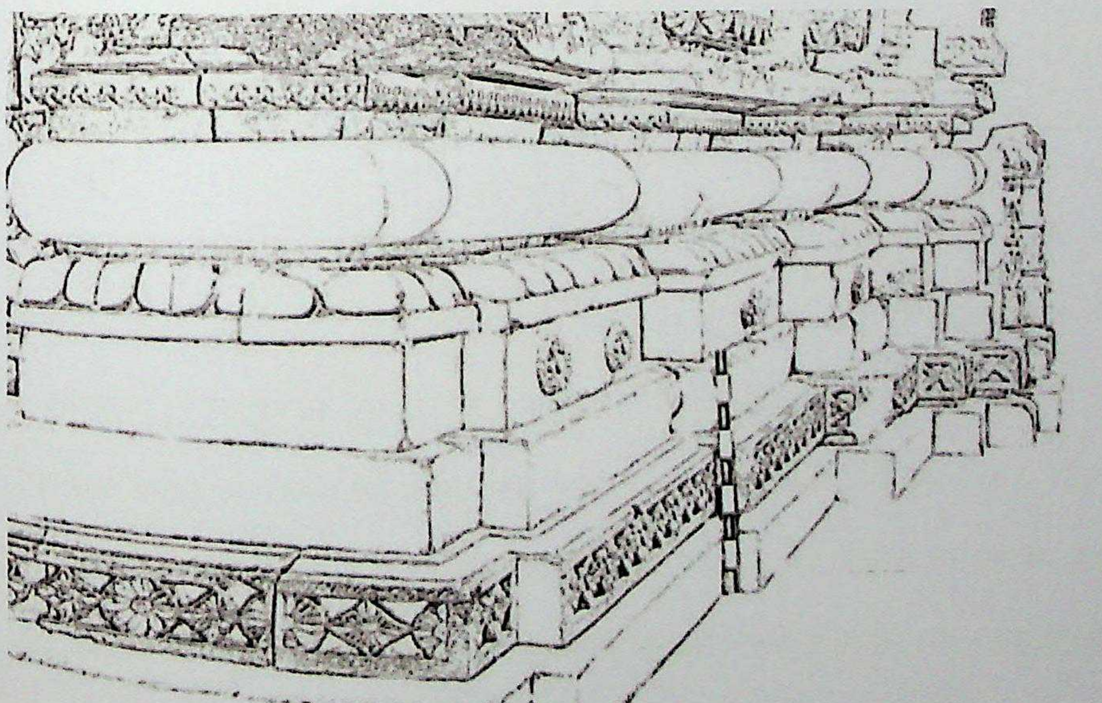

ककनमठ मंदिर के गर्भगृह के वेदीबन्ध का रेखा चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदीबंध में वृत्ताकार स्तम्भिकाओं के ऊपर खुरछाद्य, तुलासंग्रह एवं चैत्योद्गम से आच्छादित रथिकाओं पर देव प्रतिमाओं और अष्टदिक्पालों को स्थान दिया गया है।

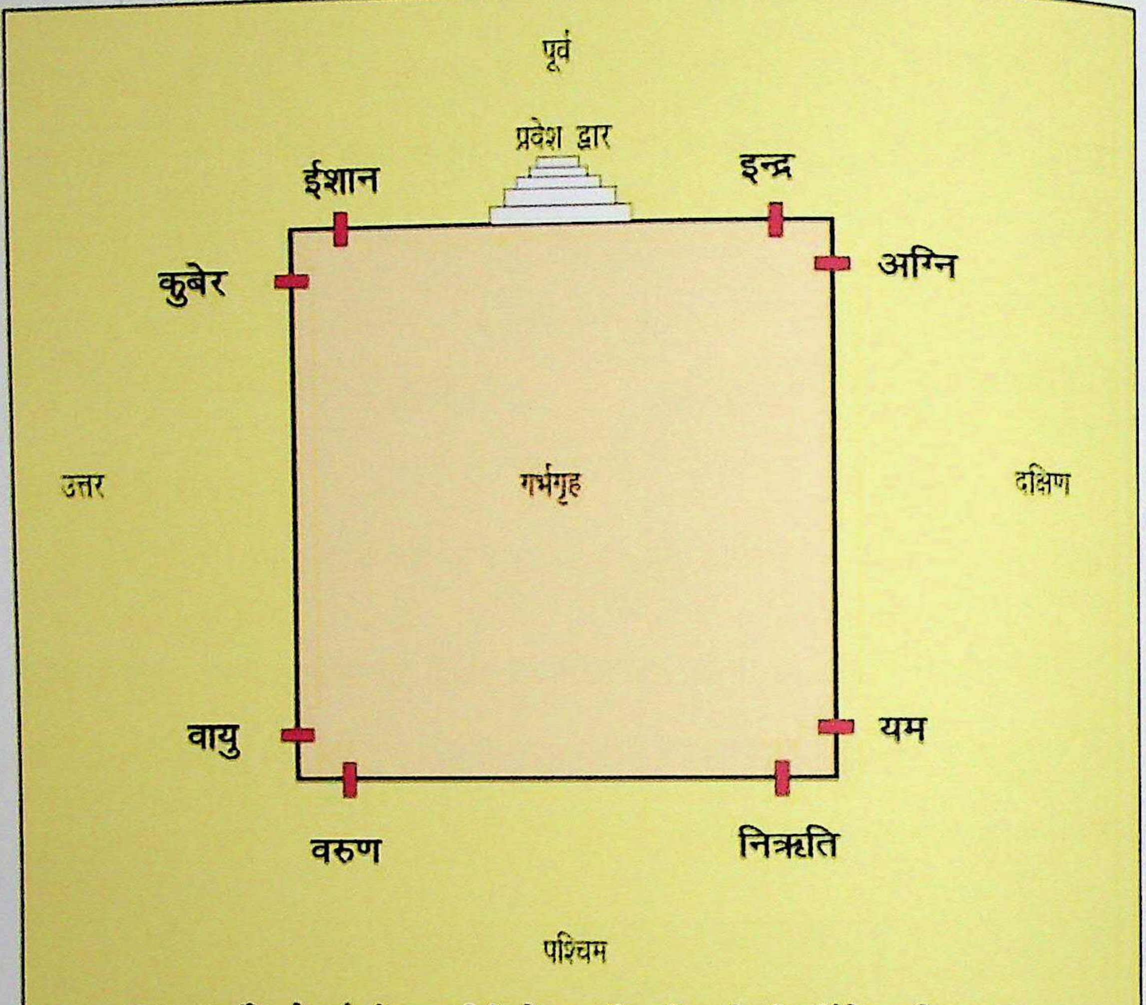

ककनमठ मंदिर के गर्भ की बाह्य भित्तियों पर अंकित दिक्पालों की मूर्तियों का दिशा स्थान

वेदीबंध के ऊपर ग्रासमुख पट्टिका पर राजसेनक एवं वेदिका है। वेदिका स्तम्भिका, घटपल्लव एवं सलिलांतर पत्रवल्ली से तथा निश्चित अंतराल पर रथिकाओं में देव प्रतिमाएँ व अन्य अलंकरण उत्कीर्ण किए गए हैं। वेदिका के ऊपर मण्डप के आसनपट्ट व कक्षासन का निर्माण है। आसनपट्ट के ऊपर भद्रक स्तम्भ का निर्माण किया गया है। धरणी को आश्रय देते मण्डप के स्तम्भ अर्द्धपदम, कीर्तिमुख, घटपल्लव, पट्टिका एवं अलंकृत कोष्ठ से युक्त है। मण्डप के दोनों पार्श्व में तथा सम्मुख मुख चतुष्की एवं भद्र मण्डप जोड़ने से इसका आकार महामण्डप का प्रतीत होता है। यह चारों ओर से खुला है। महामण्डप 50 फीट लम्बा, 50 फीट चौड़ा व 20 फीट ऊँचा है। महामण्डप की छत 44 सुन्दरता से उकेरे गए स्तम्भों पर आधारित है। कुछ स्तम्भ खंडित हैं। मंदिर के पार्श्व में स्थित भद्र मण्डप से मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रासाद साधार (प्रदक्षिणा पथ युक्त) मंदिर हो गया है। प्रदक्षिणा पथ खुला है। यह खजुराहो के मंदिरों की तरह बंद नहीं है। (चित्र सं 59) मूल प्रासाद की वेदीबंध पर निर्मित रथिका पर, ब्रह्म, विष्णु व शिव का अंकन है। अलंकृत पर्ण मध्यबंध ने जंघा भाग को दो भागों में विभक्त कर दिया। निचले भाग में ग्रास मुख पट्टिका से अलंकृत मंचिका पर आद्यूत भद्रक स्तम्भिकाओं के ऊपर अर्द्धरत्न पट्टिका, खुरछाद्य, रथिका बिम्ब एवं घंटिका से आच्छादित अंधकोष्ठ भाँति की रथिकाएं हैं। स्तम्भिका के भीतरी भाग में द्वार शाखा तथा बाह्य पार्श्व में देवांगनाएं उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह का वितान उत्क्षिप्त प्रकार का है। वर्तमान में गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। गर्भगृह की लम्बाई 13 फीट चौड़ाई 13 फीट तथा ऊँचाई 20 फीट है। उत्तरंग पर ललाटबिम्ब में शिव का अंकन है। अन्तराल 5 फीट लम्बा है। गर्भगृह की द्वार शाखा की अधिकांश मूर्तियां खण्डित हो चुकी हैं। पूर्वाभिमुख गर्भगृह के उत्तर में जल निकासी की व्यवस्था है।

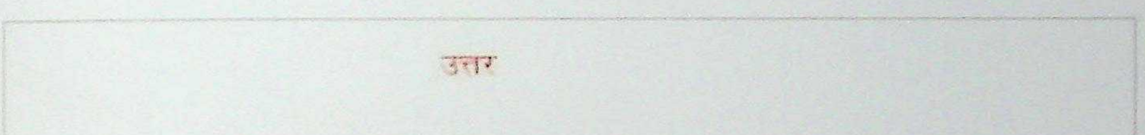

ककनमठ मन्दिर की गर्भगृह स्थापत्य संरचना

रथिकाओं एवं सलिलांतर में देवांकन, सुर-सुंदरी, व्याल, अष्टदिक्पाल एवं सप्त मातृकाओं का अंकन है। जंघा के ऊपरी भाग में अदभुत लौकिक अंकन हुआ है। वरण्डिका में कर्णिका, पट्टिका, कपोतिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं पर्णबंध का अंकन हुआ है। शिखर पर मूर्तियों के दर्शन होते हैं। वर्तमान में शिखर जर्जर अवस्था में विद्यमान है। इसकी ऊँचाई लगभग 100 फीट थी। शिखर का अधिकांश भाग गिर चुका है। मंदिर के शिखर के आधे भाग तक रथिकाओं का तथा शीर्ष पर आमलसारक एवं आमलक तथा कलश स्थापित था। द्वितलीय महामण्डप के शीर्ष पर स्थित आमलक से मंदिर का शिखर खजुराहों के कंदरिया महादेव मंदिर के बढ़ते शिखर की भाँति रहा होगा। मंदिर की पूर्व दिशा जगती के सोपानों के पास ही नन्दी मण्डप भी अस्तित्व में था, जो कि अब खण्डित हो चुका है। नन्दी मण्डप का मात्र आधार और दो स्तम्भों पर रखा ललाटबिम्ब ही अब जगती पर स्थापित है।

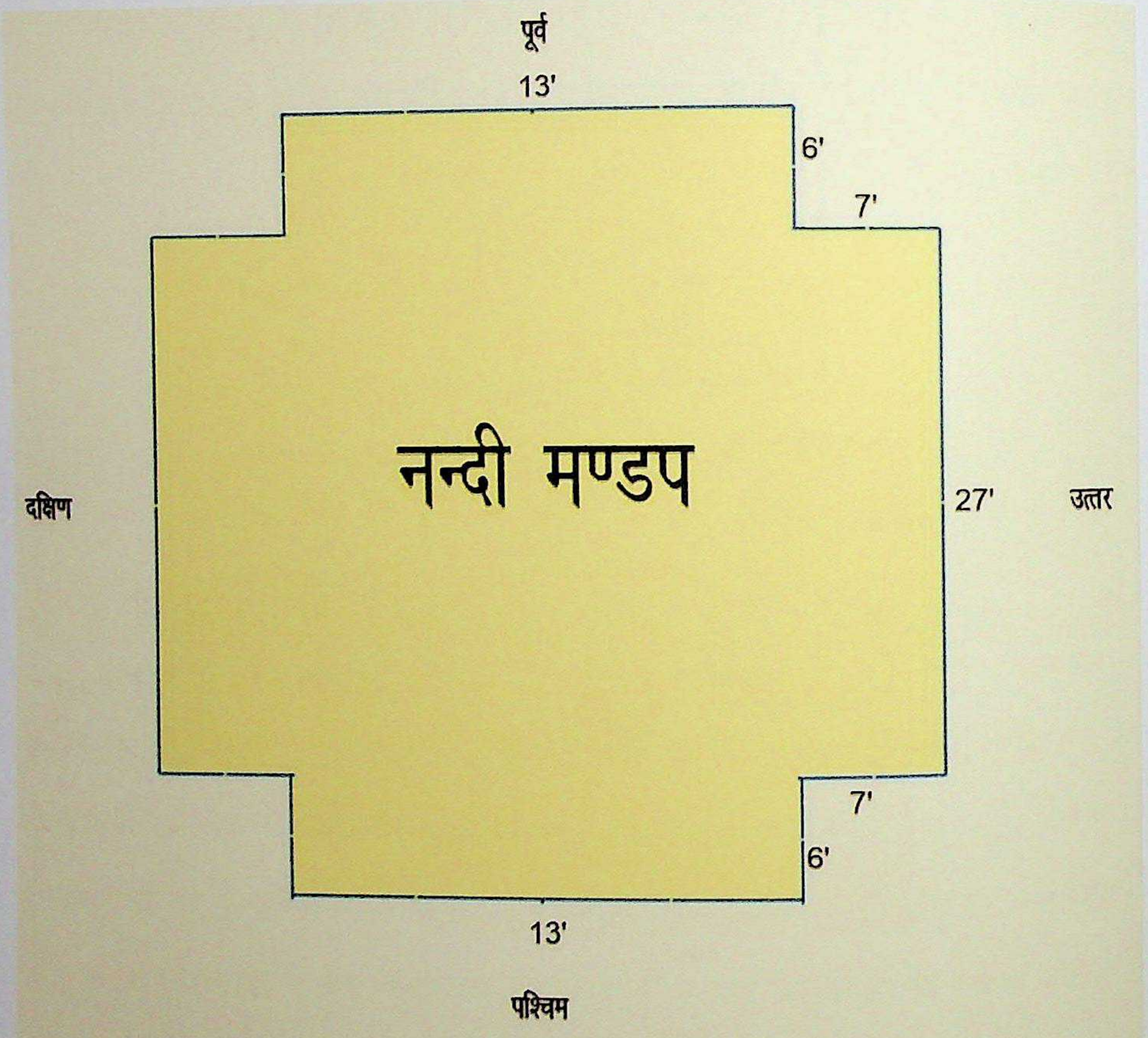

ककनमठ मन्दिर के नन्दी मण्डप का रेखा चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दी मण्डप का तल विन्यास एवं शेष बचे स्तम्भों को देखकर यह सहज आंकलन किया जा सकता है कि यह मन्दिर के अन्य भागों के समान ही विशाल, सुसज्जित एवं भव्य रहा होगा। जिसके मध्य में नन्दी की विशाल मूर्ति भी स्थापित की गई होगी। जो कि अब प्राप्त नहीं है।

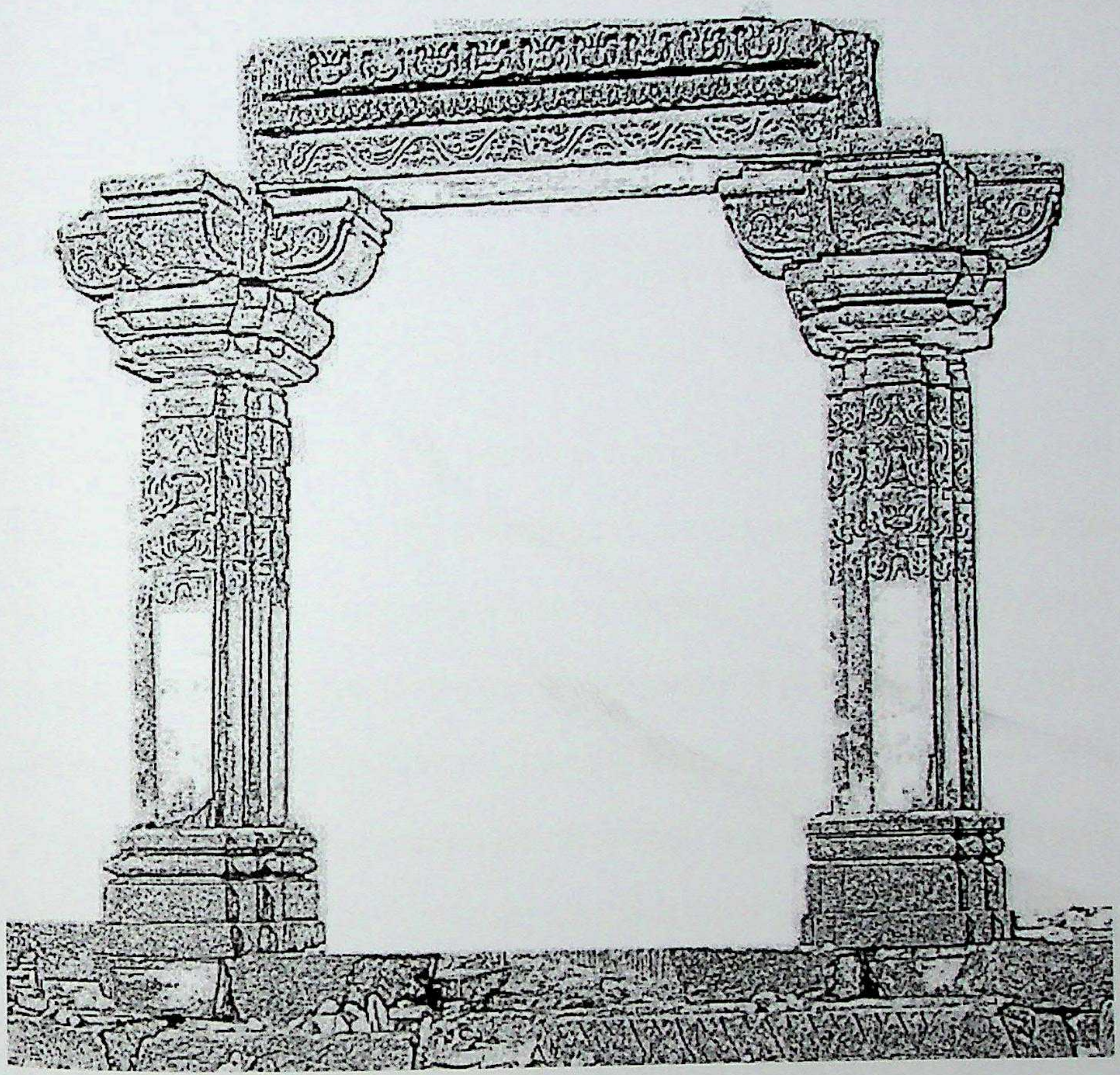

ककनमठ मंदिर के नंदी मंडप के स्तंभों का रेखा चित्र

ककनमठ मंदिर से ज्ञात तिथि 1044 वि.सं. से यह अनुमान लगाया जा सकता हैं कि मंदिर सन् 987 ई. के पूर्व बनना प्रारंभ हो चुका था। ककनमठ मंदिर के अतिरिक्त सिहोनिया (मुरैना) में अनेक वैष्णव, शैव, शाक्त एवं जैन मंदिर थे किन्तु अब ये लुप्त हो गए हैं। जो शेष हैं वे जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं। ककनमठ मंदिर के उत्तर में एक छोटे के अस्तित्व की सूचना मिलती है। (चित्र सं 60) ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पार्श्व की मंडपिका पर एक 'गण' प्रतिमा है। यहाँ पर एक अभिलेख में 'गण' अंकित है जिससे विदित होता है कि कलाकारों के समुदाय के हस्ताक्षर स्वरूप, इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

ककनमठ की मूर्तिकला –

मूर्ति प्रतिमा एवं प्रतिकृति वस्तुत एक ही है प्रतिमा विज्ञान के लिए अंग्रेजी में आइकोनोग्राफी (Iconography) शब्द प्रयुक्त होता है 'आइकन (icon) शब्द का तात्पर्य उस देवता अथवा ऋषि के रूप से है, जो कला में चित्रित किया जाता है।" इसके माध्यम से देवताओं अथवा महान व्यक्तियों के मूर्तरूप अथवा प्रतिरूप को प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिमा के लिए अर्चा, तनु विग्रह, रूप आदि अनेक अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुए, जो प्रतिमा के रूप, आकार प्रकार आदि का स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

सातवी से तेरहवी शता ई. के बीच जिस कला का विकास हुआ उसमें राष्ट्रीय स्वरूप के स्थान पर क्षेत्रीय विशेषताओं की प्रधानता थी। कला प्रारंभ से ही धर्म से जुड़ी रही जिसमें धार्मिक भावनाओं एवं आस्था की मूर्त अभिव्यक्ति हुई, और उसके विकास में समाज के सभी वर्गों का पूरा सहयोग और संरक्षण मिलता रहा। मध्यकाल में ओसिया, दुबकुण्ड खजुराहो, आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) जालोर तथा अन्य कई कलाकेन्द्रों से ज्ञात लेखों से स्पष्ट है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से मध्यकाल की कला को राजवंशों के आधार पर विभाजित किया गया विषयवस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से ओसियां की प्रतिहार मूर्तियों का परवर्ती विकास खजुराहो की चंदेल मूर्तियों और कच्छपघात मूर्तियों में देखा जा सकता है। पल्लवकालीन मूर्तियों का परवर्ती विकास तजीर एवं अन्य चोल कलाकेन्द्रों की मूर्तियों में और उड़ीसा में भुवनेश्वर की प्रारंभिक मूर्तियों पर गुप्त और पाल शैली के प्रभाव के साथ प्रारंभ में चालुक्य और बाद में होयसल मूर्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। कहीं-कहीं तो पूरे मूर्ति स्वरूप को ही एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उसी रूप में ग्रहण किया गया। विषयवस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया मध्यकाल में भी दिखाई देती है।

ब्राह्मण धर्म में पांच प्रमुख सम्प्रदाय वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य और सौर से संबंधित मंदिर और मूर्तियां मिलते है। मध्यकाल में गूर्तियां प्रस्तर, धातु और मिट्टी पर बनी इनमें पत्थर या प्रस्तर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूर्तियां अधिक बनीं मध्यकाल में मूर्तियां मुख्यतः मंदिरों के बाह्य और आन्तरिक तथा शिखर आदि पर निर्मित की गयी। ये मूर्तियां मंदिरों का स्वाभाविक अंग प्रतीत होती हैं। मंदिरों के विभिन्न भागों पर मूर्तियों की संख्या में क्रमशः वृद्धि हुई जो भीड़ का भाव व्यक्त करने लगी। खजुराहो के कंदरिया महादेव मंदिर पर 900 से अधिक स्वतंत्र आदमकद मूर्तियां बनी हैं। मध्यकालीन मूर्तिकला क्षेत्रीय कला थी जिसमें विभिन्न तत्वों का विकास हुआ। इसमे देव, मानव, पशु, वनस्पति जगत, ज्यामितीय अलंकरण एवं विभिन्न मांगलिक प्रतीकों (स्वस्तिक, श्रीवत्स) तथा महाकाव्य, पुराण एवं अन्य कथा प्रसंगों के बहुआयामी विराट स्वरूप को दर्शाया गया। मूर्तियों में शारीरिक आकर्षण और तकनीकी विशेषता देखी जा सकती है। मुरैना जनपद की कच्छपघात कालीन मूर्तिकला को निम्नलिखित मूर्तियों के माध्यम से समझाा जा सकता है-

ब्रह्मा –

ककनमठ मंदिर, सिहोनिया की दीवार के उत्तरंग पर ब्रह्मा का अंकन किया गया है। इसी मंदिर में ब्रह्मा का कई बार अकन किया गया है। मंदिर की उत्तरी जधा पर ललितासीन ब्रह्मा प्रदर्शित ब्रह्मा को जटामुकुट, कुण्डल, केयूर वलय और नुपूर धारण किए प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त सुहानिया से कई अन्य ब्रह्मा की मूर्तियाँ ज्ञात है। इस मूर्ति में ब्रह्मा को चतुर्भुजी रूप में दर्शाया गया है। उनके अग्र बायें हाथ में कमण्डलु है जबकि दायें हाथ में अक्षमाला का अंकन किया गया है। पश्च बायें हाथ में पुस्तक एवं दायें हाथ में श्रुवा का अंकन किया गया है। ब्रह्मा अपने वाहन हंस पर अर्धपर्यंकासन स्थिति में विराजमान हैं। (चित्र सं 59)

ब्रह्मा की एक अन्य मूर्ति ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर पश्चिम दिशा में प्राप्त होती है। इस मूर्ति में वे स्थानक मुद्रा में हैं। चतुर्भुजी ब्रह्मा के वाम अग्र हाथ में कमण्डलु एवं दायां हाथ वरद मुद्रा में है। जबकि पश्च वाम हस्त में पुस्तक तथा दाहिने हाथ में श्रुवा है। ब्रह्मा का मुख खण्डित है। उनके कानों में चक्रकुण्डल हैं। गले में ग्रैवेयक का सुन्दर अंकन किया गया है। ग्रैवेयक के साथ हार भी दर्शनीय हैं। वे बायें कंधे पर त्रिसूत्रीय यज्ञोपवीत का भी धारण किये हुए हैं। हाथों में भुजबन्द के साथ केयूर एवं कंकण का भी सुन्दर अंकन इस मूर्ति में किया गया है। कमर में मेखला एवं उरुदम तथा मुक्तादम का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुसज्जित है। समस्त शुभ चिन्हों एवं वस्त्रालंकरणों के साथ यह मूर्ति अत्यन्त आकर्षक है। (चित्र सं 60)

ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर ही ब्रह्मा की एक और मूर्ति का अंकन प्राप्त हुआ है। इस मूर्ति में ब्रह्मा त्रिमुखी एवं चतुर्भुजी रूप में अंकित हैं। ब्रह्मा के साथ उनका वाहन हंस भी इस मूर्ति में दृष्टव्य है। समस्त वस्त्रालंकरणों एवं शुभ चिन्हों के साथ ब्रह्मा स्थानक द्विभंग मुद्रा में अंकित हैं।(चित्र सं 61)

विष्णु –

वैदिक देवताओं में प्रमुख सृष्टि के पालक विष्णु का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। विष्णु पुराण में विष्णु की मूर्ति का वर्णन है कि मुख प्रसन्न हो जिसे देखते ही उपासक का मन प्रफुल्लित हो जाये। कमल के सदृश सुन्दर नेत्र, भरे हुए कपोल, चौड़ा माथा, कान कुंडलों से विभूषित, शंख के समान सुग्रीवा, श्री वत्सांकित वक्षस्थल त्रिवली युक्त उदर, आठ या चार भुजाएँ, स्वस्थ जघायें, मनोहरचरणारविन्द शुभ पीताम्बर किरीट, हार, केयूर रत्नमयी मुद्रिका, हाथों में धनुष, शंख, गदा, खड्ग, चक्र, अक्षमाला तथा वरद और अभय मुद्राओं से युक्त विष्णु का दिव्य रूप हो।

ककनमठ मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर उत्तर दिशा में गरुड़ासीन विष्णु की सुन्दर मूर्ति का अंकन किया गया है। विष्णु के मस्तक पर किरीट मुकुट शोभायमान है। उनके कानों में चक्रकुण्डल हैं। गले में ग्रैवेयक सहित कण्टी एवं हार भी अलंकृत हैं। हाथों में भुजबन्द, कंकण, कमर में मेखला, मुक्तादम एवं उरुदम का अंकन भी किया गया है। चतुर्भुजी विष्णु के अग्र बायें हाथ में शंख है तथा दायां हाथ वरद मुद्रा में है। पश्च बायें हाथ में चक्र तथा दायें हाथ में गदा का अंकन किया गया है। गरुड़ को भी मानवीय रूप में अंकित किया गया है। वे भी समस्त आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत दिखाये गये हैं। सुंदर प्रभाण्डल व परिकर में महिला परिचारक और व्याल आकृतियाँ अंकित है। (चित्र सं 62)

ककनमठ मन्दिर की जगती पर विष्णु की एक अन्य मूर्ति प्राप्त हुई है। इसमें वे स्थानक द्विभंग मुद्रा में चतुर्भुजी रूप में दृष्टव्य हैं। विष्णु के मस्तक पर किरीट मुकुट है, कानों में चक्रकुण्डल, गले में कण्ठी, ग्रैवेयक एवं हार का अंकन भी किया गया है। बायें कंधे से नीचे उतरता हुआ त्रिसूत्रीय यज्ञोपवीत,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटिबंध, कटिवस्त्र, उरुदम, मुक्तादम के साथ-साथ पैरों में नूपुर का अंकन भी किया गया है। विष्णु के अग्र बायें आथ में शंख का अतीव सुन्दर अंकन प्राप्त हाता है, उनका अग्र दायां हाथ अभय मुद्रा में है। पिछले बायें हाथ में चक्र तथा दायें हाथ में गदा का सुन्दर अंकन किया गया है। उनके पैरों के पास वनमाला का अंकन भी दृष्टव्य है।(चित्र सं 63)

गूजरी महल संग्रहालय में सुहानिया (सिहोनिया) से प्राप्त विश्वरूप विष्णु प्रतिमा संरक्षित है। विष्णु दस हाथों के साथ त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित है, जिसमें दाहिने हाथ खण्डित है तथा शेष बायें हाथों में ढाल, सूप, शंख और पद्म प्रदर्शित हैं। मूर्ति के जलकरणों में किरीटमुकुट, पुष्प, चक्र-कुण्डल, दो लड़ियों का हार, यज्ञोपवीत - कटिमेखला, कटिवस्त्र, केयूर व्याल, नुपूर और वैजंतीमाला सुशोभित है. साथ ही कुछ परिचारकों का भी अंकन हुआ है परिकर में विष्णु कई रूपों में प्रदर्शित है। पद्मपीठ को तीन परिचारकों द्वारा पकड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा शास्त्रीय लक्षणों से इस मूर्ति की तिथि 11वीं शता. ई. निर्धारित है।

विष्णु के दशावतरों में राम की सीता सहित एक प्रतिमा सिहोनिया से ज्ञात है, जो गूजरी महल संग्रहालय में संरक्षित है। दो हाथों में राम धनुष-बाण लिए, अभय मुद्रा मे तथा बाया हाथ सीता का आलिंगन करते हुए प्रदर्शित हैं। राम के अन्य अलंकरणों में जटाजूट, हार, यज्ञोपवीत, केयूर वलय, कटिमेखला और अधोवस्त्र शामिल है सीता के बायें हाथ में कमल तथा दाहिना हाथ आलिंगन मुद्रा में हैं। मूर्ति की तिथि 11वीं शता ई है। विष्णु की 11वीं शता की छः (पं.स. 31, 20, 10, 7, 117. 24) प्रतिमाएँ सिहोनिया से प्राप्त है जो वर्तमान में आर्कियालाजिकल म्यूजियम: ग्वालियर दुर्ग में संरक्षित है।

शिव

शिव सृष्टि के संहारकर्ता के रूप में विख्यात है। शिव की उपासना दो रूपों में होती रही है उनकी प्रतिमाएँ दो रूपों में मिलती हैं। 1. लिंग प्रतिमा 2. रूप अथवा मानवी प्रतिमा।

शिव के लिंग रूप के दो सुन्दर उदाहरण ककनमठ मन्दिर से प्राप्त होते हैं। प्रथम वह शिवलिंग है जो कि मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित है। (चित्र सं. 64) शिवलिंग की ऊंचाई 1.9 फीट है, जो कि वृत्ताकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनि पर स्थित है। योनिपीठ की चौड़ाई 2.5 फीट है जबकि लम्बाई 3.6 फीट है। द्वितीय शिवलिंग ककनमठ मन्दिर के पास ही स्थित भग्न मन्दिर के अवशेषों पर स्थित है। यह शिवलिंग प्रतिमाशास्त्रीय विधानों के अनुरूप निर्मित है। जिसमें भद्रपीठ, भोगपीठ एवं ब्रह्म पीठ का निर्माण किया गया है। वर्गाकार योनि के मध्यभाग में स्थित है। शिवलिंग की ऊंचाई लगभग 1 फीट है।(चित्र सं. 65)

शोधार्थी के मतानुसार यही शिवलिंग संभवतः ककनमठ मन्दिर का मुख्य शिवलिंग था, जिसे मूर्तिभंजक आक्रांन्ताओं द्वारा मन्दिर के गर्भगृह से बाहर कर दिया गया था। क्योंकि कच्छपघात कालीन मूर्ति एवं स्थापत्य कला के दृष्किोण से जहां सभी मूर्तियों का निर्माण प्रतिमाशास्त्रीय विधानों के आधार पर किया गया है, वहां पर शिवलिंग की रचना अत्यन्त सामान्य एवं आधुनिक काल की भांति नहीं की जा सकती थी। प्रथम शिवलिंग जो कि वर्तमान समय में मन्दिर के गर्भगृह में स्थित है, वह गर्भगृह के मध्य भाग में नहीं है। निकासी हेतु गर्भगृह की उत्तरी दिशा में स्थित मकरमुख से शिवलिंग की दूरी 3.5 फीट है, जिससे सिद्ध होता है कि यह शिवलिंग परवर्ती काल में मन्दिर में पूजा-अर्चना हेतु स्थापित किया गया है।

ककनमठ मन्दिर की जंघाओं एवं जगती पर शिव के अनेक मानवविग्रह के दर्शन होते हैं। मन्दिर की जंघा पर स्थित आसनस्थ शिव की सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है। शिव चतुर्भुजी रूप में अपने वाहन वृषभ के ऊपर आसीन हैं। उनके मस्तक पर जटामुकुट का सुन्दर अंकन किया गया है। कानों में कुण्डल, गले में ग्रैवेयक, हार, यज्ञोपवीत का अंकन किया गया है। उनके हाथां में भुजबन्द, कंकण, कटि पर कटिबंध एवं कटिवस्त्रों का अंकन भी दृष्टव्य है। शिव का अग्र बायां हाथ खण्डित है, दायां अग्र हाथ वरद मुद्रा में है। पश्च दायें हाथ में संभवतः त्रिशूल का अंकन किया गया था, जो कि खण्डित अवस्था में है, जबकि बायें हाथ में नाग का सुन्दर अंकन किया गया है। सम्पूर्ण मूर्ति परिकर में स्त्री परिचारिकाओं के साथ व्याल मूर्तियों का सुन्दर अंकन प्राप्त होता है। (चित्र सं. 66)

शिव की आसनस्थ मूर्ति के अतिरिक्त स्थानक प्रकार की मूर्ति भी ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर निर्मित की गई है।(चित्र सं. 67) चतुर्भुजी शिव द्विभंग मुद्रा में अपने वाहन वृषभ के साथ खड़े हैं। उक्त मूर्ति में शिव का मुख भाग खण्डित है। उनके अग्र बायें हाथ में कमण्डलु है, दायां अग्र हाथ अभय मुद्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में है। जबकि पश्च बायें हाथ में नाग एवं दायें हाथ में त्रिशूल का सुन्दर अंकन किया गया है। शिव के गले में ग्रैवेयक, हार एवं यज्ञोपवित का भी सुन्दर अंकन प्राप्त होता है। कटिबन्ध, उरुदम, मुक्तादम एवं नूपुर के साथ वे सभी वस्त्रालंकरणों के साथ सुसज्जित हैं। शिव का वाहन नन्दी उनकी ओर बड़ी ही मनमोहक स्थित में निहारता हुआ दर्शाया गया है। सम्पूर्ण मूर्ति परिकर में स्त्री परिचारिकाओं के साथ-साथ व्याल एवं मकरमुख मूर्तियां उत्कीर्ण की गई हैं।

पार्वती-परिणय/कल्याण सुन्दर मूर्ति -

कल्याण सुन्दर मूर्ति शिव-पार्वती के विवाह प्रसंग से सम्बन्धित है जिसे वस्तुतः पार्वती-परिणय मूर्ति या कल्याणसुन्दर मूर्ति कहा जाता है। कल्याणसुन्दर नाम किसी भी प्रतिमा शास्त्रीय ग्रन्थ अथवा शिव से सम्बन्धित किसी अन्य साहित्य में प्राप्त नहीं होता है। संभवतः यह नाम शिव और पार्वती के क्रमशः कल्याण और सुन्दर भाव को व्यक्त करता है। वर के रूप में शिव कल्याण के सूचक हैं और वधू के रूप में पार्वती सौन्दर्य का मूर्तिमान रूप हैं।[1]

ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण पार्वती-परिणय की प्रतिमा में शिव और पार्वती को वर-वधू के रूप में अंकित किया गया है। (चित्र सं. 68) दोनों के मध्य में हवन करते हुए ब्रह्मा का अंकन भी दृष्टव्य है। उक्त मूर्ति में शिव को चतुर्भुजी रूप में दिखाया गया है। शिव अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा कर पार्वती का पाणिग्रहण कर हरे हैं। जबकि बायां अग्र हाथ पार्वती को आलिंगन करते हुए उनके स्तन भाग पर है। पश्च भाग के हाथ में त्रिशूल स्पष्टतः दृष्टव्य है। शिव एवं पार्वती दोनों को ही भव्य वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित दिखाया गया है।

देवी मूर्तियाँ

पार्वती / माहेश्वरी

ककनमठ मन्दिर मूलतः शिव मन्दिर है, जिसका निर्माण शिव की आराधना हेतु किया गया था। संभवतः इसी कारण इस मन्दिर के विभिन्न भागों पर शिव एवं पार्वती का अधिक मिलता है। तथापि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव की शक्ति स्वरूपा पार्वती जिन्हें माहेश्वरी के नाम से सम्बोधित किया जाता है, का अंकन सर्वाधिक संख्या में मन्दिर के अधिष्ठान पर प्राप्त होता है।

पार्वती रूप की अनेक मूर्तियां ककनमठ मन्दिर से प्राप्त हुई है। कल्याण सुन्दर मूर्ति में अंकित पार्वती का विवरण पूर्व में दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त अधिष्ठान पर स्थित पार्वती को चतुर्भुजी रूप में अंकित किया गया है। (चित्र सं. 69) उनके अग्र बायें हाथ में कमण्डलु है जबकि दायां हाथ खण्डित अवस्था में है। पश्च दोनों हाथों में सनाल पुष्प का अंकन किया गया है। पार्वती के कानों में कुण्डल, गले में हार, स्तनसूत्र, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटि भाग में मेखला, मुक्तादम, उरुदम एवं पैरों में नूपुर का अतीव सुन्दर अंकन किया गया है। पार्वती के पैरों के समीप ही सिंह एवं वृषभ का अंकन भी किया गया है। जो कि मुख ऊपर की ओर करके पार्वती को निहार रहे हैं।

शिव की शक्तिस्वरूपा माहेश्वरी रूप की तीन मूर्तियां ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर प्राप्त होती हैं। (चित्र सं. 70,71,72) तीनों ही मूर्तियों में माहेश्वरी को चतुर्भुजी रूप में द्विभंग मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। उनके हाथों में शक्ति का द्योतक त्रिशूल अंकित है। दो मूर्तियों में वाहन वृषभ का अंकन प्राप्त नहीं होता है। इन मूर्तियों में देवी के हाथों में त्रिशूल के अतिरिक्त कमण्डलु, अभय एवं वरद मुद्रा तथा पुष्प का अंकन प्राप्त होता है। वृषभ सहित महोश्वरी की मूर्ति में पश्च दायें हाथ में पुष्प के स्थान पर नाग का अंकन किया गया है।

दुर्गा -

देवी के दुर्गा रूप की एक मूर्ति ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। देवी अपने वाहन सिंह के साथ द्विभंग मुद्रा में अंकित हैं। मूर्ति का मुखभाग खण्डित है। देवी का अग्र दायां हाथ वरद मुद्रा में है, बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये हुए हैं। जबकि पश्च वाम हस्त में देवी दर्पण धारण किये हुए हैं और दायें हाथ में खट्वांग है, जो कि खण्डित अवस्था में है। देवी के गले में ग्रैवेयक, हार एवं स्तनसूत्र का सुन्दर अंकन किया गयाहै। हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटि भाग में मेखला सहित कटिवस्त्रों का अंकन भी किया गया है। देवी के पैरों में नूपुर धारण किये हुए हैं। (चित्र सं 73)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी दुर्गा की दो अन्य मूर्तियां भी ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण हैं। खड्गधारिणी देवी दुर्गा (चित्र सं. 74) स्थानक द्विभंग मुद्रा में अपने वाहन सिंह के साथ अंकित हैं। चतुर्भुजी दुगा का अग्र दायां हाथ अभय मुद्रा में है, बायें अग्र हाथ में कमण्डलु है। जबकि पश्च बायें हाथ में खेटक एवं दायें हाथ में खड्ग का अंकन आयुध के रूप में किया गया है। देवी दुर्गा समस्त वस्त्रालंकरणों के साथ प्रदर्शित की गई हैं।

धनुषधारिणी दुर्गा (चित्र सं. 75) की मूर्ति भी मन्दिर के अधिष्ठान पर निर्मित है। द्विभंग स्थानक मुद्रा की यह मूर्ति चतुर्भुजी रूप में अंकित की गई है। देवी का दायां अग्र हाथ वरद मुद्रा में है जबकि बायां अग्र हाथ धुनष धारण किये हुए है। देवी पश्च दायें हाथ में बाण है जबकि पश्च बायां हाथ खण्डित अवस्था में है जिससे इसमें उपस्थित आयुध की पहचान नहीं की जा सकी है। देवी को इस मूर्ति में भी समस्ता वस्त्रालंकरणों के साथ सुसज्जित रूप में उत्कीर्ण किया गया है।

लक्ष्मी

सुहानिया या सिहोनिया स्थित ककनमठ मंदिर में एक स्थानक, चतुर्भुजी गजलक्ष्मी की प्रतिमा प्रदर्शित है। देवी के ऊपर के दो हाथों में सनाल पद्म तथा नीचे के एक हाथ में कमण्डल है तथा दूसरा वरद मुद्रा में प्रदर्शित है। देवी लक्ष्मी के कानों में सुन्दर कुण्डल, गले में हार, स्तनसूत्र, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटि भाग में मेखला, कटिवस्त्र, उरुदम, मुक्तादम एवं पैरों में नूपुर का अंकन किया गया है। यहाँ देवी सुन्दर अधोवस्त्र, उत्तरीय से अलंकृत, सुंदर केश सज्जा के साथ प्रदर्शित है। हाथी सूंड से देवी का अभिषेक करते प्रदर्शित है। (चित्र सं 76)

सरस्वती –

विद्या, बुद्धि और संगीत की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सरस्वती को प्रारंभ से ही विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सरस्वती को वाक्, वाग्देवी, वागीश्वरी, वाणी, शारदा, भारती आदि नामों से भी अभिहित किया गया है।[2] ज्ञान एवं बुद्धि की देवी होने के कारण ही इनके साथ वाहन के रूप में हंस, करों में अक्षमाला, पुस्तक तथा कमंडलु का अंकन किया जाता है। बाद में, ललितकलाओं विशेषकर संगीत की देवी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में भी प्रतिष्ठित होने के कारण देवी के हाथों में वीणा और वाहन मयूर का अंकन किया जाने लगा।[3]

देवी सरस्वती को स्थानक त्रिभंग मुद्रा में दर्शाया गया है। चतुर्भुजी देवी सरस्वती के अग्र दोनों हाथों में वीणा है, तथा पश्च बायें हाथ में पुस्तक एवं दायां हाथ अक्षसूत्र अंकित है। देवी का मुख भाग खण्डित है तथापि मूर्ति में हार, स्तनसूत्र, भुजबन्द, कंकण, मुखला, उरुदम, मुक्तादम एवं नूपुर का अंकन आभूषणों के रूप में किया गया है। (चित्र सं. 77)

सरस्वती की एक अन्य स्थानक मूर्ति ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर ही चतुर्भुजी रूप में प्राप्त हुई है। (चित्र सं. 78) देवी द्विभंग मुद्रा में विराजमान हैं। यह मूर्ति अधिक खण्डित है तथापि देवी के पश्च बायें हाथ में पुस्तक एवं अग्र वाम हस्त में कमण्डलु धारण किये हुए हैं, जिस कारण इनकी पहचान सरस्वती के रूप में की जा सकी है। देवी का अग्र दायां हाथ वरद मुद्रा में है। देवी को समस्त वस्त्रालंकरणों के साथ अंकित किया गया है।

सप्त मातृका

सप्त मातृकाओं के पूजन की परम्परा में मातृ पूजन की प्राचीन परम्परा के साथ ही शक्ति पूजन के भाव को भी संश्लिष्ट किया गया है और अलग-अलग ब्राह्मण देवताओं की शक्तियों के सामूहिक रूपांकन के माध्यम से संघात या समन्वय के भाव को व्यक्त यिका गया है। सप्तमातृका फलक के साथ-साथ देवियों की स्वतंत्र मूर्तियों के उत्कीर्णन की परम्परा भी दृष्टव्य है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण, मार्कण्डेयपुराण, अपराजितपृच्छा एवं रूपमण्डन में सात या आठ मातृकाओं के नाम तथा लक्षण बताये गये हैं। इनमें ब्रह्माणी, माहेश्वरी, वैष्णवी, ऐन्द्री, कौमारी, वाराही और चामुण्ड्ा के नाम हैं। मातृकाओं के पूजन की परमपरा मध्ययुग में अधिकांषतः शक्ति पूजन के रूप में प्रचलन में थी। इसी कारण सात या आठ मातृकाओं की उपर्युक्त मान्य सूची के अतिरिक्त कौबेरी, आग्नेयी, वायावी, यमी, वारुणी तथा ऐसी ही अन्य देवियों की भी शक्तियों के रूप में कल्पना की गई जिनकी स्वतंत्र मूर्तियां लगभग ग्यारहवीं सदी से बननी आरम्भ हो गयी थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर वारुणी एवं कौमारी दो मातृकाओं की मूर्तियां उत्कीर्ण की गई हैं।

कौमारी

देवी कौमारी कार्तिकेय की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। देवी को स्थानक त्रिभंग मुद्रा चतुर्भुजी स्वरूप में अंकित किया गया है। देवी का अग्र दायां हाथ अभय मुद्रा में है, जबकि बायां अग्र हाथ खण्डित अवस्था में है। देवी के मस्तक पर त्रिशिख केश विन्यास स्पष्टतः दृष्टव्य है। देवी के साथ वाहन मयूर का अंकन भी किया गया है। देवी के गले में हार, स्तनसूत्र, हाथों में कंकण, कटिबंध, उरुदम, मुक्तादम एवं नूपुर आदि सभी आभूषणों का सुन्दर अंकन किया गया है। (चित्र सं. 79)

वारुणी

देवी वारुणी दिक्पाल देवता वरुण की शक्तिस्वरूपा हैं। ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर वारुणी देवी की मूर्ति प्राप्त हुई है।(चित्र सं. 80) देवी को स्थानक द्विभंग मुद्रा में चतुर्भुजी स्वरूप में अंकित किया गया है। मूर्ति का मुख भाग खण्डित अवस्था में है। देवी के अग्र दायें हाथ में पद्मकलिका है, जबकि अग्र बायां हाथ खण्डित है। पश्च दायें हाथ में अंकुश एवं पश्च बायें हाथ में पाश का अंकन किया गया है। देवी के चरणों के दोनों ओर जल के घट विद्यमान हैं। देवी के कानों में कुण्डल, गले में हार, स्तनसूत्र, हाथों में भुजबंद, कंकण, कटिबंध, कटिवस्त्र, उरुदम, मुक्तादम एवं पैरों में नूपुर का अंकन किया गया है।

कार्तिकेय

कार्तिकेय की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न कथाओं के कारण उन्हें अलग-अलग नामों से संबोधित किया गया है। जिसमें स्कन्द, कुमार, विशाख, गुह्य, महासेन, सुब्रहमण्य एवं शक्तिधर मुख्य हैं। कृतिकाओं की संतान होने के कारण उन्हें कार्तिकेय, छह माताओं का पुत्र होने के कारण षाण्मातुर और छह मुखों से स्तनपान करने के कारण षडानन कहा गया है। कार्तिकेय मुख्यतः युद्ध के देवता रहे हैं। इसी कारण युद्ध प्रिय यौधेय गणों के सिक्कों पर इनका अंकन योद्धा के रूप में किया गया है। कार्तिकेय के जन्म का हेतु तारकासुर का संहार रहा है। तारकासुर के विरुद्ध युद्ध में कार्तिकेय ने देवसेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नेतृत्व किया था, इसी कारण इन्हें सेनानी या देव सेनापति भी कहा गया और कई स्थानों पर देवसेना या महासेना को इनकी शक्ति बताया गया है।[4] उत्तर एवं दक्षिण भारत में कार्तिकेय की मूर्तियों का अंकन निरन्तर होता आया है।

ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान पर कार्तिकेय की एक मूर्ति अंकित है।(चित्र सं. 81) स्थानक द्विभंग मुद्रा में चतुर्भुजी कार्तिकेय अपने वाहन मयूर के साथ खड़े हैं। मूर्ति में मुख भाग एवं बायें दोनों कर खण्डित अवस्था में हैं। देवता अग्र दायें कर से मयूर को खिला रहे हैं और पश्च दायें कर में मूसल लिए हुए हैं। वस्त्रालंकरण की दृष्टि से भी यह मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है। कार्तिकेय के कानो में बड़े आकार के कुण्डल, गले में चौड़ा ग्रैवेयक, हार, यज्ञोपवीत दिखया गया है। कटिभाग में में अलंकृत कटिबंध, अधोवस्त्र, उरुदम, मुक्तादम, पैरों में कड़े धारण किए हुए दर्शाया गया है। समस्त मूर्ति परिकर में व्याल, मकरमुख एवं स्त्री परिचारिकाओं का भी सुन्दर अंकन किया गया है।

गणेश-

शिव और पार्वती के पुत्र गणों के ईश गणेश की मांगलिक देवता के रूप प्रतिष्ठा मिली है। ककनमठ मंदिर के अधिष्ठान पर गणेश की चतुर्भुजी मूर्ति अंकित है।(चित्र सं. 82) द्विभंग स्थानक मुद्रा में यह मूर्ति समस्त वस्त्राभूषणों से अलंकृत है। गणेश के गजमस्तक पर सुन्दर शीर्षपट्ट का अंकन किया गया है। उनके कान सूर्पफणाकार हैं। गले में चौड़ा ग्रैवेयक, मालाएं, यज्ञोपवीत अंकित है। हाथों में भुजबन्द, कंकण एवं लम्बोदर गणेश की मेखला अत्यधित सहज रूप से पेट के आकार के अनुरूप ही बनाई गई है। उरुदम, मुक्तादम सहित पैरों में अलंकृत नूपुर का अंकन भी उक्त मूर्ति में किया गया है। गणेश के दो हाथ खण्डित अवस्था में हैं, जिनमें उपस्थित आयुध नहीं पहचाने जा सकते हैं। अग्र दायें हाथ में फरसे का अंकन किया गया है, जिसके सहार वे द्विभंग मुद्रा में खड़े हैं। पश्च दायें हाथ में पद्मकलिका का निरूपण प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्ट दिक्पाल

अष्टदिक्पाल और लोकपाल एक ही हैं। इनकी संख्या आठ है जो विश्व की अष्ट संख्यक दिशाओं के संरक्षक हैं। पूर्व - इन्द्र, पश्चिम - वरूण, उत्तर - कुबेर, उत्तर पूर्व - ईषान उत्तर पश्चिम - वायु, दक्षिण - यम, दक्षिण पूर्व - अग्नि एवं दक्षिण पश्चिम - निऋति।

प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इन दिक्पालों के नाम और संख्या में भेद पाये जाते हैं। जैन ग्रन्थों के दषदिक्पालों के नाम और संख्या में भेद पाये जाते हैं। जैन ग्रन्थों में दषदिक्पाल थोड़े भिन्न हैं।

जैन परम्परा के दषदिक्पाल निम्नलिखित हैं -

- पूर्व - इन्द्र
- द. पूर्व /आग्नेय - अग्नि
- दक्षिण- यम
- द. प./नैऋत्य - नैऋत
- पश्चिम - वरूण
- उ. प./वायव्य - पवन
- उत्तर - कुबेर
- उ.पू./ईषान- ईषान
- ऊर्ध्व - सोम
- अधो - धरणेन्द्र

बौद्ध परम्परा में दिशाओं के अधिपतियों के रूप में चतुर्महाराजों की संकल्पना की गई है।

- उत्तर -वैश्रवण
- दक्षिण- विरूढक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- पूर्व - धृतराष्ट्र
- पश्चिम - विरुपाक्ष

प्राचीन भारतीय ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी मूर्तिकला में आठ दिशाओं के लिए आठ रक्षक/अधिपति देवताओं की संकल्पना कर उनकी मूर्तियों का निर्माण किया गया था। जिनकी उपस्थिति मुरैना जनपद के सिहोनियां ग्राम में स्थित ककनमठ मन्दिर की जंघा भाग पर सभी कर्णों पर मिलती है।

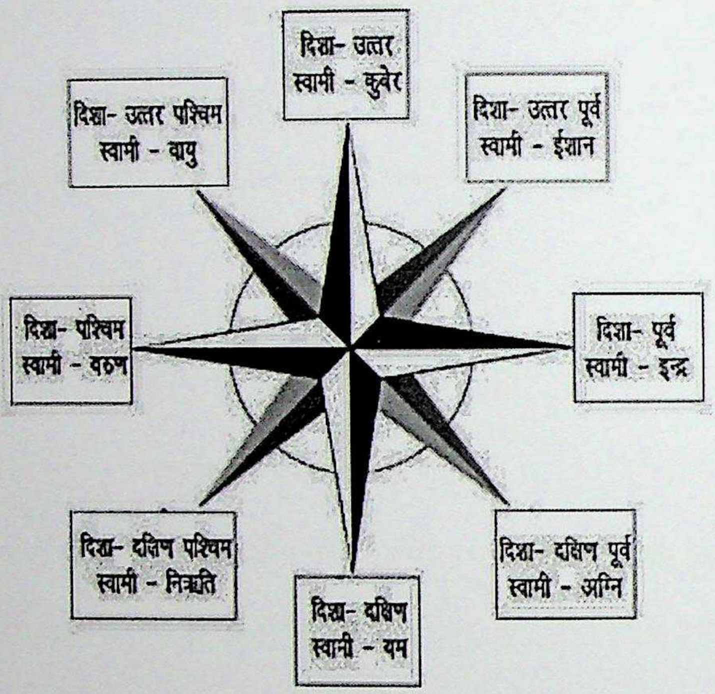

1. इन्द्र -

वैदिक देवताओं में इन्द्र का स्थान बहुत ऊंचा था, परन्तु पौराणिक काल में इनकी स्थित में परिवर्तन आया। इन्द्र को सोम, विश्वपुरुष एवं प्रजापति से उद्भूत माना जाता है। उनके मुख्य आयुध वज्र एवं अंकुश हैं। कथा है कि वृत्र नामक असुर का वध करने के लिए दधिची ऋषि की अस्थियों से वज्र का निर्माण किया गया था। प्राचीन मूर्तियों में मानवरूप में दिखलाई पड़ने वाले इन्द्र की पहचान, उनके ऊंचे उष्णीष या मुकुट, हाथ में वज्र एवं ऐरावत हाथी से की जाती थी। पुराणानुसार इन्द्र देवताओं के अधिपति एवं स्वर्गलोक के स्वामी हैं। अपने पद के प्रति सदैव जागरूक रहने वाले इन्द्र का मुख्य कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा करना है। पौराणिक युग से पूर्व इन्द्र की पूजा का प्रचलन अत्यधिक था। किन्तु इस काल में कृष्ण एवं वैष्णवधर्म की लोकप्रियता ने इन्द्र की उपासना की समाप्ति करवा दी।

इन्द्र को चार दांत वाले हाथी के ऊपर बैठे हुए तथा श्वेत वर्ण का बनाना चाहिए। उनकी बायीं गोद में संरक्षित षची का निर्माण किया जाय। इन्द्र के वस्त्र को नील वर्ण का उनको सुवर्ण के समान कान्ति वाला तथा सभी आभूषणों से सुसज्जित बनाना चाहिए। उनके ललाट को तिरक्षा नेत्र से अलंकृत किया जाय। इन्द्र को चार भुजाओं वाला तथा शची को दो भुजाओं वाली बनाये। इन्द्र के दाहिने हाथ में पद्म तथा अंकुश उपस्थित रहेंगे। बायें एक हाथ शची की पीठ पर रखा हुआ तथा दूसरा हाथ वज्र से युक्त रहेगा। शची के बायें हाथ में मनोहर संतान वृक्ष की मंजरी का अंकन किया जाये। शची के दाहिने हाथ को देवराज की पीठ पर रखे हुए बनायें। [5]

इस ग्रन्थ में ब्रह्मा द्वारा इन्द्र का वर्णन करते हुए उन्हें चार भुजाओं वाला बतलाया गया है। देवों के देव शंकर जी ने इन्द्र को तीन नेत्रों वाला कहा है। इन्द्र के प्रतिमालक्षणों में प्रयुक्त सभी गुणों को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि इन्द्र की सुवर्ण के समान कान्ति तेजों के आश्रय होने के कारण है। इन्द्र का जो नीला वस्त्र सम्पूर्ण आकाश की ओर संकेत करता है। वे देवराज हैं सम्पूर्ण लोक पर उनकी आज्ञा श्रेष्ठ है इस कारण उनके हाथ में विद्यमान अंकुश ही सभी लोकों को अपने वष में रखने वाली आज्ञा है। लक्ष्मी जी के साथ विद्यमान पद्म के द्वारा उनकी विभूति है।[6]

देवताओं में श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न दुष्टों का शमन करने वाले इन्द्र का क्रोध ही उनके हाथ में वज्र के रूप में विद्यमान है। भगवान् वासुदेव को इन्द्र कहा गया है अतएव शची लक्ष्मी रूप से अभिमत हैं। शची के हाथ में विद्यमान सन्तान वृक्ष की मंजरी ही संतान है। ऐरावण को ही अर्थ जानना चाहिए, उसके महाबलवान चारों दांतों को ही देवशक्ति, मन्त्रशक्ति, प्रभुशक्ति एवं उत्साहशक्ति जानना चाहिए।[7]

त्रिदशेष इन्द्र की प्रतिमा में हजार आंखे, एक हाथ में वज्र, दूसरे में गदा, पुष्टांग शरीर, विशाल भुजाएं, सिर पर किरीट मुकुट, शरीर पर दिव्याभरण एवं अलंकारों के साथ-साथ यज्ञोपवीत भी प्रदर्ष्य है।[8]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्यपुराण में इन्द्र को हजार नेत्रों वाला तथा मत्त गयन्द पर विराजमान बताया गया है। उनके ऊरु, वक्षस्थल और मुख विशाल बनाये जाने का निर्देष है। साथ ही कंधे सिंह के समान हों, उनकी भुजाएं विशाल हों, वे किरीट और कुण्डलों सहित हों। जघनस्थल, भुजाओं तथा आंखों में स्थूलता हो साथ ही उनके हाथों में वज्र एवं कमल का अंकन किया जाय। वे विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित तथा देवताओं एवं गंधर्वों द्वारा पूजित एवं अप्सराओं द्वारा सेवित दर्षाये जाने चाहिए। उनके पार्श्व में छत्र और चामर धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित किया जाना चाहिए। उन्हें सिंहासन पर विराजमान, बायीं ओर कमल धारण किये हुए इन्द्राणी एवं गन्धर्वों से घिरे हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए।[9]

इन्द्र हाथी पर सवार तथा वज्रधारण करने वाले देव हैं। अग्निपुराण में इन्द्र की पत्नी के रूप में ऐन्द्री का विवरण मिलता है।[10] ऐन्द्री देवी हाथी पर सवार रहती हैं। वे हाथों में वज्र धारण करती हैं। उनके एक हजार नेत्र हैं तथा उनकी सिद्धि प्राप्ति के लिए उपासना की जानी चाहिए।[11]

बृहतसंहिता के अनुसार इन्द्र के हाथ में वज्र का अंकन होना चाहिए तथा ललाट के मध्य में शिव की भांति तीसरा नेत्र होना चाहिए। उनके साथ वाहन स्वरूप चार दांतों वाला ऐरावत हाथी भी होना चाहिए।[12]

अपराजितपृच्छा के अनुसार इन्द्र सहस्त्ररक्ष तथा गजारूढ हों। उनके हाथों में वर, वज्र, अंकुश तथा कंडिका हो।'[13]

ककनमठ स्थित इन्द्र की प्रतिमा चतुर्भुजी है।(चित्र सं. 83) जिसकी तीन भुजाएं एवं उनमें उपस्थित आयुध खण्डित अवस्था में हैं। बायीं ओर की पिछली भुजा सुरक्षित है, यद्यपि इसमें उपस्थित आयुध भी खण्डित अवस्था में ही हैं। किन्तु प्रतिमा शास्त्रीय वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि यह आयुध अंकुश रहा होगा। इन्द्र पर्यंकासन में गज के ऊपर आरूढ़ हैं। उनकी अन्य तीन भुजाओं में किन आयुधों का अंकन किया गया, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। यह प्रतिमा रूप सौन्दर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। भव्य एवं अलंकृत वस्त्राभूषणों से यह प्रतिमा सम्पन्न है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. अग्नि -

इन्द्र के बाद वैदिक ऋचाओं में वैदिक देवताओं में दूसरा स्थान अग्नि का है। वे ऐश्वर्यों के स्वामी तथा शत्रुनाषक बताये गये हैं।[14] इन्द्र के समान वे भी धर्म के पोषक, प्रदाता, सर्वज्ञानी, संसार के स्वामी, प्रदीप्तमान तथा शक्ति से सम्पन्न हैं। ये सर्वाधिक यौवन से सम्पन्न देवता हैं। वे देवों के दूत हैं तथा देवों के पुरोहित होने के कारण वेदों में इन्हें ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किया गया है।[15] यज्ञ के प्रधान होने के कारण वे 'होतृ'[16] एवं अध्वर्यु[17] भी हैं। शतपथ ब्राह्मण भी इन्हें पुरोहित का कार्य करने वाला ब्राह्मण बतलाता है।[18] वे गृह के प्रथम अतिथि तथा गृहपति भी कहे गये हैं।[19] वे ही अदिति रूप, रुद्र रूप, सूर्य रूप, विष्णु एवं ब्रह्मा के रूप में मरुद्गणों की अपार शक्ति रखते हुए विराट स्वरूप हैं।[20] कहीं पर वे ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र बताये गये हैं। कहीं पर वे अंगिरा ऋषि के पुत्र के रूप में जाने गये हैं।[21] किन्तु कहीं आकाश, पृथ्वी और जल के पुत्र के रूप में माने गये हैं।[22] महाभारत में वे तपे सोने के वर्ण वाले, हरित-पीली चमकती श्मश्रु वाले, जटाधारी, पद्म पत्र के समान नेत्र वाले तथा पिंगल वर्ण के कहे गये हैं।[23] विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार अग्नि को रक्तवर्ण की जटा धारण किये हुए तथा धूम रूपी वस्त्र धारण किये हुए बनाया जाना चाहिए। उनको ज्वाला समूह से व्याप्त, सौम्य, तीन नेत्रों वाला तथा श्मश्रु धारण किए हुए बनाये। उनकी चार भुजायें, चार दांत, देवताओं के स्वामी तथा वायु रूपी सारथि से सुक्त बनायें। उनको चार शुक पक्षियों से युक्त धमरूपी चिन्ह वाले रथ पर बैठे हुए बनायें। उनकी बायीं गोद में स्थित स्वाहा देवी को इन्द्र के गोदी में बैठी शची देवी के समान बनायें। स्वाहा देवी को हाथ में रत्न का पात्र धारण किये हुए बनाये। अग्नि के दोनों दाहिने हाथों में ज्वाला और त्रिशूल बनाये और बायें हाथ में अक्षमाला बनायें।[24] मत्स्य पुराण[25] में अग्नि को सभी प्रकार के फलों को देने वाला बताया गया है। अग्नि की प्रतिमा कनक के समान उदीप्त कान्तिवाली बनानी चाहिए। वह अर्धचन्द्राकार आसन पर स्थित हो। उनका मुख उदयकालीन सूर्य की भांति दिखाना चाहिए। अग्निदेव को यज्ञोपवीत तथा लम्बी दाढी से युक्त बनाना चाहिए। उने बायें हाथ में कमण्डलु और दाहिने हाथ में रूद्राक्ष की माला हो। उनाक वाहन बकरा ज्वालामण्डल से विभूषित और उज्जवल होना चाहिए। मस्तक पर सात जिह्वारूपिणी ज्वालाओं से युक्त इस प्रतिमा को देवमन्दिर अथवा अग्निकुण्ड के मध्य में स्थापित करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्देवी भागवत पुराण में अग्नि का बहुत ही भीषण एवं भयंकर वर्णन किया गया है। वहां उनके केष और उनकी दाढी व मूंछे तप्त तांबे सदृष थी। आंखों से भीषण अंगारे बरस रहे थे। हाथ में त्रिशूल था, जो घूम रहा था। शरीर के चारों ओर खूब लम्बी-लम्बी लपटें निकल रही थीं। वे वस्त्रहीन थे, पर उनका शरीर लपटों से लिपटा हुआ था।[26]

रूपमण्डन के अनुसार अग्नि अपने हाथों में शक्ति, मृणाल युक्त पद्म कमण्डल एवं ज्वाल पुंज धारण करते हैं तथा मेष पर आरूढ़ रहते हैं।[27] अपराजितपृच्छा में भी ऐसे ही रूप का वर्णन मिलता है।[28]

आगमों में भी अग्नि के स्वरूप का वर्णन मिलता है। चतुर्भुजी अग्नि को त्रिनेत्री, जटायुक्त रक्तवर्णी बताया गया है। उनके दोनों अग्र भुजाएं वरद एवं अभय मुद्रा में होनी चाहिए तथा पष्च दायीं भुजा में सुरक एवं बायीं भुजा में शक्ति होती है। अग्नि की द्विभुजी प्रतिमाओं में उनकी दोनों भुजाओं में शक्ति एवं स्रुक होते हैं। उनका वाहन अज तथा मेष बताया गया है।[29]

देवताओं की आहूतियों के रूप में अग्नि के माध्यम से ही उनके भाग की प्राप्ति होती है। अग्नि के गार्हपत्य, आह्वनीय तथा दक्षिणाग्नि रूपों की मान्यता प्राचीन है। कर्मकाण्डों में अग्नि के जिस स्वरूप की कल्पना की गई है, उसके अनुसार उसे सात हाथ, चार सींग, सात जिव्हाएं, दो मस्तक और तीन पैर हैं। एन. पी. जोशी[30] के अनुसार यह वर्णन रूपक मात्र है मूर्ति लक्षण नहीं है क्योंकि लक्षण ग्रन्थों में दिये गये वर्णन तथा प्राप्त प्रतिमाएं परस्पर मेल नहीं खाती है।

ककनमठ मन्दिर में स्थित अग्नि की प्रतिमा चतुर्भुजी है।(चित्र सं. 84) अग्नि को पर्यंकासन में अपने वाहन मेष के साथ बैठे दिखाया गया है। अग्नि के मस्तक के पीछे प्रभामण्डल का रूपांकन भी किया गया है। दाड़ी एवं मूछों से युक्त अग्नि जटामुकुट धारण किये हुए हैं। इस प्रतिमा में अग्नि के आगे दो हाथों का कुछ भाग खण्डित हैं, जिनमें से दायां हाथ वरदमुदा्र में हैं तथा बायें हाथ में संभवतः कमण्डलु रहा होगा। पीछे के दोनों हाथों में पद्म तथा सुरवा का सुन्दर अंकन देखा जा सकता है। अग्नि की यह प्रतिमा विभिन्न वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. यम -

दक्षिण दिशा के लोकपाल के रूप में यम का महत्व वैदिक कालीन साहित्य में अधिक रहा। वेदों के बहुत से मंत्रों में इनकी प्रशंसा की गई है। ऋग्वेद में यम के पिता वैवस्वत तथा माता सरण्यू बताई गई है तथा इन दोनों से उत्पन्न यम के अलावा एक पुत्री यमी का भी वर्णन भी हुआ है।[31] इन्हें यमो-मिथुनो कहा जाता है, अर्थात् वे दोनों एक साथ जुड़वां के रूप में पैदा हुए थे।[32] ऋग्वेद में यम-यमी का सम्वाद बहुत प्रसिद्ध है। एक स्थान पर यम को ही मृत्यु का देवता बताया गया है।[33] अथर्ववेद में एक ऐसे प्राणी बताए गए हैं जिनकी मृत्यु हुईं थी।[34] ऋग्वेद में उनको सबल और उर्दूबल कहा गया है।[35] यहां उनके दो दूत श्वान बताये गये हैं तथा उनाके चार नेत्रों व चौड़ी नासिका वाला भी बताया गया है। रामायण के अनुसार यम मृत्यु के देवता है और मृत्यु के समय काल दण्ड का प्रयोग करते हैं।[36] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उनकी पत्नी धूमोर्णा बताई गई है।[37] वे गदाधारी एवं विशालकाय हैं। उन्हें मुंज पर्वत पर शिव को उपासना करते हुए तथा मानुषोत्तर पर्वत पर हते हुए भी बताया गया है।

ककनमठ मंदिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ती पर यम की मूर्ति अंकित है।(चित्र सं. 85) समस्त वस्त्राभरणों सहित चुर्भुजी यम को उनके वाहन भैंसे के साथ विराजमान दर्शाया गया है। मूर्ति में तीन हाथों में अंकित आयुध खण्डित अवस्था में है, जिनकी पहचान संभव नहीं है। तथापि पश्च बायें हाथ में घण्ट का अंकन किया गया है। उनके कानों में कुण्डल, गले में हार, ग्रैवेयक, माला, यज्ञोपवीत, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटिबंध, उरुदम एवं मुक्तादम का सुन्दर अंकन किया गया है। वाहन भैंसे को भी तदनुरूप ही मांसल एवं सुडौल कदकाठि का बनाया गया है।

4. नैऋति

अपराजितपृच्छा[38] और रूपमण्डन[39] में श्वान पर आरूढ़ और भयंकर दर्शन तथा लम्बी डाढ़ों वाले चतुर्भुज निर्ऋति के हाथों में खड्ग, खेटक, कर्त्री तथा नरमुण्ड के अंकन का विधान है। निर्ऋति की स्वतंत्र मूर्तियां अत्यल्प हैं। मुख्यतः अष्टदिक्पाल समूहों में ही मन्दिरों पर इनका रूपायन हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ककनमठ मंदिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ती पर निर्ऋति की सुन्दर मूर्ति प्राप्त होती है। (चित्र सं. 86) समस्त वस्त्राभरणों सहित चुर्भुजी निर्ऋति को शव के साथ अर्धपर्यंकासन स्थिति में विराजमान दर्शाया गया है। मूर्ति में तीन हाथों में अंकित आयुध खण्डित अवस्था में है, जिनकी पहचान संभव नहीं है। तथापि पश्च बायें हाथ में खेटक का अंकन किया गया है। उनके कानों में कुण्डल, गले में हार, ग्रैवेयक, माला, यज्ञोपवीत, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटिबंध, उरुदम एवं मुक्तादम का सुन्दर अंकन किया गया है।

5. वरुण

जल के देवता वरुण की गणना वैदिक काल में देवत्रयी (इन्द्र, वरुण, अग्नि) के अन्तर्गत की गई है। अपराजितपृच्छा[40] एवं रूपमण्डन[41] में मकरारूढ़ वरुण का एक हाथ वरदमुद्रा में बताया गया है और अन्य तीन हाथों में पाश, पद्म और कमण्डलु का उल्लेख किया गया है।

ककनमठ मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर वरुण की मूर्ति प्राप्त होती है। (चित्र सं. 87) चतुर्भुजी वरुण को उनके वाहन मकर के साथ अंकित किया गया है। वरुण का अग्र बायां हाथ खण्डित अवस्था में है, जबकि दायां हाथ वरद मुद्रा में है। पश्च बायें हाथ में पाश का सुन्दर अंकन है। दायें हाथ में गदा निरूपित है। वरुण के गले में ग्रैवेयक, हार, त्रिसूत्रीय यज्ञोपवीत है। वरुण की छाती पर श्रीवत्स चिन्ह का अंकन भी किया गया है। कटिबन्ध सहित उरुदम, मुक्तादम एवं नूपुर का अंकन भी इस मूर्ति में वस्त्राभूषणों के रूप में किया गया है।

6. वायु

अपराजितपृच्छा[42] एवं रूपमण्डन[43] में अभिलक्षित स्वरूप के अनुसार मृगारूढ़ चतुर्भुज वायु का एक हाथ वरद-मुद्रा में होगा एवं अन्य हाथों में वज्र, पताका और कमण्डलु होगा। अंशुमद्भेदागम में एक हाथ में ध्वज और दूसरे में दण्डधारी वायु को सिंहसनासीन निरूपित किया गया है।

ककनमठ मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर वायु की मूर्ति अंकित है। (चित्र सं. 88) दिक्पाल रूप में चतुर्भुजी वायु को उनके वाहन मृग के साथ अर्धपर्यंकासन में अंकित किया गया है। वायु के मस्तक पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जटाजूट का अंकन है। वे सभी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। उनके कानों में कुण्डल, गले में ग्रैवेयक, हार, त्रिसूत्रीय यज्ञोपवीत, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटिबंध, उरुदम, मुक्तादम एवं पैरों में नूपुर का अंकन किया गया है। वायु के अग्र बायें हाथ में कमण्डलु है, जबकि दायां हाथ वरद मुद्रा में है। पश्च बायें हाथ में उपस्थित आयुध खण्डित हो चुका है, जबकि दायें हाथ में गदा का अंकन किया गया है। सम्पूर्ण मूर्तिपरिकर में स्त्री परिचारिकाओं के साथ व्याल मूर्तियों का सुन्दर अंकन किया गया है।

7. कुबेर

कुबेर उत्तर दिशा के स्वामी होने के साथ ही यक्षों के अधिपति भी हैं, जिन्हें यक्षेन्द्र, यक्षेश तथा यक्षराज और धन के देवता के रूप में धनपति, निधिपति और धनद नामों से अभिहित किया गया है। वैश्रवण, जम्भल, सर्वाण्ह एवं सर्वानुभूति ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन परम्परा में उनके कुछ अन्य नाम हैं। अपराजितपृच्छा[44] एवं रूपमण्डन[45] में गज वाहन वाले और घटोदर कुबेर के हाथों में गदा, निधिपात्र, बीजपूरक और कमण्डलु उल्लिखित है। अंशुमद्भेदागम में कुबेर के मेष वाहन तथा दायें-बायें क्रमशः शंख और पद् निधियों का उल्लेख है।[46] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कुबेर के हाथों में गदा, शक्ति और रत्नपात्र तथा शक्ति ऋद्धि देवी के बायीं गोद में बैठे होने का विधान मिलता है।

ककनमठ मन्दिर के गर्भगृह की बाह्य भित्ति पर उत्तर दिशा में दिक्पाल रूप में कुबेर का अंकन प्राप्त होता है। (चित्र सं. 89) चतुर्भुजी कुबेर को अर्धपर्यंकासन स्थिति में प्रदर्शित किया गया है। कुबेर के मस्तक पर सुन्दर जटा का अंकन है। कानों में कुण्डल, गले में ग्रैवेयक, हार, यज्ञोपवीत, हाथों में भुजबन्द, कंकण, कटिबंध, उरुदम, मुक्तादम एवं नूपुर आदि आभूषणों से वे सुसज्जित हैं। कुबेर के अग्र दायें हाथ में अक्षसूत्र का अंकन है एवं बाये हाथ में नकुलक को पकड़े हुए हैं। पश्च दायें हाथ में गदा एवं बायें हाथ में दर्पण का निरूपण किया गया है। इस मूर्ति में कुबेर के स्वाभाविक घटोदर स्वरूप के विरीत पुष्ट सुडौल शरीर में अंकित किया गया है। संभवतः दिशा स्वामी होने के कारण इस प्रकार की शारीरिक भंगिमा को यहां पर प्रदर्शित किया गया है। उनके हाथों में विलासिता की द्योतक वस्तुओं का यहां पर अभाव देखने को मिलता है। जैसे चषक, निधिपात्र आदि। भारतवर्ष से प्राप्त दिक्पाल के रूप में यह कुबेर की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियों में से एक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. ईशान

ईशान शिव का एक विशिष्ट रूप है जो अव्यक्त और आकाश का सूचक है। दिक्पाल के रूप में ईशान शिव के लक्षणों से अभिलक्षित है। जटामुकुट से शोभित वृषभारूढ़ ईशान के हाथों में अपराजितपृच्छा[47] और रूपमण्डन[48] में त्रिशूल, सर्प, नागेन्द्र और फल प्रदर्शित करने का विधान मिलता है। ज्ञातव्य है कि शिव के पंचानन या महेश स्वरूप में ईशान को आकाश का सूचक माना गया है जो अव्यक्त है, इसी कारण महेश मूर्तियों में ईशान का मुख नहीं उकेरा गया है। किन्तु अष्टदिक्पाल समूहों में सभी क्षेत्रों में ईशान का निरूपण मिलता है।

ककनमठ मन्दिर में गर्भगृह की उत्तरपूर्व दिशा की भित्ती पर ईशान की सुन्दर मूर्ति अंकित है। (चित्र सं. 90) चतुर्भुजी ईशान अपने वाहन वृषभ पर आरूढ़ हैं। उक्त मूर्ति का मुखभाग खण्डित अवस्था में है। ईशान का अग्र दायां हाथ अभय मुद्रा में है तथा बायें हाथ में फल लिये हुए हैं। पश्च दायें हाथ में त्रिशूल है तथा बायें हाथ में नाग का अंकन किया गया है। मूर्ति को समस्त वस्त्रालंकरणों से सुसज्जित बनाया गया है। ईशान के कानों में बड़े आकार के कुण्डल, गले में ग्रैवेयक, हार, मालाएं, यज्ञोपवती, हाथों में भुजबन्ध सहित कंकण, कटिबंध, उरुदम, मुक्तादम एवं पैरों में नूपुर का अंकन भी किया गया है। वाहन वृषभ को भी आभूषणों से सुसज्जित दिखाया गया है।

अन्य अलंकरण-

मंदिरों में अलंकरण की परम्परा का प्रारंभ गुप्त काल से हो चुका था। दसवीं-बारहवी शता के मंदिरों में पौराणिक कथाओं तथा परिवार देवताओं के अंकन की परम्परा में और अधिक वृद्धि देखने को मिलती है। यही कारण है कि कच्छपघातकालीन मंदिरों के लगभग प्रत्येक अंग को मूर्तियों से सजाया गया है। देवी देवताओं की मूर्तियों के अतिरिक्त मंदिर को कीर्तिमुख, व्याल आकृतियों, घट पल्लव पशु आकृतियों, ज्यामितीय अलंकरणों, सुर-सुंदर या अप्सरा या अलसकन्या कामकला के दृश्य, नृतक–वादक, जनसामान्य आदि अनेक शुभ मांगलिक अलंकरणों से सजाया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीर्तिमुख-

कीर्तिमुख (सिंहमुख) का प्रदर्शन ककनमठ मंदिर सिहोनिया में बहुलता के साथ किया गया है। कीर्तिमुख एक मांगलिक प्रतीक के रूप में मंदिरों में उत्कीर्ण किया गया है। इसका संबंध आपदाओं को नष्ट करने वाले भगवान शिव से स्थापित किया जाता है। इन्हें कीर्तिवक्त्र, ग्रासमुख, सिंहमुख, पंचवक्त्र आदि संज्ञाएँ दी गई। उत्तरी मध्य प्रदेश के मंदिरों में कीर्तिमुखों का अकन स्तम्भों, भारपट्ट, वितान, उदुम्बर, वरण्डिका, रथिका आदि पर अत्यंत उत्कृष्टता के साथ किया गया।

विद्याधर

ककनमठ मंदिर में विद्याधर युगल का अंकन हुआ है। इसमें पुरूष बांसुरी बजाते हुए तथा समीप स्त्री आकृति प्रदर्शित है। साथ ही कुछ काम कला के दृश्य मंदिर में प्रदर्शित हैं।

व्याल मूर्तियाँ

भारतीय कला अलंकरण प्रधान है। आरम्भ से ही कलाकारों ने अपनी कृतियों को अनेक भांति के अलंकरणों से सुसज्जित करने में रूचि ली। अलंकरण या साज-सज्जा के अभिप्राय तीन प्रकार के है-

(1) रेखाकृति प्रधान

(2) पत्रवल्लरी प्रधान और

(3) ईहामृग या कल्पना प्रसूत पशु-पक्षियों की आकृतियाँ।

इन अभिप्रायों के मूल रूप प्राकृतिक जगत से लिए गए है किन्तु कलाकारों ने अपनी कल्पना के बल पर उन्हें अनेक रूपों में विकसित किया है। कहीं गौण आकृति के रूप में, कहीं मूल अर्चा या प्रतिमा को चारों ओर से सुसज्जित करने के लिए कहीं रिक्त स्थान को रूपाकृति से भर देने के लिए अलंकरणों का विधान किया गया है। उनका उद्देश्य कला में सौन्दर्य की अभिवृद्धि है किन्तु शोभा के अतिरिक्त अभिप्रायों के दो उद्देश्य और थे, एक तो आरक्षा या मंगल चिह्न कहा गया है और उनकी रचना का द्विविध उद्देश्य माना है— शोभार्थ एवं आरक्षार्थ। शोभा या सौन्दर्य का उद्देश्य तो स्पष्ट ही है। आरक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तात्पर्य है अमंगल या अशुभ से मुक्ति। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार शून्य या रिक्त स्थान में असुरों का वास हो जाता है किन्तु यदि गृहादि, आवास या देवगृह में मांगलिक चिह्न लिखे जाये तो देवी श्री और रक्षा उस स्थान में अवतीर्ण होती है। कला का उद्देश्य जीवन के लिए है वह उद्देश्यहीन साधना नहीं। दिव्यावदान के लेखक ने यही भाव प्रकट करते हुए लिखा है कि कला के अभिप्राय शोभा एवं जीवनरक्षा दोनों के लिए होते है- 'सुदर्शन नगरे एकोनद्वासहस्रं देवाना (रूपाणि) आरक्षार्थम् इत्यर्थम् शोभानार्थम्।'[49]

पश्चिम भारत के मध्यकालीन मंदिरों की छतों में पंचशरीरी पशुओं की आकृतियाँ उत्कीर्ण की गई है और भी अनेक मृगरूप, अण्डजरूप (पशु-पक्षियों के मुख वाले), ईहामृग (कल्पना जन्य पशु), भांति भांति के विकटरूप जिनके एक या अधिक मस्तक (बहुमुख, बहुशीर्ष अनेक वक्त्रक) बनाए जाते थे। मध्ययुगीन मंदिरों पर, व्याल आकृतियों का गहन अध्ययन मधुसूदन आमीलाल ढाकी ने किया है उनका मानना है। कि व्याल एक विदेशी उत्पत्ति है जिसे भारतीय मूर्तिकला में यहाँ के अनुकूल वातावरण में फलने-फूलने का अवसर मिला।[50]

'इहामृग' शब्द का सामान्य अर्थ एक प्रकार का हिरण या मृग होता है और यह कोई विशेष अर्थ सूचित नहीं करता, परन्तु विशेष अर्थ में यह दो शब्दों का संयोजन है। यह इहानुसारीमृगः या ईहाम अनुरिस्त्य कृतो मृगह हो सकता है। किसी भी अर्थ में लेने पर यह एक पशु है जो मूर्तिकार के अनुसार गढ़ा गया है। फिर भी भारतीय साहित्य में यह रूद्र के गणों में से एक (प्रमथगण) है। यद्यपि जो मानव रूप में उत्पन्न हुआ है अपने मुख पर पशु या पक्षी की विशेषता लिये होता है। जिनके अनेक आकार 'इहामृग कहलाते है जो काल्पनिक पशु होते हुए भी एक विलक्षण प्राणी है।[51]

प्राचीन भारतीय कला में ईहामृग या बहुविध आकृति वाले रूपों की कल्पना की गई। भारतीय साहित्य में इहामृग की प्रचुरता है। ऋग्वेद[52] से इस विचार की उत्प्रत्ति होती है जहाँ पर इस पौराणिक, काल्पनिक आकारों को 'यातु' कहा गया है। इनमें उलूक यातु (उल्लू), शुशुलूक (सुग्गा), श्वा यातु (श्वान) कोक यातु (कोयल), सुपर्ण यातु (चील) गृद्धयातु (गिद्ध) - इन छः प्रकार की चाल या स्वभावों का उल्लेख है। ये ही काम, क्रोध आदि के छः विकार है जो मनुष्यों में मुखविकृति उत्पन्न करते हैं वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्हें इन्द्र के वशवर्ती कहा है रूद्र शिव नटराज के रूप में सर्वाधिक उर्जायमान है, परन्तु ऋग्वेद" में इन्द्र को नृतु अर्थात नटराज कहा है अर्थात् नहि अंग नृत्ते त्वदन्यं विन्दामि राधसे।[53]

नृत्य ब्रह्मसूत्र अथवा साहुलसूत्र से बंधे रहने का तात्पर्य है जब कभी भी नृत्य की खड़ी रेखा का उल्लंघन होता है, तो अनर्थ हो जाता है। सामान्य प्राणिक (Vibration) सुन्दर होता है किन्तु इसको पालन न करने पर अनर्थ हो जाता है। यह भौतिक आकृति या तो सामान्य ढाँचे के अनुकूल हो अथवा असंख्य विकृतियों की अभिव्यक्ति फिर चाहे भौतिक आकृति मनुष्य की हो या पशु की। वास्तव में, निर्माण (सृष्टि) की दृष्टि से यहाँ तक कि मनुष्य के लिए भी वही उत्पत्ति एवं विकास की दैविक प्रणाली लागू होती है, जो पशुओं के लिये होती है। ऋग्वेद में यह उल्लेख है कि बलि देने में देवतागण मानव और पशु के जीवन- सिद्धान्त की अवधारणा स्वीकार करते है। इन विचारों से उदधृत कुछ आकृतियों का अवतरण हुआ जैसे गणपति (हाथी का शीर्ष मनुष्य के धड़ से जोड़ा गया) हयग्रीवा (अश्व का शीर्ष) हनुमान अथवा वृषाकपि (पिका शीर्ष) नृसिंह (मनुष्य-सिंह) नू-वराह (वाराह की शीर्ष वाला मनुष्य) मनुष्य एवं पशुओं की इन आकृतियों का बहुत विस्तार हुआ है।[54]

इसी प्रकार ऋग्वेद[55] में चार सींगों युक्त वृषभ का उल्लेख मिलता है जिसके दो शीर्ष तीन पैर, सात हाथ तथा तीन धारियों से युक्त है। इसकी अग्नि के साथ पहचान की गई है। जो प्रत्येक जीवित प्राणी के अन्दर शक्ति के रूप में निहित होता है। चार सींगों वाले भैंसे की भी ऋग्वेद[56] में कल्पना की गई है। अर्थर्ववेद[57] एक शीर्ष और दस शरीरो वाले वत्स की चर्चा करता है। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में दस शीर्ष वाला बछड़ा और दो सिर वाली चील की चर्चा की गई है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भिक काल में शब्द ईहामृग काल्पनिक जीवों की ओर सूचित करता है।

वाल्मीकि रामायण[58] में "ईहामृग का सचित्र विवरण दिया गया है। राजप्रासाद के आधार स्तम्भों पर इन्हें अनोखे ढंग से गढ़ा गया बताया है। "इहामृग संयुक्तः कर्तस्वराहिर अन्मयैह सृकृतैर अधितम स्तम्भः प्रदीप्तम इडा च स्त्रयह यद्यपि रामायण में यह नहीं बताया गया है कि इन्हें सौन्दर्यीकरण के लिए किस प्रकार व्यवस्थित किया गया। मात्र मूर्तियों के देखने से ही पता चल सकता है। इस प्रकार के ईहामृगों का सन्दर्भ रामायण के सुन्दरकाण्ड में उल्लिखित है। पुराणों के रचयिताओं ने अपनी रूचि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरूप इस को आगे बढ़ाया जैसे गजानन हयानन, सिंहानन, व्याधानन, मृगेन्द्रवदन, खरमुख, मकरानन, अशिविशानन, ईहामृगमुख, वराहसदृशानन, हंसवक्त्र, कुक्कुटवक्त्र, काकमुख, गृधमुख आदि का उल्लेख पुराणों में किया गया है। प्रतीत होता है कि उपरोक्त सन्दर्भ पुराणों के लेखकों की कल्पनाओं की उत्पत्ति नहीं अपितु लोगों में विस्तृत रूप से फैले विश्वासो के आधार पर था।

लिंग पुराण के अनुसार गण सृष्टि की उत्पत्ति सामान्य विधा के अनुरूप माता के गर्भ से नहीं अपितु यह ब्रह्मा के शरीर के छिद्रों (रोमज सृष्टि) से प्रकट हुए है जिसका आशय यह हुआ कि प्राणिक शक्ति निर्दिष्ट पथ से विमुख हो विखण्डित होती है और अनुचित व्यवहार करती है। वैसे भी इनकी उत्पत्ति शिव के नृत्य की लय टूटने से मानी गई है। इससे शिव के सभी गणों की अभद्रता प्रकट होती है और उन्हें शिव मंदिरों के स्तम्भों में श्रृंखला (जंजीरों) से जकड़ा जाता है गणों को विभिन्न रूपों में दर्शाया जाता है यथा-अरूप, विरूप, महाकाय, घटोदर, चिपिटानन, विकट, वामन, दानव, भूत, उत्कट, भीम, कराल निशाचर इत्यादि।[59]

ऐसा कहा जाता है कि जब रूद्र ने भैरव के रूप में दक्ष के यज्ञ को भंग किया तब उनके गण भयंकर रूप में उनका अनुसरण कर रहे थे। कालिदास उनके रघुवंश[60] में आधा हाथी आधा मछली के रूप के दैत्य का उल्लेख करते है जो समुद्र के जल से उछलते हुए फैन को काटता है। मातङगनकरैहि: सहसोक्त मिन मिन पस्य समुद्रफेनम (समुद्र के फेन को देखो, हाथी-मछली विशाल प्राणी चीरते हुए ऊपर उठता है।)

अलंकरण के प्रतीक तथा प्रारम्भिक भारतीय कला का विषय का प्रस्तुतिकरण इतना सुपरिभाषित तथा विस्तृत है कि हमें यह विश्वास करने को बाध्य होना पड़ेगा कि यह प्राचीन परम्परा अनेक शताब्दियों तक काष्ठ, मिट्टी, हाथी दांत अर्द्ध कीमती प्रस्तर आदि पर कार्य की जाती रही थी। भारतीय कला के अनेक प्रकार उत्सुकतावश जम्बूद्वीप तथा पश्चिम एशिया की कला में देखे जा सकते है। कुमार स्वामी सही रूप से बताते है कि यथार्थ में मौर्य, शुंग और प्रारम्भिक आन्ध्र की कलाकृतियों में पाये जाने वाली कला तथा इस प्रकार यूनानी प्रभाव को पहले के काल (तिथि) का बताना, पश्चिमी एशिया का दिखावटी उपस्थिति सुमेरियाई हितिती, असीरियन मैकनियन, क्रेटन, ट्रोजन, लैकियन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिनीशियन अखामनी और स्काईसिथियन संस्कृति की समानता को प्रमाणित करती है। ऐसी कृतियों की आंशिक सूची में ऐसे पौराणिक दैत्यों । जैसे पंख युक्त सिंह, पंखायुक्त अश्व, ग्रिफिन्स, ट्राइटन (समुद्र का देवता) को सम्मिलित किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के उमरी शिल्पकारी में ये जन्तु हमारे देश की संयुक्त आकृतियों और कुछ यथार्थ आकृतियों के साथ बेल बूटो और फूलों की आकृतियों में लिपटे दिखाई पड़ते है। बाद के काल में ये सरकते हुए सीधी गति के दोनों पशु एवं मनुष्य जीव के साथ-साथ अन्ततः भारतीय शास्त्रीय कला का एक अनिवार्य अंग बन गये।" सदैव से सहनशील भारतीय संस्कृति क्रमशः प्रगति की और यह सामान्य नियम भारतीय कला के लिए अपवाद नहीं है। यह स्पष्ट रूप से विदित है कि प्रारम्भिक काल की कला-प्रकार का ही यह सामान्य विकास है न कि यह कोई अचानक बाहर से लिये गये हिमस्खलन का प्रभाव। अतः यह आवश्यक है कि भारतीय कला की प्रेरणा एवं अर्थ को समझने के लिये साहित्यिक परम्पराओं की गहराई में वैदिक से पौराणिक काल में जाना आवश्यक है। साथ ही निरन्तर जीवित ग्रामीण कला और अन्य विधा की आधुनिक काल की कलाओं से सम्बन्ध स्थापित करना भी परमावश्यक है।

पूर्व मध्यकालीन शिल्पशास्त्रों में प्रतिपादित लक्षणों के अनुरूप इनकी संरचना की गई है जो 16 प्रकार के व्याल के रूप में उभरे है। समरांगण सूत्रधार (11वीं शती ई.) की मूल पंक्तियों, 11वीं शती ई. के पूर्वार्द्ध का एक ग्रन्थ 'अपराजित पृच्छा' (12वीं शती ई.) और रूपमाला बाद का एक सिंहली लेख जो अप्रकाशित तथा अज्ञात लेखक और काल का है इसमें से उसकी व्याख्या तथा तुलनात्मक विश्लेषण में सहायक होगा।

सिंह, गज, वाराह और मर्कट (कपि) ये चार प्रकार के व्याल समरांगण सूत्रधार, अपराजितपृच्छा एवं रूपमाला तीनों ग्रन्थों में उपलब्ध है। शेर, गेंडा और हिरण के लिये समरांगण सूत्रधार एवं रूपमाला स्वीकारते है। महिष, अश्व, शुक तथा कुक्कुट से समरांगण सूत्रधार तथा अपराजितपृच्छा परिचित है। सर्प, मयूर व्याल अपराजितपृच्छा और रूपमाला दोनों में उल्लिखित है। फिर भी प्रत्येक ग्रन्थ कुछ ऐसे प्रकार की व्याख्या करता है जो उसमें ही उपलब्ध है। इस प्रकार वृक (भेड़िया) श्वान, खर, जंगलीबकरा (अज) तथा गृद्ध वाले व्यालों का उल्लेख केवल समरांगण सूत्रधार में है। इसी प्रकार वृष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(बैल), मेष, नर, हंस एवं कीट प्रकार वाले व्यालों का उल्लेख केवल अपराजितपृच्छा में है। इसी प्रकार भल्लुक (भालू) मार्जार (बिल्ली), शिशुमार तथा गृद्ध प्रकार के व्याल केवल रूपमाला में उल्लिखित है। इस प्रकार विभिन्न व्यालों को देखें तो 28 से कम नहीं बनते और वह भी रूपमाला में वर्णित स्त्री-व्यालों को छोड़कर।

इनमें से अनेक उदाहरण लगभग एक ही रूप के दिखाई पड़ते है। उनकी पहचान उनके चेहरे के भेद (मुखभेद) से की जा सकती है। गज, महिष, बंदर, हिरण, नर, श्वान, आदि आसानी से पहचान लिये जाते है। प्रारम्भिक काल में हिरण व्याल की आकृति सांची में देखी जा चुकी है। शेर, भालू और भेड़िया बाद में सिंह के स्थान पर प्रयोग में लाए गये। गर्दभ, अश्व के पश्चात् आया। हंस, मयूर, गृद्ध, बाज, ईरान के मूल पक्षी व्याल के विस्तार के रूप में जोड़ दिए गये। इस प्रकार इस अति मिश्रित पशु को भारतीय मूर्तिकार ने एक से अधिक बार अपने पसंद के पशु के साथ उसकी आकृति देने में सफल हुआ। शेर का तेजत्व बकरी का भोलापन, मुर्गे की शेखीवाला व्यवहार, और सर्प की चपल दौड़ इन सबका उचित समावेश व्याल की आकृतियों में किया गया। इसके बाद भी कई बार अश्व और गर्दन, मेड़ और श्वान सिंह और शेर प्रकार के व्यालों को उनकी अत्यधिक भाव प्रधान तथा एक प्रभाव पैदा करने के कारण कठिनाई हो जाती है। मंदिर पर अनेक व्याल की आकृतियाँ आश्चर्यजनक होती है तथा उनके अन्तर की पहचान करना कठिन हो जाता है।"

प्राचीन भारतीय कला में ईहामृग या बहुविध आकृति वाले रूपों की कल्पना की गई यथा सिंह व्याल, गजव्याल, अश्वव्याल, नरव्याल, वृषव्याल, मेषव्याल, शुकव्याल, महिषव्याल आदि। इनमें भिन्न मस्तक का भिन्न शरीर से जोड़ बैठाया जाता था। मध्यकालीन शिल्पग्रन्थों में उनकी संख्या 16 कही गई है। प्रत्येक को 16 मुद्राओं में अंकित किया जाता था, इस प्रकार व्यालरूपों की संख्या 256 तक पहुँचती थी।

ईहामृगों के विस्मय में डालने वाले प्रकार आकर्षक एवं सूक्ष्मता से निर्मित मूर्तिकला की कल्पना का चर्मोत्कर्ष है। पौराणिक पशु (ईहामृग) प्रारम्भिक मूर्तिशिल्प में सम्मिलित है। यथा पंख युक्त सिंह, चोंच युक्त सिंह, सींग युक्त सिंह, किन्नर - किन्नरी, पंखयुक्त मृग, पंखयुक्त सांड- हाथी के मुख के साथ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंख युक्त उदबिलाव, पंखयुक्त बकरी पुरूष और स्त्री, चील के शरीर और पंखोयुक्त, पुरूष, सिंह का शरीर और पंख, स्त्री सिंह का शरीर और पंख, (चिमैरा) मानव मुख सिंह, हाथी मुख सींगयुक्त साण्ड, आधा पुरूष आधा अश्व, हाथी मुख वाला पुरूष, बकरी मुख वाला पुरूष, आधा सिंह आधा मगरमच्छ, मछली की पूँछ के साथ, चोंचवाला सिंह मछली की पूँछ के साथ, पंखयुक्त सिंह मछली के पूँछ के साथ आधा सिंह हाथी आधा मकरमच्छ (मकर) मछली, बारहसींगा मछली की पूँछ के साथ, बकरी मछली की पूँछ के साथ, हाथी का मुख, बिच्छू की पूँछ और सिंह के पंजे, सांड मछली की पूँछ के साथ, मानव मुख बकरी के पैर मछली की पूँछ के साथ, कन्या (आधा स्त्री आधा मछली) मत्स्य देवता, समुद्र-दैत्य, चोंच वाली बकरी मछली की पूँछ के साथ, पंखो वाली बकरी मछली की पूँछ के साथ, अश्व मछली की पूँछ के साथ (हिप्पोकैम्पस) बकरी सिंह के पंजों और मछली की पूँछ के साथ और सारस सिंह के पंजे और बिच्छू की पूँछ के साथ आदि। ये ईहामृगों को निम्न कोटि में विभाजित किया जा सकता है

अ. व्योमचारी (आकाश में विचरने वाले)

ब. भू-चारी (पृथ्वी पर विचरने वाले)

स. जल-चारी (जल में विचरने वाले) -

मध्य युग के प्रारम्भ से ही विलक्षण भारतीय मूर्तिकार ने उसे प्राप्त कर लिया जिसकी यह खोज में था। एम. ए. ढाकी का मानना है कि बाहर से आया हुआ, दूसरों से लिया हुआ, अभारतीय उत्तरोत्तर हमारे वातावरण में ढलता गया और भारतीय देवालयों के अलंकरण की निधि का एक प्रसन्नतादायक, सुन्दर और आकर्षक, धरोहर बन गया। मध्यकालीन मूर्तिकारों ने उसे निराली छवि प्रदान की तथा प्राचीन काल के ईरान में जन्मी व्याल आकृति को मध्य काल के श्रेष्ठ मूर्तिकारों ने उसे आगे बढाया।

मूल रूप से सिंह का मुख, सूकर के कर्ण, मार्जार (बिल्ली) के नेत्र तथा महिष के श्रृंग को मिलाकर ग्रास की आकृति तैयार की जाती है जिसे कीर्तिमुख कहा जाता है। यही विवरण व्याल की मुखाकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए भी लागू होता है, परन्तु अपराजिपृच्छा में सीधे सिंह के साथ कीर्ति की बनावट का विवरण है जो मात्र व्याल के अतिरिक्त और किसी पर लागू नहीं होता।

इस प्रकार कीर्ति का मुख और व्याल का मुख, विभिन्न पशुओं के मुख के सम्मिश्रण है। मूल रूप से फिर से वही सिंह का मुख, माथा हिरन का, वराह के कर्ण और मेष के सींग कंधे अश्व के समान होने चाहिये परन्तु उनका घुमाव सिंह के समान हो, मार्जर के पंजे हों। श्री ज्ञानरत्नकोष के अनुसार वरालिका का रूप मूलतः श्वान का मुख, जंगली बकरे के या मेष के सींग, गर्दन अश्व की तथा पंजे / पैर सिंह के होने चाहिये।

इन मूल विशेषताओं के अतिरिक्त, मध्ययुग के भारतीय मंदिरों में अनेक प्रकार के व्यालों का प्रदर्शन विभिन्न पशुओं के सम्मिश्रण द्वारा दिखाई पड़ता है। अनेकों नयी प्रजाति के व्याल अपनी विशिष्ट शैली के साथ, हमारे भारतीय सन्दर्भ के अनुकूल विकसित हुये। ये विचित्र प्रकार की आकृतियों का अकारण या बिना किसी आधार के मूर्तिकारों ने सृजन नहीं किया, अपितु तीन शिल्पशास्त्रों समरांगण सूत्रधार, अपराजितपृच्छा एवं रूपमाला में प्रतिपादित लक्षणों के अनुरूप इनकी संरचना की गई है जो 16 प्रकार के व्याल के रूप में उभरे है।

ककनमठ मन्दिर के अधिष्ठान एवं गर्भगृह की बाह्य भित्तियों पर उत्कीर्ण अनेक मूर्तिपरिकरों के मध्य में व्याल मूर्तियों का अंकन प्राप्त होता है।(चित्र सं. 91) यहां पर सिंह व्याल, गजव्याल, श्वानव्याल का अंकन प्रचूर मात्रा में किया गया है। इसके अतिरिक्त अश्व व्याल की एक मूर्ति भी ककनमठ मन्दिर की भित्तियों पर प्राप्त हुई है। ये व्याल मूर्तियां शांत एवं सन्तोषजनक दिखाई पड़ती है परन्तु वे सशक्त, सतर्क, दुष्ट, अभद्र लड़ाकू पराक्रमी एवं सर्प की चपलता रखते है। वे कूदते, पिछले पैरों पर खड़े होना, जोर से चक्कर लगाना, तीखी घुमावदार किन्तु तेज शारीरिक ऐंठन, बाहर निकली जिव्हा छोटे कान, बाहर उभरी डरावनी एवं उमरी आँख भयानक दैत्याकार आकार इन्हें मानव की भ्रम पैदा करने वाली एक छबि की कल्पनाशीलता का निर्माण है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि कच्छपघात शासकों ने एक विशिष्ट शैली के मंदिरों का निर्माण किया। ये मंदिर आज जिस रूप में है उसे स्थापत्य एवं शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण स्वीकार किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। सास-बहू मंदिर कच्छपघात शैली के चरमोत्कर्ष को दर्शाता है तो वही ककनमठ मंदिर वर्तमान समय में जीर्ण शीर्ण अवस्था में होते हुए भी भव्य स्थापत्य शैली एवं उच्च कोटी के मूर्तिशिल्प का जीवंत उधारण है। इसका स्थापत्य शैली में वही स्थान है जो खजुराहों की चंदेल कला में कंदरिया महादेव मंदिर का है। इस शैली के मंदिरों की सामान्य विशेषताओं में गर्भगृह, अन्तराल, रंगमण्डप, मुखमण्डप तथा अधिक विकसित मंदिरों में महामण्डप की रचना की गयी। ऊँची अलंकृत जगती पर मूल प्रासाद, वेदीबन्ध जधा और शिखर निर्मित हैं। पंचरथ जघा का भद्र, प्रतिभद्र और कर्ण प्रायः दो या तीन रथिका पक्तियों से सुसज्जित है। सलिलान्तरों में व्याल, गंधर्व, किन्नर सुर-सुन्दरी मिथुन तथा अष्टदिक्पाल प्रदर्शित है। पंचरथ अथवा सप्तरथ शिखर उरुश्रृंगों से अलंकृत हैं। प्रवेश द्वार पाँच, सात या नौ द्वार-शाखाओं द्वारपाल तथा उत्तरंग नवग्रह सप्तमातृकाओं एवं अलकृत भारपट्टों से सुसज्जित हैं। मण्डप के स्तम्भ वितान और संवरणा छत अलंकृत है।

इन मंदिरों की भित्ती, स्तम्भ, वितान आदि के अलंकरण के लिए विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों के अतिरिक्त कीर्तिमुख, व्याल, सुरे-सुन्दरी, आसरा, मिथुन, घट- पल्लव द्वारपाल, अष्टदिक्पाल, नवग्रह, सप्तमातृका तथा अन्य नाना प्रकार के वानस्पतिक ज्यामितीय एवं परम्परागत मांगलिक चिन्हों को उत्कीर्ण किया गया। मंदिरों में प्रायः प्रत्येक अंग को मूर्तियों तथा अन्य अलकरणों से सजाया गया। मूर्तियों का अंकन विशेषकर मंदिर के जंघा, मण्डप, स्तम्भ, वितान प्रवेशद्वार पर किया गया। मूर्तियों के शरीर में मासलता की अपेक्षा कडापन अधिक है. नाक-नक्श, भाहे आवश्यकता से अधिक तनी हैं तथा हाथ, पैर और शरीर सामान्य से अधिक लम्बे प्रदर्शित हैं। ये विशेषताएं उत्तर भारत के प्रायः सभी मंदिरों की मूर्तियों में दिखाई देते हैं। इस युग के कलाकार ने बाह्य अलंकरणों से मूर्ति को पूर्ण रूपेण सजाने का प्रयास किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ -

---

[1] मारुतिनन्दन तिवारी, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, पृ. 31

[2] वही, पृ. 142

[3] वही, पृ. 143

[4] वही, पृ. 160

[5] विष्णुधर्मोत्तर पुराण 50/1-6

चतर्दन्ते गजे शक्रः श्वेतः कार्यः सुरेश्वरः।
वामोत्संगता कार्या रक्षमाणा तथा शची।।
नीवस्त्रः सुवर्णाभः सर्वाभरणवांस्तथा।
तिर्यग्ललाटगेनाक्ष्णा कर्तव्यष्च विभूषितः।।
शक्रष्चतुर्भुजः कार्यो द्विभुजा च तथा शची।
पद्मांकुषौ तु कर्तव्यौ शक्रदक्षिणहस्तयोः।।
वामं शचीपृष्ठगतं द्वितीयं वज्रसंयुतम।
वामे शच्याः करे कार्या रम्या सन्तनमंजरी।।
दक्षिणं पृष्ठविन्यस्तं देवनाथस्य कारयेत।
ब्रह्मणैव विनिर्दिष्टं तस्याभरणधारणम्।।

[6] वही 50/7-9

तेनैव तस्य कथितं तथा बाहुचतुष्टयम्।
त्रिनेत्रता च तस्योक्ता देवदेवेन शम्भुना।।
रूमाभवर्णता तस्य तेजसां धमकारणात्।
यन्नीलं वसनं तस्य तदाकाषं प्रकीर्तितम्।।
आज्ञा तस्यांकुषो हस्ते सर्वभूतवषंकरी।
पद्मस्थां सहपद्मेन विभूतिं भुवनाधिप।।

[7] वही, 50/10-12

करेण धरयंछ्रीमान्मघवान् सुरसत्तमः।
दुष्टसंषमनं क्रोधो वज्रः शक्रकरः स्मृतः।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासुदेवः स्मृतः शक्रस्तेन लक्ष्मीः शची मता।

तस्याः करे च सन्तानं ज्ञेया सन्तानमंजरी।।

अर्थस्त्वैरावणो ज्ञेयो दन्तास्तस्य तु कीर्तिताः।

दैवमन्त्रप्रभूत्साहशक्तयस्तु महाबलाः।।

[8] द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, भारतीय वास्तुशास्त्र एवं प्रतिमाविज्ञान, पृ0 286

[9] मत्स्यपुराण, 260/67-70

सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।

पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्।।

किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।

वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्।।

पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेविताम्।

छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्।।

सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुत्तम्।

इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम्।।

[10] अग्निपुराण, 51/14

इन्द्रो वज्री गजारूढच्छागगोऽग्निष्च शक्तिमान।

[11] वही, 50/21

ऐन्द्री गजे वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये।

[12] बृहतसंहिता, 58/42

शुल्कष्चतुर्विषाणे छिपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम्।

तिर्य्यग्ललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिन्हम्।।

[13] अपराजितपृच्छा, 213/9

[14] ऋग्वेद, 1/1/1, 1/4/12

[15] वही, 2/1/2, 4/9/4

[16] वही, 2/1/2

[17] वही, 3/5/4, 1/94/6

[18] शतपथ ब्राह्मण, 10/4/1/5

[19] ऋग्वेद, 5/8/2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[20] वही, 2/1/1, 6/13/13

[21] वही, 1/7/31

[22] वही, 8/44/16

[23] महाभारत, आदिपर्व, 222/31-32

[24] विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 56/1-3 रक्तं जटाधरं वह्निं कुर्याद्वै धमूम्रवाससम्।
ज्वालामालाकुलं सौम्यं त्रिनेत्रं श्मरुधारिणम्।।
चतुर्बाहुं चतुर्दंष्ट्रं देवेषं वातसारथिम्।
चतुर्भिष्च शुकैर्युक्तं धूमचिन्हरथे स्थितम्।।
वामोत्संगता स्वाहा शक्रस्येव शची भवेत्।
रत्नपात्रकरा देवी वह्नेर्दक्षिणहस्तयोः।।
ज्वालात्रिषूलौ कर्तव्यौ चाक्षमाला तु वामके।।

[25] मत्स्य पुराण, 261/9-12 वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम्।।
वालार्कसदृषं तस्य वदनं चापि दर्शयेत्।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा।।
कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम्।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्जवलम्।।
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तषिखान्वितम्।
तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाषधरं विभुम।।

[26] श्रीमद्देवीभागवत पुराण, 10/66/27-34

[27] रूपमण्डन, 2/32

[28] अपराजितपृच्छा, 213/10-11

[29] टी. गोपीनाथ राव, एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, वाल्यूम 2, पार्ट 2, पृ0 523

[30] एन. पी. जोशी, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, पृ0 176

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[31] ऋग्वेद, 10/14/17

[32] वही, 1/66/4, 2/39/2

[33] वही, 1/165/4

[34] अथर्ववेद, 18/3/13

[35] ऋग्वेद, 10/165/4

[36] रामायण, 7/22/23

[37] वि. ध. पु. 51/2

[38] अपराजितपृच्छा, 213/12

[39] रूपमण्डन, 2/34

[40] अपराजितपृच्छा, 213/13

[41] रूपमण्डन 2/35

[42] अपराजितपृच्छा, 213/14

[43] रूपमण्डन, 2/36

[44] अपराजितपृच्छा, 213/15

[45] रूपमण्डन, 2/37

[46] मारुतिनन्दन तिवारी, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण, पृ. 174

[47] अपराजितपृच्छा, 213/16

[48] रूपमण्डन, 2/38

[49] वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय कला, 1977, पृ 85

[50] एम.ए. ढाकी, द व्याल फिगर्स आन दी मीडिवल टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, 1965 पृ 5

[51] के. कृष्णमूर्ति - मिथिकल एनीमल्स इन इण्डियन आर्ट, अभिनव प्रकाशन, 1985 पृ 1

[52] ऋग्वेद 7/104/22 उलूकयातुं शुशलूक यातुं जहि श्वायातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्या तुदृषदेव प्रमृण रक्षं इन्द्र ।।

[53] ऋग्वेद 8/24/12 नघृग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राग़े घुम्नान शवसे च गिर्वण॥

[54] एम.ए. ढाकी, द व्याल फिगर्स ऑन दी मीडिवल टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, 1965 भूमिका वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ 5-6

[55] ऋग्वेद 4/58/3 चत्वारि श्रृंगा त्रयों अस्तु पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोखीति महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥

[56] ऋग्वेद 4/52/2

[57] अथर्ववेद, 13/4/6

[58] वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड 5,9,13

[59] एम.ए. ढाकी, द व्याल फिगर्स आन द मीडिवल टेम्पल्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 6

[60] रघुवंश 13.11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

उपसंहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

उपसंहार

मुरैना में मानव सभ्यता के पदचिन्ह अत्यन्त प्राचीन हैं। प्रागैतिहास काल से मानव सभ्यता यहां पल्लवित-पुष्पित हो रही है। पुरातात्त्विक अन्वेषणों में ऐतिहासिक काल की अनेक सामग्री प्रकाश में आयी हैं। किन्तु यहां मन्दिरों की स्थापना का कार्य आठवीं सदी से ही प्रारम्भ हुआ है। यहां स्थित मन्दिर एवं मूर्तियाँ आठवीं से बारहवीं सदी के मध्य के सांस्कृतिक जीवन का निरूपण हैं। लगभग चार शताब्दियों में मुरैना पर शासित राजवंशों के महत्ति प्रयास का परिणाम यह रहा कि आज हमें मुरैना में बहुसंख्यक मन्दिर देखने को मिलते हैं। इन मन्दिरों में संख्या की दृष्टि से प्रतीहार कालीन मन्दिर सर्वाधिक हैं जबकि आकार एवं भव्यता की दृष्टि से कच्छपघात कालीन मंदिर बेजोड़ हैं। बटेश्वर और नरेसर मन्दिर समूह, चांचुल के शिव मंदिर का निर्माण प्रतीहार काल में हुआ था। इनके अतिरिक्त सिहोनियां के ककनमठ मन्दिर का निर्माण कच्छपघात राजवंश के समय पर हुआ था। दोनों ही कालों के मन्दिर आकार एवं भव्यता में पर्याप्त अन्तर रखते हैं साथ ही मंदिरों के निर्माण सम्बन्धी एक निश्चित विकासक्रम को भी प्रदर्शित करते हैं। इस विकासक्रम को समझने के लिए हमें गुप्त कालीन मन्दिरों की अगली कड़ी में मुरैना के प्रतीहार कालीन मन्दिर एवं उसके बाद कच्छपघात कालीन मंदिरों का अवलोकन करना पड़ेगा। इस श्रृंखला के अनुसार मंदिरों के अध्ययन का क्रम इस प्रकार रहेगा - गुप्त कालीन गुहामंदिर एवं सपाट छत वाले मंदिर – प्रतिहार कालीन नरेसर मंदिर समूह - बटेश्वर मंदिर समूह – कच्छपघात कालीन ककनमठ मंदिर।

सामान्यतः भारतीय मंदिरों को शैलीगत विविधताओं के कारण तीन शैलियों में विभाजित किया गया है- नागर, बेसर और द्रविड़ शैली। उत्तर भारत में निर्मित मंदिरों की संरचना नागर शैली हेतु निर्दिष्ट वास्तुषास्त्रीय नियमों के आधार पर की गई थी। नगर संरचना के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक उल्लेख वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में मिलता है। इसी संदर्भ में मंदिरों की बनावट व स्थिति पर उचित चर्चा की गई है। इस प्रकार नगर की बनावट एवं स्थिति के अनुसार बने हुए मंदिर ही नागर शैली में निर्मित मंदिर होते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कालिकागम' नामक ग्रन्थ में नागर शैली में निर्मित मंदिरों के लक्षण एवं विशेषतायें इस प्रकार दिये गये हैं-''संरचना की दृष्टि से ये मंदिर विशेष प्रकार के होते हैं। ये आधार से शिखर तक चौपहला या वर्गाकार होते हैं। ऊंचाई में यह अष्टवर्गा होता है। इन आठ वर्गां के नाम इस प्रकार हैं- मूल (आधार), मसरक (नींव और दीवारों के बीच का भाग), जंघा (दीवारें), कपोत्र (कोर्निस)। ये चारों खड़े रहकर शेष चारों भागों- शिखर, गल, आमलसारक और कुम्भ का भार धारण करते हैं। नागर शैली में निर्मित शिखर की संरचना गर्भगृह की चिपटी छत से प्रारम्भ होती है। शिखर की बनावट चारों कोनों से एक ही समय आरम्भ होती है। धीरे-धीरे तिरछी होती हुई शिखर का आकार धारण करती है और ऊपर जाकर एक ही बिन्दु पर मिल जाती है। शिखर के सबसे अंतिम भाग को कलश और निचले भाग को आमलक कहते हैं। गुप्तकालीन मंदिरों को देखने पर ज्ञात होता है कि 6 शताब्दी ई. से नागर शिखर शैली का प्रयोग भारतीय वास्तुकला में होने लगा और शिखर ईंटों के बनने लगे। इसके उदाहरण देवगढ़ के दशावतार मंदिर तथा कानपुर के भीतरगांव मंदिर में देखने को मिलते हैं। राखालदास बनर्जी के अनुसार गुप्त कालीन देवगढ़ मन्दिर में ही शिखर का प्रादुर्भाव हुआ।

मन्दिर स्थापत्य कला का विकास शनैः-शनैः विभिन्न चरणों में देखने को मिलता है। प्रारम्भिक मन्दिरों का दर्शन गुप्त काल में मिलता है। गुप्त शासकों द्वारा भागवत धर्म को प्रश्रय दिये जाने से इष्टदेव की प्रतिमा की स्थापना नये-नये रूपों में की जाने लगीं तथा इन प्रतिमाओं हेतु मन्दिर-निर्माण की परिकल्पना भी सार्थक होने लगी। सांची से मिले दो कमरे, जिनका निर्माण स्तम्भों पर किया गया है ये गुप्तकालीन मन्दिरों का प्रथम सोपान माने जाते हैं। जिस स्थान पर प्रतिमा को स्थापित किया जाता था उसे 'गर्भगृह' कहा गया। गुप्तकाल में मन्दिरों के निम्नलिखित स्वरूप सामने आते हैं - गुहा मन्दिर, सपाट छत वाले मन्दिर, शिखर युक्त मन्दिर।

गुहाएं जो कि अभी तक बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित रही थीं, गुप्तकाल में गुहाओं का सम्बन्ध ब्राह्मण धर्म से भी होने लगा। चन्द्रगुपत द्वितीय तथा कुमारगुपत प्रथम के काल में इस प्रकार की वृहत संरचना का निर्माण विदिशा के निकट उदयगिरि की पहाड़ियों में कराया गया था। इन गुहाओं तथा सांची के आरम्भिक मन्दिरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान ही एक साधारण गर्भगृह तथा एक स्तम्भाधारित लघुमण्डप जैसी संरचना मिलती है। गर्भगृह के भीतर की छत प्रायः कमलांकृत मिलती है। मध्यप्रदेश के तिगवा में भी मंदिर का ऐसा ही सादा रूप मिला है। उसके द्वारस्तम्भों पर गंगा एवं यमुना दोनों ही नदियों का अंकन मिलता है। वहीं उदयगिरी की प्रसिद्ध वराह गुहा में गंगा-यमुना के हाथों में घट धारण किए हुए दिखाया गया है। वहीं गुहा संख्या 6 का निर्माण लगभग 400 ई. में हुआ था। उसमें गुहा द्वार पर नीचे आयुध-पुरुषों को तथा स्तम्भ शीर्षों पर नदी देवताओं को दिखाया गया है। इन गुहा मंदिरों की विशेषता यह है कि ये मंदिर गुहा के भीतर ही बनाये गये हैं। मन्दिर स्थापत्य के आरम्भिक अवयव जैसे- गर्भगृह एवं मण्डप आदि चट्टान के भीतर ही निर्मित है। कुछ गुहामंदिरों में बाहर ही स्तम्भों से युक्त बरामदा भी देखने को मिलता है।

गुहामंदिरों की अगली कड़ी के रूप में मुरैना के बरेठा नामक ग्राम के उत्तर पश्चिम में स्थित नरेसर मन्दिर समूह में उन मन्दिरों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनके निर्माण के लिए चट्टानों को विभिन्न स्तरों पर काट कर समतल आधार का निर्माण किया गया था। उदयगिरि की गुहा में मन्दिरों के निर्माण के लिए चट्टानों को काट कर समतल आधार नहीं बनाया गया था। नरेसर में निर्मित सभी मन्दिर एक ही काल के, समय के नहीं हैं, इनकी निर्माण शैली में भिन्नताएं देखने को मिलती है। यहां पर छोटे से बड़े आकार के मन्दिरों को देखा जा सकता है। छोटे आकार के केवल गर्भगृह वाले मन्दिर यहां देखे जा सकते हैं। यहां के अधिकांश मंदिरों में त्रि-रथ शैली के शिखरों का प्रयोग किया गया है। छोटे आकार के मन्दिरों की जंघा एवं दीवारे प्रायः सादा एवं बिना अलंकरण की हैं। जबकि बड़े आकार के मन्दिरों की दीवारों पर मूर्तिकला के प्रमाण देखने को मिलते हैं। इन मंदिरों पर हम गुप्तयुगीन कला का पूर्ण प्रभाव पाते हैं। उदाहरणस्वरूप नरेसर मंदिर समूह के देवालय संख्या की द्वारा शाखाएं अलंकरणहीन हैं। नीचे निर्दिष्ट स्थान से द्विभंग गंगा, यमुना घट सहित प्रदर्शित हैं। आभूषणों का अलंकरण उच्च कोटि का है। ललाटबिंब में गणेश उत्कीर्ण हैं। नरेसर में ऊंचाई पर स्थित एक तालाब के किनारे बायीं ओर चार मंदिर स्थित हैं। ये मंदिर फांसना शैली में निर्मित हैं तथा मध्य मंदिर निर्माण योजना एवं अलंकरण के अभिप्रायों में मंदिर क्रमांक 1 के सदृश हैं। इन मंदिरों के गर्भगृह वर्गाकार एवं अलंकरणहीन हैं। द्वार में तीन शाखाएं हैं नीचे गंगा, यमुना, अपनी स्वाभाविक मुद्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अंकित हैं। इनके ललाटबिंब पर भी गणेश उत्कीर्ण हैं। इन देवालयों में वेदिबंध नहीं तथा जंघा पूर्णतः सादी है। कुछ बड़े मन्दिरों में त्रिरथ एवं पंचरथ निर्माण योजना के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इन मन्दिरों में भी अंतराल एवं गर्भगृह ही सम्मिलित हैं, किन्तु इनकी वेदिबंध में खुर, कुंभ, तथा कलष बंधनों का समावेश देखने को मिलता है। जंघा सादी है। ये मन्दिर छोटे मन्दिरों से सम्भवतः बाद में बनाये गये थे, क्योंकि इनमें मन्दिर स्थापत्य की नागर शैली से समबन्धित विभिन्न लक्षण यथा वेदिबन्ध के विभिन्न अवयव एवं दीवारों पर मूर्तांकन की परम्परा देखने को मिलती है। नरेसर मन्दिर समूह में कुछ मन्दिरों का निर्माण चट्टान को काटकर किया गया है। गुप्तकालीन मन्दिरों में हम पाते हैं कि कुछ आरम्भिक मन्दिर गुहाओं में ही बनाये गये हैं। किन्तु नरेसर के मन्दिरों का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि ये गुहा मन्दिरों से ठीक अगले सोपान हैं जिसमें चट्टान को काटकर उसके अनुदिष मन्दिर का निर्माण किया गया है। जिसका आकार बहुत बड़ा नहीं है। मन्दिरों को शिखर युक्त भी बनाया गया है।

नरेसर मन्दिर समूह से कुछ दूरी पर ही स्थित बटेश्वर मन्दिर समूह मन्दिर स्थित है। बटेश्वर मन्दिर समूह का निर्माण भी प्रतीहार राजवंश के काल में ही हुआ था। इसी कारण नरेसर एवं यहां के मन्दिरों में कतिपय समानताओं के साथ-साथ मन्दिर निर्माण के प्रगतिशील तत्वों को भी देखा जा सकता है। बटेश्वर महादेव मंदिर का निर्माण पंचरथ निर्माण योजना के तहत हुआ है जिसमें अंतराल एवं गर्भगृह उपस्थित हैं। जंघा अन्य देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊंची है। भद्ररथों में चैत्य उद्गमों से आच्छादित एक-एक देवकोष्ठ है। इनमें कार्तिकेय, यम, शिव आदि की प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। द्वारशाखाओं पर गंगा-यमुना, नाग-नागी सहित लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा लतापत्र युक्त संचरनाएं विद्यमान हैं। आयताकार अंतराल में चार स्तम्भ हैं, द्वार से संलग्न स्तम्भ सादे हैं तथा गर्भगृह से संलग्न स्तम्भों में पूजकों तथा वादकों का मोहक अंकन है। समतल वितान के मध्य पूर्ण विकसित कमल पुष्प उत्कीर्ण है। परन्तु वर्गाकार गर्भगृह की भित्तियां अलंकरणहीन हैं। मंदिर में उत्कीर्ण लिपि के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यह संभवतः आठवीं शती ई. में निर्मित किया गया था। बटेश्वर मंदिर में समूह में इसके अतिरिक्त कुछ और मंदिर भी पंचरथ योजना में निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर त्रिरथ शैली में निर्मित मंदिर भी विद्यमान हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनमें अंतराल एवं गर्भगृह का दर्शन होता है। इनकी वेदीबंध में खुर, कुंभ, कलष का समावेश है। जंघा सादी है, भद्ररथ स्थित देव कोष्ठों में हिन्दू देवी-देवताओं का प्रदर्शन है। तीन सादे बंधनों युक्त खुरछाद्य के ऊपर शिखर है। त्रिअंडक शिखर के मध्य चैत्यालंकरण भी उपस्थित है। अनेक मन्दिरों के आमलक एवं शिखर ध्वस्त हो चुके हैं।

बटेश्वर के मन्दिरों में हमें छोटे से बड़े आकार के मन्दिरों के प्रमाण देखने का मिलते हैं। बड़े मन्दिरों में नागर शैली के कुछ अवयव देखने को मिलते हैं। इनकी स्थापत्य सम्बन्धी विकास की परिणति मुरैना जनपद में सिहोनियां के ककनमठ मन्दिर में देखने को मिलती है। जिसमें नागर शैली की उत्कृष्ट विशेषताओं को देखा जा सकता है।

कच्छपघात युगीन कला के प्रतिनिधि के रूप में ककनमठ मन्दिर विद्यमान है। यद्यपि मन्दिर आज जीर्णावस्था में स्थित है, तथापि मंदिर स्थापत्य सम्बन्धी अवयवों को इसमें देखा जा सकता है। इसका निर्माण 1044 ई. में राजा कीर्तिराज के द्वारा करवाया गया था। ककनमठ मन्दिर एक पूर्वाभिमुख मन्दिर है जो कि ऊंची जगती पर बना है। इसकी जगती की लम्बाई 300 फीट, चौड़ाई 150 फीट और ऊंचाई 12 फीट है। जगती पर पूर्व दिशा में नंदी मण्डप का निर्माण किया गया था। मंदिर में अर्द्धमण्डप, मुखमण्डप, महामण्डप, अंतराल एवं गर्भगृह हैं। जगती पर खुर, कुम्भ, कलष, पट्टिका, तालपत्र, कपोतिका, बसंतपट्टिका एवं पर्णबन्ध युक्त हैं। जगती की विशाल रथिकाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। मूल प्रासाद में वेदिबंध पीठ की भांति है। इसे खुर, अंतरपत्र, पद्मपत्र युक्त जांग्यकुम्भ, कलष, तालपत्र, पर्णबंध व कपोतिका से अलंकृत किया गया है। वेदिका के ऊपरमण्डप के आसनपट्ट व कक्षासन का निर्माण है। आसनपट्ट के ऊपर भद्रक स्तम्भ का निर्माण किया गया है। धरणी का आश्रय देते मण्डप के स्तम्भ अर्द्धपद्म, कीर्तिमुख, घटपल्लव, पट्टिका एवं अलंकृत कोष्ठ से युक्त हैं। मण्डप के दोनों पार्श्व में सम्मुख मुख चतुष्की एवं भद्र मण्डप जोड़ने से इसका आकार महामण्डप का प्रतीत होता है। यह चारों आरे से खुला है। महामण्डप 50 फीट ऊंचा, 50 फीट लम्बा एवं 50 फीट ऊंचा है। महामण्डप का निर्माण 44 स्तम्भों पर किया गया है। ये स्तम्भ भव्य, सुन्दर एवं अलंकृत हैं। मन्दिर का प्रदक्षिणा पथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुला है, यह खजुराहो के मन्दिरों से भिन्न है। खजुराहो के मन्दिरों के प्रदक्षिणा पथ बन्द हैं। गर्भगृह की बाह्य भित्तियों पर सर्वत्र विभिन्न अष्टदिक्पाल, सप्तमातृका, सुर-संदरी, देवी-देवताओं, व्याल प्रतिमाओं, स्वतंत्र स्त्री-पुरुष प्रतिमाओं का अंकन किया गया है, जबकि गर्भगृह की आंतिरिक भित्तियां पूर्ण रूप से सपाट एवं सादा हैं। इनमें किसी प्रकार का कोई भी अलंकरण प्राप्त नहीं होता है। गर्भगृह की लम्बाई 13 फीट, चौड़ाई 13 फीट और ऊंचाई 20 फीट है। गर्भगृह की द्वारशाखा पर गंगा एवं यमुना के साथ-साथ अनेक ऋषियों की प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण की गई हैं। वर्तमान में मंदिर का शिखर जीर्णावस्था में है। इसकी ऊंचाई लगभग 100 फीट थी। मन्दिर का महामण्डप द्वितलीय था जिसके शिखर पर भी आमलक एवं कलश की स्थापना की गई थी। प्रतीत होता है कि यह खजुराहो के कंदरिया महादेव मन्दिर के समान बढ़ते शिखर की पद्धति पर बनाया गया देवालय था।

मुरैना जनपद मे बढ़ते कालक्रम के साथ जिन मन्दिरों का निर्माण किया गया वे वास्तव में मन्दिर स्थापत्य सम्बन्धी बढ़ती तकनीकि, कला एवं जानकारी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मन्दिर स्थापत्य के आरम्भिक चरण को नरेसर के मन्दिरों (7-9वीं सदी) में देखा जा सकता है, जो अत्यन्त साधारण रूप से बनाये गये हैं। उनके बाद अस्तित्व में आये बटेश्वर के मन्दिर (8-10 वीं सदी) समूह में गोपाद्रि शैली, फांसना शैली एवं पंचायतन शैली के साथ-साथ विख्यात भव्य नागर शैली के प्रारम्भिक दर्शन होने लगते हैं। ऊंची जगती, पूर्ण शिखर, अलंकृत रथिकाओं एवं द्वारशाखाओं के दर्शन यहां के मन्दिरों में भलिभांति होते हैं। इसके बाद 11वीं शताब्दी में निर्मित ककनमठ मन्दिर में नागर शैली की भव्यता को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। जिसमें वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताई गई मूल से शिखर तक की समस्त विशेषताओं को देखा जा सकता है। इस प्रकार मुरैना में मन्दिरों में नागर शैली की विकासयात्रा के क्रमबद्ध चरणों के दर्शन होते हैं।

मन्दिरों के निर्माण की परम्परा के साथ प्रतिहार एवं कच्छपघात कालीन मूर्तियाँ भी मुख्यतः मन्दिरों के ही विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण की गयीं, जिनमें मूर्तियों के उत्कीर्णन में 8वीं से 12वीं शताब्दी ई. तक स्थान का संयोजन विलक्षण है ये मूर्तियाँ मन्दिरों का स्वाभाविक अंग और स्थापत्य योजना में समाहित दिखायी देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार मूर्तिकला पूर्व मध्यकाल के संक्रमण काल की मूर्तिकला थी जिसमें एक ओर गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला परम्पराओं का प्रभाव क्षीण हो रहा था और दूसरी ओर क्रमश: मध्ययुगीन विशेषताएँ प्रभावी हो रही थीं इसी कारण प्रतिहार शैली की आठवीं और 10वीं शताब्दी ई० की मूर्तियों में जीवन्तता, सहजता, भावाभिव्यक्ति और लाक्षणिक विवरणों की दृष्टि से स्पष्टतः अन्तर दिखायी देता है। मुरैना जनपद के संदर्भ में गुर्जर प्रतिहार शासकों की मूर्तिकला का परवर्ती विकसित रूप कच्छपघात कालीन मूर्तियों में शैली और लक्षण दोनों ही स्तरों पर स्पष्ट है। क्षेत्र की दृष्टि से प्रतिहार शैली इतनी व्यापक रही है कि उनके प्रादेशिक या क्षेत्रीय भेद भी किए जा सकते हैं, किन्तु उनमें मुख्य विशेषताओं की दृष्टि से एकरूपता द्रष्टव्य है। यह एकरूपता आकृतियों के छोटे आकार, हल्की एवं सजीव तथा आनुपातिक शरीर रचना, संयत वस्त्राभूषण, भावपूर्ण मुद्राओं तथा नवीं शती ई० तक प्रतिमालाक्षणिक विवरणों की अतिशय वृद्धि से रहित होने में देखी जा सकती है। प्रतिहारों के समय में ब्राह्मणधर्म के देवी-देवताओं में शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य, ब्रह्मा, गणेश (सामान्य एवं नृत्य गणेश), दिक्पाल आदि की मूर्तियाँ बनीं।

मुरैना जनपद से प्रतिहार कालीन कला केन्द्रों से स्वतंत्र मूर्तियाँ ही प्राप्त होती है, यहाँ से संघाट प्रतिमाओ की प्राप्ति नहीं हुई है । जबकि अन्य समकालीन कला केन्द्रों पर संघाट प्रतिमाओं के निर्माण की परंपरा देखने को मिलती है, यथा - ओसियों के हरिहर मन्दिरों पर हरिहर मूर्तियों (नन्दी एवं गरुड वाहनों वाली चतुर्भुज और समभंग मूर्तियों में सामान्यतः करों में अभयमुद्रा, त्रिशूल (शिव), चक्र और शंख (विष्णु) दिखाया गया है) की प्रधानता प्रतिहारों की समन्वयात्मक दृष्टि की साक्षी हैं। हरिहर के अतिरिक्त ओसियाँ तथा आभानेरी एवं अन्य स्थलों से अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ओसियाँ में प्रतिहारों के बाद के 10वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध के विष्णु मन्दिरों पर हरिहर- हिरण्यगर्भ स्वरूप की कई मूर्तियाँ भी हैं जो प्रतिहारकालीन संघाट मूर्तियों की परम्परा के विकास को दर्शाती हैं। यह अत्यंत ही आश्चर्य का विषय है कि बटेश्वर एवं नरेसर जैसे विशाल मंदिर समूह में संघात मूर्तियों का निर्माण नही किया गया था।

मुरैना जनपद की गुर्जर प्रतिहार मूर्तिकला शैली और विषयवस्तु दोनों ही दृष्टियों से गुप्तकालीन मूर्तिकला का परवर्ती विकास दर्शाती है जिसमें गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला परम्परा को काफी सीमा तक जीवित रखा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सन्तुलित अंग-रचना वाली यहाँ की मूर्तियों में किंचित् लघु आकार किन्तु क्षीण काया सहज और स्वाभाविक शारीरिक चेष्टाओं वाली दिखायी गयी हैं। प्रतिहार मूर्तियों में वस्तुतः नयी स्फूर्ति के साथ मूर्तियों को अभिव्यक्त किया गया है जो कुछ सीमा तक परवर्ती गुप्तकालीन मूर्तियों से सौम्य सहज भाव और अलंकरणों की दृष्टि से अधिक ओजस्वी हैं। मूर्तियों की शरीर रचना में पहले की अपेक्षा चौड़ाई या घनत्व अधिक दिखायी देता है। नरेसर, चांचुल और बटेश्वर मंदिर समूह जैसे बड़े कलकेन्द्रों पर भी विशाल आकारवाली मूर्तियाँ नहीं बनीं और इस प्रकार मानवेतर या महाकाय आकृतियों के स्थान पर सामान्य मानवाकार मूर्तियों के माध्यम से देवत्वभाव को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार गुप्तकालीन परम्परा के अनुरूप ही मुरैना की प्रतिहार कला में भी मानव स्वरूप की प्रधानता रही है जो देव तथा सामान्य मानव आकृतियों दोनों में द्रष्टव्य है।

मुरैना जनपद के मंदिरों पर खजुराहो, हलेबिड, बेलूर, कोणार्क और आबू के मध्यकालीन मन्दिरों के समान बहुत अधिक संख्या में नहीं उकेरी गई। तथापि प्रतिहार मूर्तिकला में ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध देवमूर्तियों के अतिरिक्त समुद्रमन्थन जैसे पौराणिक दृश्य (चांचुल), अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, प्रवेशद्वार पर गंगा, यमुना, द्वारपाल, विद्याधर, गन्धर्व, नाग या नागिनी (बटेश्वर), प्रेमी युगल (चाँचुल), कीर्तिमुख तथा जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित लौकिक विषयों और ऋषियों की भी आकृतियाँ बनीं। इस प्रकार सम्पूर्ण देव, मानव, पशु और प्रकृति जगत् को प्रतिहार शिल्पी ने विराट् सन्दर्भ में एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है, जो ऋग्वेद के 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' वाक्य के अनुरूप है। ककनमठ मंदिर मूर्तिकला की दृष्टि से समृद्ध है। इस मंदिर में राजपूत कालीन मूर्तिकला परम्परा का पूर्ण प्रवाह देखने को मिलता है। खजुराहो की भांति मंदिरों का स्थापत्य एवं विभिन्न अंगोपांग पर मूर्तियों का निर्माण ककनमठ में किया गया है। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों के दर्शन ककनमठ में किये जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

1. ऋग्वेद : पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी, जिला बलसाड़, गुजरात, 2000
2. अग्निपुराण : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2014
3. भविष्य पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, 2016
4. मत्स्यपुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर, 2017
5. मार्कण्डेयपुराण : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1996
6. लिंगपुराण : देववाणी प्रकाशन, लखनऊ, 2002
7. वायुपुराण : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2005
8. विष्णुधर्मोत्तर : आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी (सम्पा.), चौखम्बा सुरभारती पुराण प्रकाशन, वाराणसी, 2016
9. स्कन्दपुराण : प्रथम माहेश्वरखण्डम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2014

अन्य ग्रन्थ

1. अपराजितपृच्छा : भुवनदेवकृत, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, 1950
2. देवमूर्ति प्रकरण : न्यू भारती बुक कॉर्पोरेशन (पुनर्मुद्रित), दिल्ली, 2003
3. बृहत्संहिता : वराहमिहिरकृत, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1949
4. महाभारत : एस. विष्णु सुवथांकर (सम्पादक), भण्डारकार ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1933
5. रूपमण्डन : लोकचेतना प्रकाशन, इंदौर, 2016
6. समरांगणसूत्रधार : भोजदेवकृत गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बडौदा, 1929

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक ग्रन्थ हिन्दी

1. अग्रवाल, पृथ्वीकुमार, प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2002
2. अग्रवाल, पृथ्वीकुमार, गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, बुक्स एशिया पब्लिकेशन, वाराणी, 1994
3. अग्रवाल, वासुदेवशरण, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1955
4. अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएं, ओरियण्टल पब्लिशिंग हाउस, सिविल लाइन्स, आगरा, 1967
5. उपाध्याय, वासुदेव, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, 1952
6. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1972
7. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वमध्यकालीन भारत, भारत दर्पण ग्रन्थमाला, लीडर प्रेस, प्रयाग, 1952
8. कुमार, प्रतिमा, मध्य प्रदेश: एक भौगोलिक अध्ययन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2003
9. गुप्त, जगदीश चन्द्र, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1960
10. गौरी, गुलाब खां, ग्वालियर का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, 1886
11. जायसवाल, काशीप्रसाद, अंधकार युगीन भारत, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत् 1995
12. जोषी, नीलकण्ठ पुरूषोत्तम, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2000
13. तिवारी, मारुतिनन्दन, मध्यकालीन भारतीय प्रतिमा लक्षण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997
14. तिवारी मारुतिनन्दन, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991
15. तिवारी, पुष्पा, प्राचीन भारतीय आभूषण, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992
16. द्विवेदी, शिवाकांत, भारतीय वास्तु एवं कला के मूल तत्व, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

17. द्विवेदी, हरिहर निवास, ग्वालियर राज्य के अभिलेख, मध्य भारत पुरातत्त्व विभाग, ग्वालियर, 1947
18. द्विवेदी, हरिहर निवास, ग्वालियर दर्शन, साधना प्रेस, ग्वालियर, 1980
19. दीक्षित, डॉ0 मोरेश्वर, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व की रूपरेखा, सागर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश, 1954
20. प्रधान, शैल, भारतीय कला में वैष्णव परमपरा, नेशनल सेण्टर फॉर ओरियन्टल स्टडीज, दिल्ली, 1992
21. पाठक, विशुद्धानन्द, उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, हिन्दी समिति उत्तरप्रदेश, लखनऊ, 1977
22. पुरी, बी. एन., द हिस्ट्री ऑफ द गुर्जर प्रतिहाराज, बम्बई
23. भट्टाचार्य, पी. के., हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ मध्यप्रदेश, दिल्ली, 1977
24. मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग, 1950
25. मिश्र, आर. एन. व शर्मा, एस. डी., प्राचीन ग्वालियर के सीमांतों के पुरातात्त्विक, पुरातन - भौगोलिक एवं ऐतिहासिक आधार, ग्वालियर दर्शन, ग्वालियर, 1980
26. राय, गोविन्द चन्द्र, वैदिक युगीन भारतीय आभूषण, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1997
27. वर्मा, डॉ. राजकुमार, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1974
28. वाकणकर, वी. एस., ग्वालियर क्षेत्र के शैलाश्रयीन चित्र, ग्वालियर दर्शन, ग्वालियर, 1980
29. वाजपेयी, अमित, मध्यप्रदेश के नागवंषीय सिक्के, हिन्दी संस्थान, मध्यप्रदेश, भोपाल।
30. वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1972
31. सहाय, सच्चिदानन्द, मन्दिर स्थापत्य का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1981
32. सिन्हा, वी. के., कच्छपघात राजवंश के नवीन अभिलेख, ग्वालियर दर्शन, 1980
33. सोमपुरा, प्रभाषंकर ओ., भारतीय शिल्पसंहिता, सौमैया पब्लिकेशंस प्रा. लि.,मुम्बई, 1975
34. शर्मा, डी. पी., आसन के अंचल में प्रागैतिहासिक मानव की कला साधना, ग्वालियर, 1980
35. शर्मा, राजकुमार, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का सन्दर्भ ग्रन्थ, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मालवीय नगर, भोपाल, 1974
36. त्रिवेदी, संजीव, मध्य भारत की गुर्जर प्रतिहार कला, आगम कला प्रकाशन, दिल्ली, 2012

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

37. त्रिवेदी, सुधीर कुमार, मध्यभारत की प्रतीहारकालीन कला एवं स्थापत्य, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994

38. श्रीवास्तव, शशिबाला, 'भारतीय मन्दिर एवं मूर्तियाँ', रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली, 1989

सहायक ग्रन्थ अंग्रेजी

1. Acharya, P.K., Indian Architecture: According to Mansara- Silpasastra, Mansara series Vol. II, Oriental Books reprint corporation, New Delhi, 1981.
2. Agnihotri, P.D. Khajuraho: The Pride of Madhya Pradesh, New Delhi, 1974.
3. Ali, Rahman, Prtihara Art in India, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1986.
4. Bhandarkar, R.G., Vaishnavsim and shaivism and other Religious System, Asian Educational Service, New Delhi, 1928.
5. Bhattacharya, Pranab Kumar, Historical Geography of Madhyapradesh, Motilal Banarasidas, New Delhi, 1977
6. Champakalakshmi, R., The Hindu Temple, Roli Books International, New Delhi, 2002.
7. Chandra, Pramod, The Sculpture in India, National Gallary of Art, Washington, 1985
8. Chandra, Pramod, Study in Indian Temple Architecture, American Instute of Indian studies, Bombay, 1975
9. Coomarswamy, A.K. Essay in Early Indian Architecture, Oxford University Press, New Delhi, 1992.
10. Dikshit, R. K., Chandelas of Jejakbhukti, Abhinav Publication, New Delhi, 1977
11. Dwivedi, Shivakant., Temple Sculpture of India, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1991
12. Dwivedi, Shivakant,
13. Ghurye, G.S. Rajput Architecture, Popular Prakashan, Bombay, 1968.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14. Gupta, S.P., Elements of Indian Art, D. K. Printworld (P)Ltd, New Delhi, 2002
15. Kramrisch, Stella, The Hindu Temple, Vol I&II, University of Calcutta, 1946
16. Krishnadev, Temples of North India, National Book Trust, New Delhi, 1969
17. Krishnadev & Dhuky, M. A., Encyclopedia of Indian Temple Architecture, American Instute of Indian studies, New Delhi, 1998
18. Kumar, Pushpendra, Shakti Cult in Ancient India, Bhartiya Publishing House, Varanasi, 1974
19. Munshi, K.M., glory that was gurjar desa, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay, 1954
20. Patil, D.R., The Cultural Heritage of Madhyabharat, Department of Archaeology Government of Madhya Bharat, Gwalior, 1952
21. Puri, B.N., 1957. The History of the Gurjara-Pratiharas, department of Ancient Indian History Culture and Archaeology, Lucknow University, Lucknow, 1937
22. Rao, Gopinath, Elements Of Hindu Iconography, The Law Printing House, Madras, 1914
23. Tripathi, R.S., History of Kannauj, Motilal Banarasidas, Delhi, 1936
24. Trivedi, R.D., Temples of the Pratihara Period in Central India, Archaeological Survey of India, New Delhi, 1990.
25. Vajpayi, K.D., History and Culture of Madhyapradesh, B. J. Institute of Learning, Ahemdabad, 1984

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र संकलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

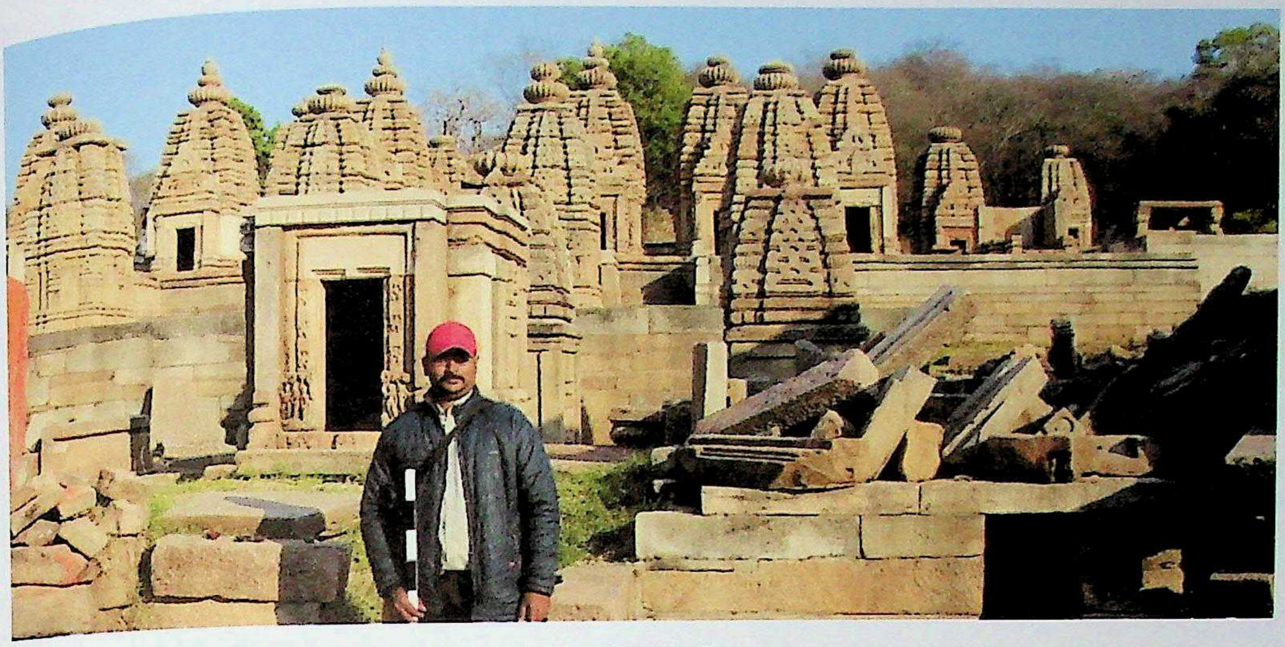

चित्र सं 1 - बटेश्वर मंदिर समूह

चित्र सं 2 – बटेश्वर के लघु मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 3- द्वितीय श्रेणी के मंडप युक्त मंदिर, बटेश्वर

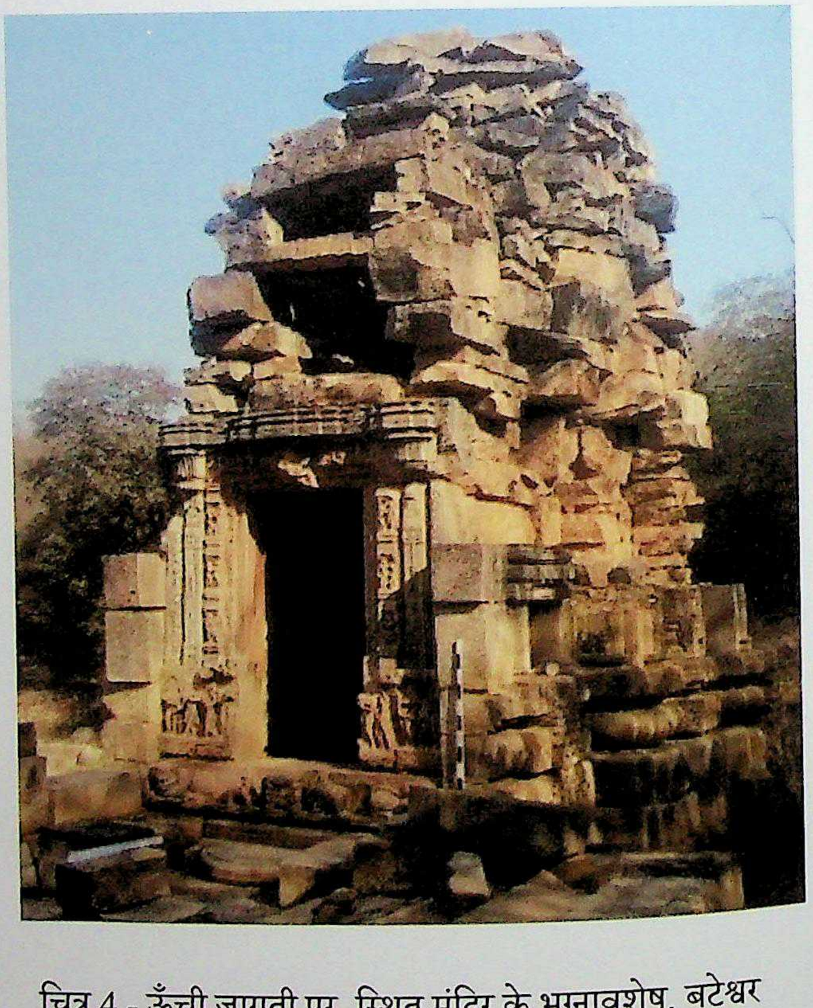

चित्र 4 - ऊँची जागती पर स्थित मंदिर के भग्नावशेष, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 5 - भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

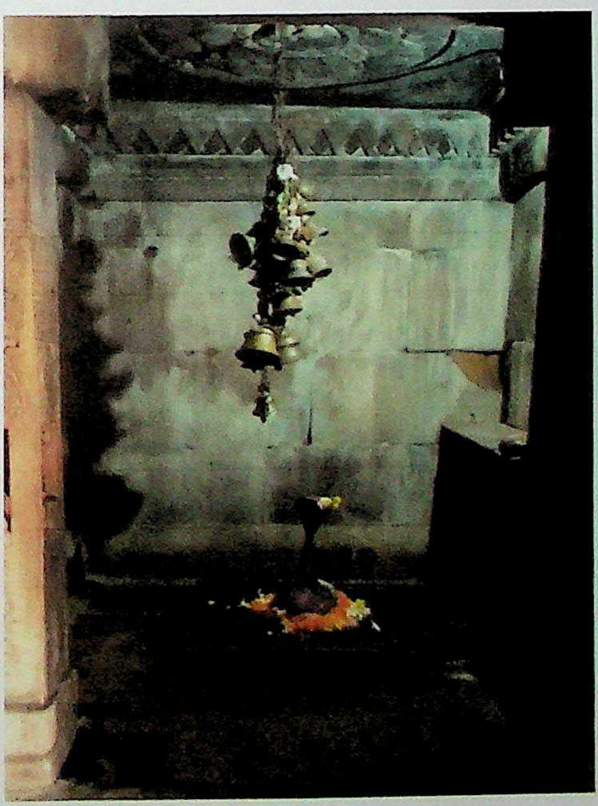

चित्र 6 – गर्भगृह, भूतेश्वर मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 7 – सरोवर किनारे स्थित नरेसर के लघु आकार के मंदिर

चित्र 8 – गर्भगृह की संरचना, नरेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

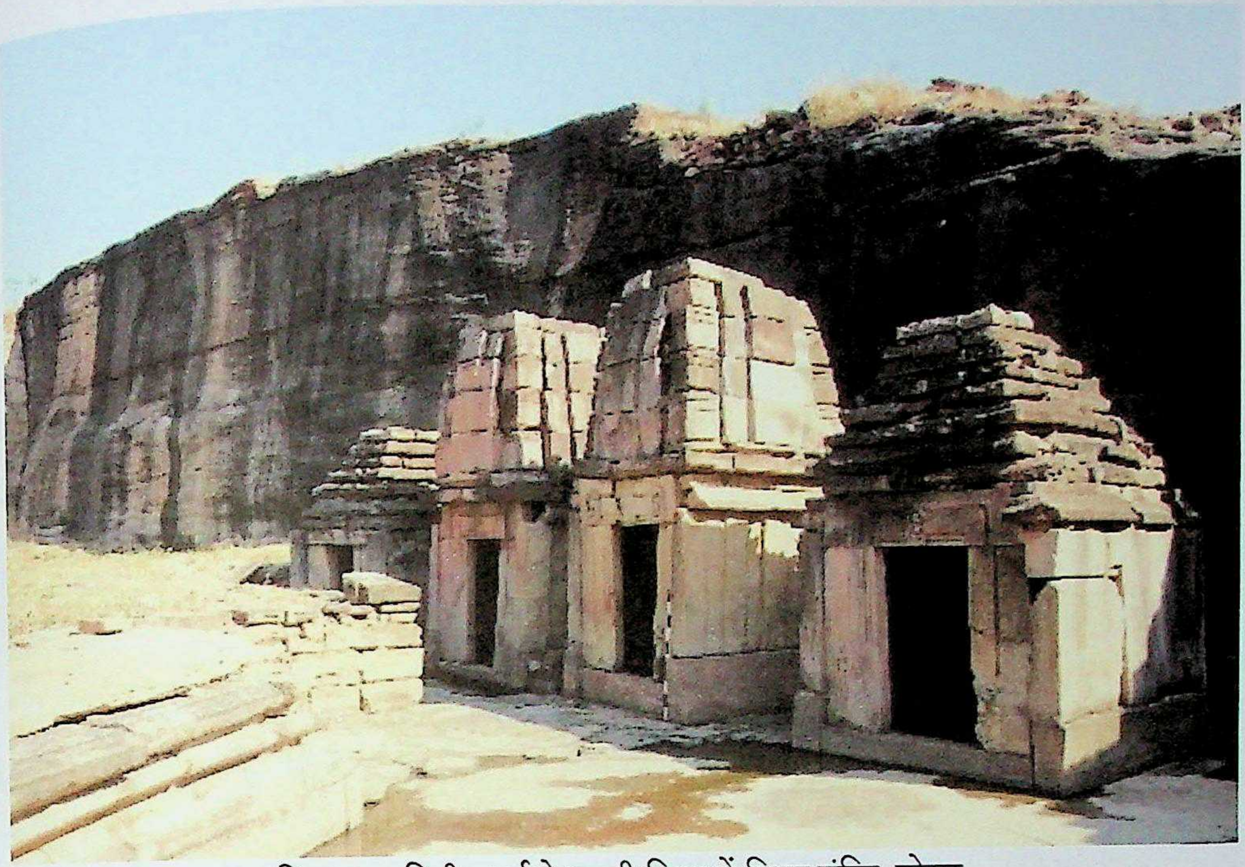

चित्र 9 – द्वितीय वर्ग के उत्तरी दिशा में स्थित मंदिर, नरेसर

चित्र 10 – ललाट बिम्ब पर गणेश का अंकन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 11 – तृतीय वर्ग के ऊंचे शिखर वाले मंदिर, नरेसर

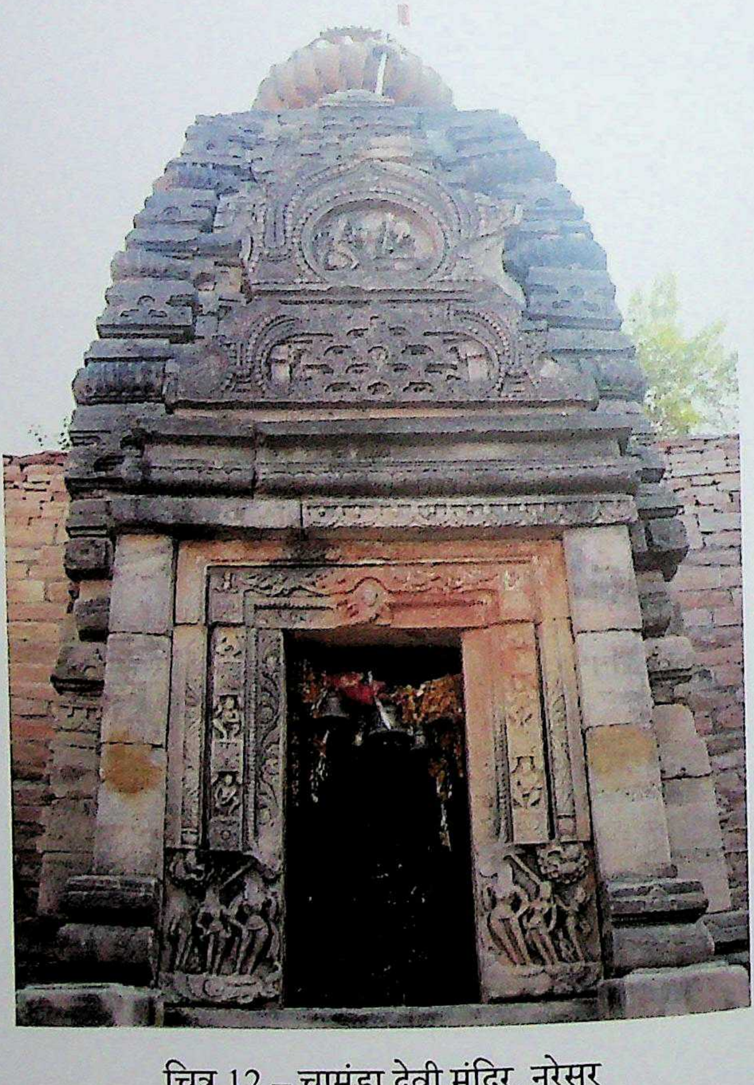

चित्र 12 – चामुंडा देवी मंदिर, नरेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

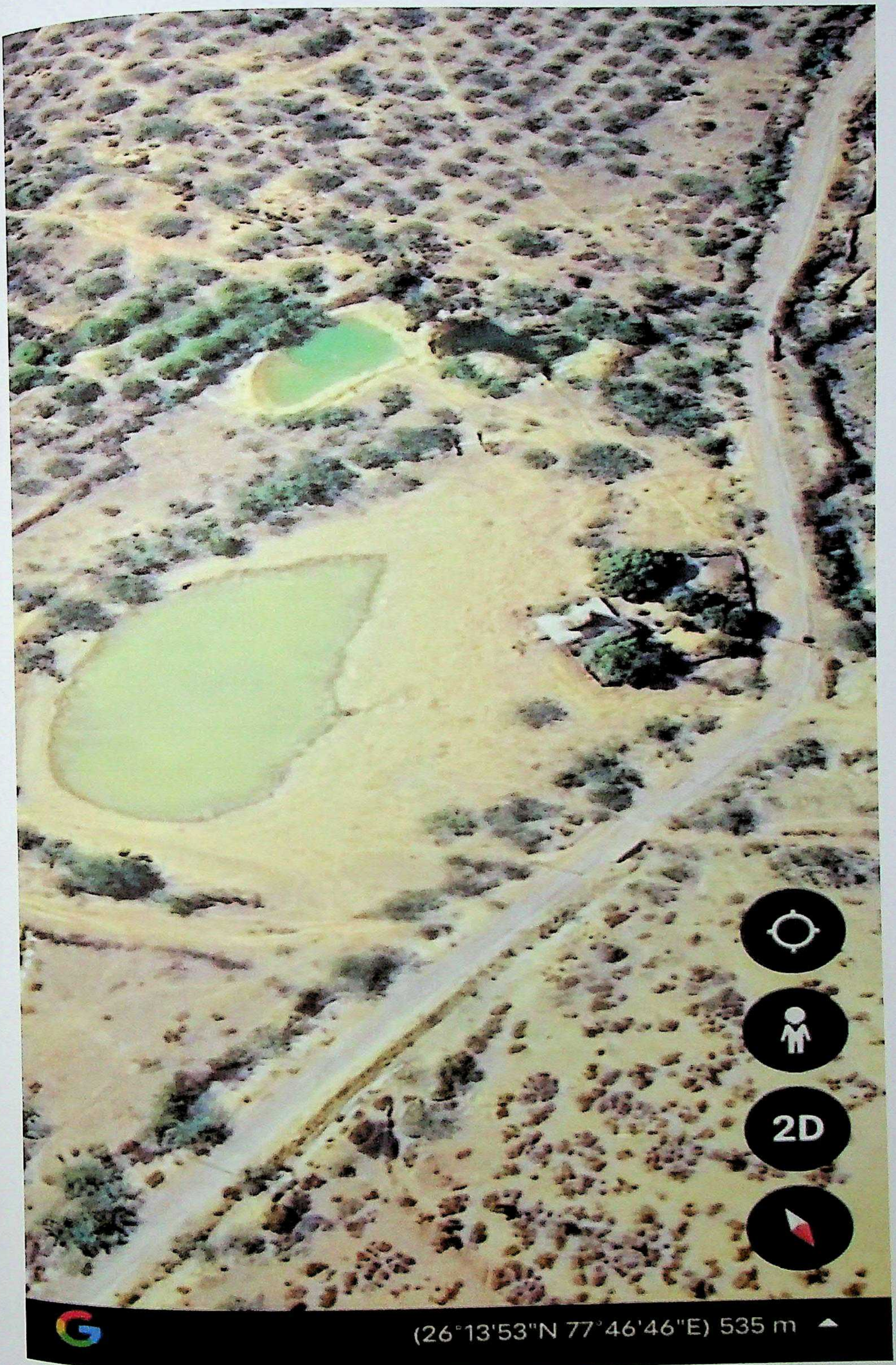

चित्र 13 - चांचुल ग्राम स्थित शिव मंदिर का स्थिरांक विवरण चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

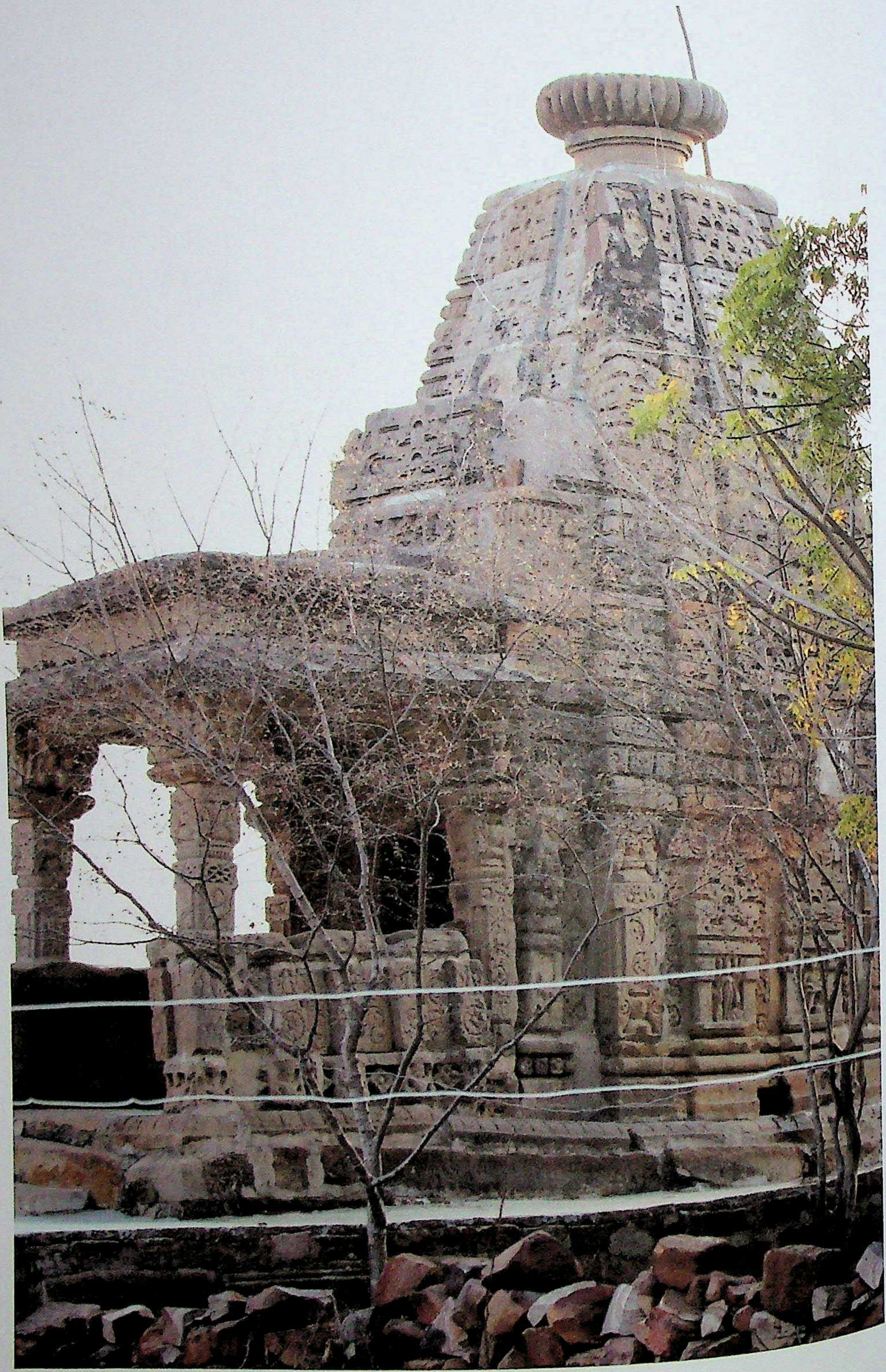

चित्र 14 – चांचुल ग्राम स्थित शिव मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 15 – भद्र, भोग एवं ब्रह्मपीठ युक्त शिवलिंग, बटेश्वर

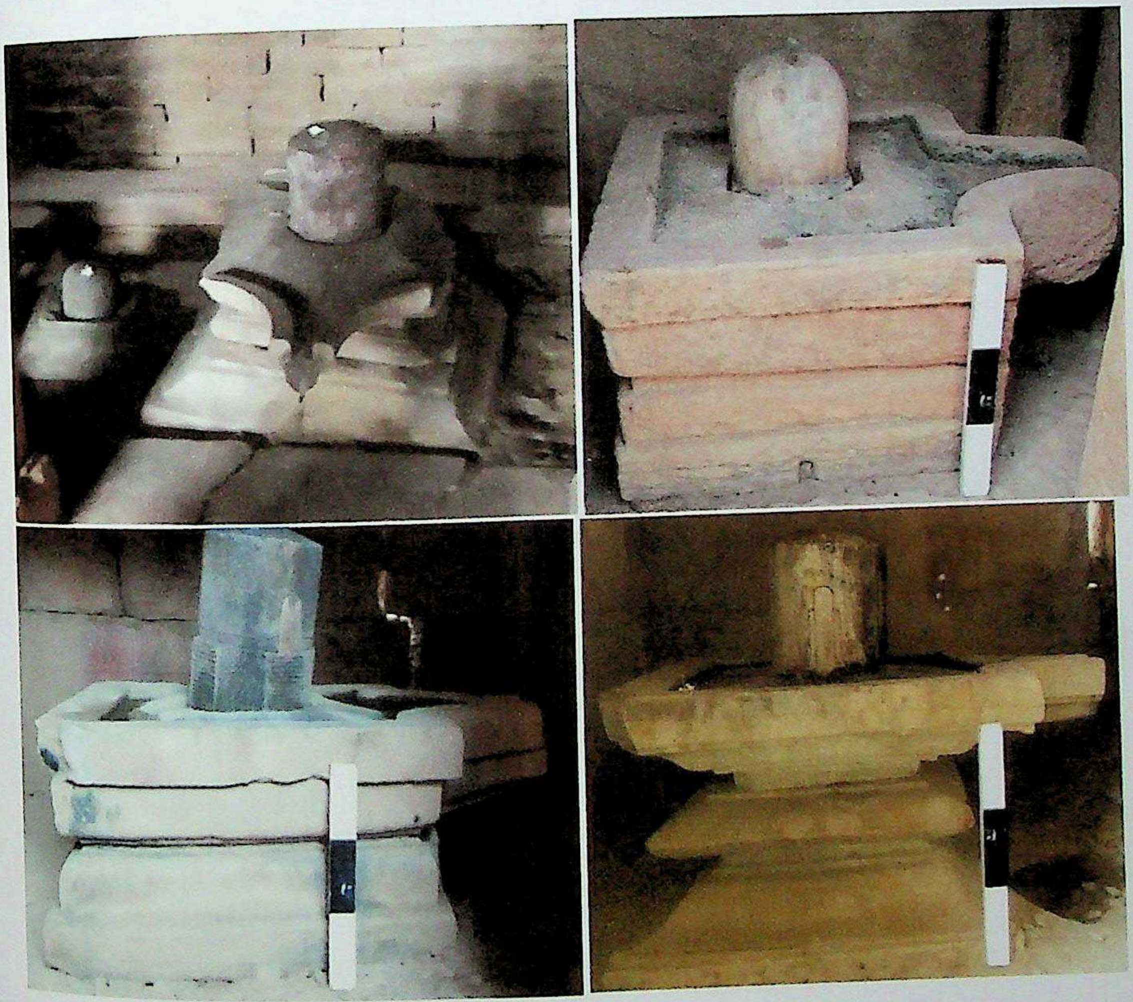

चित्र 16 – ऊंची योनि से युक्त शिवलिंग, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

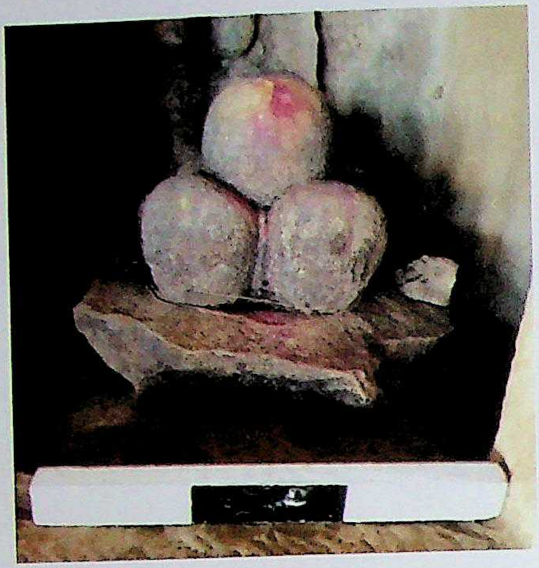

चित्र 17- पंचमुखी शिवलिंग, बटेश्वर

चित्र 18- जटाजूट आकृति का भद्रपीठ युक्त शिवलिंग, बटेश्वर

चित्र 19- चौदह शिवलिंगों से युक्त योनिपीठ, नरेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

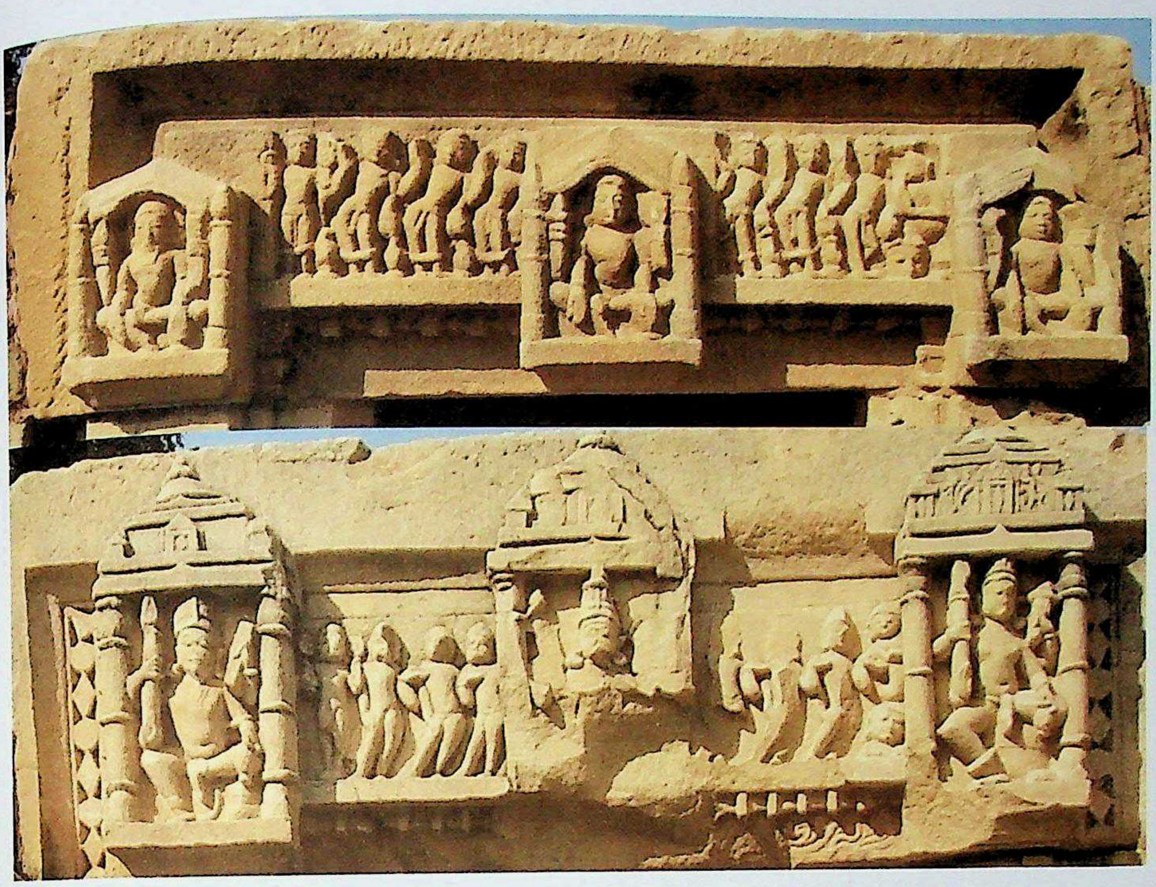

चित्र 20 – द्वारशाखा पर अंकित शिव का मानवरूप, बटेश्वर

चित्र 21 – वीरभद्र, बटेश्वर

चित्र 22- लकुलीश, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

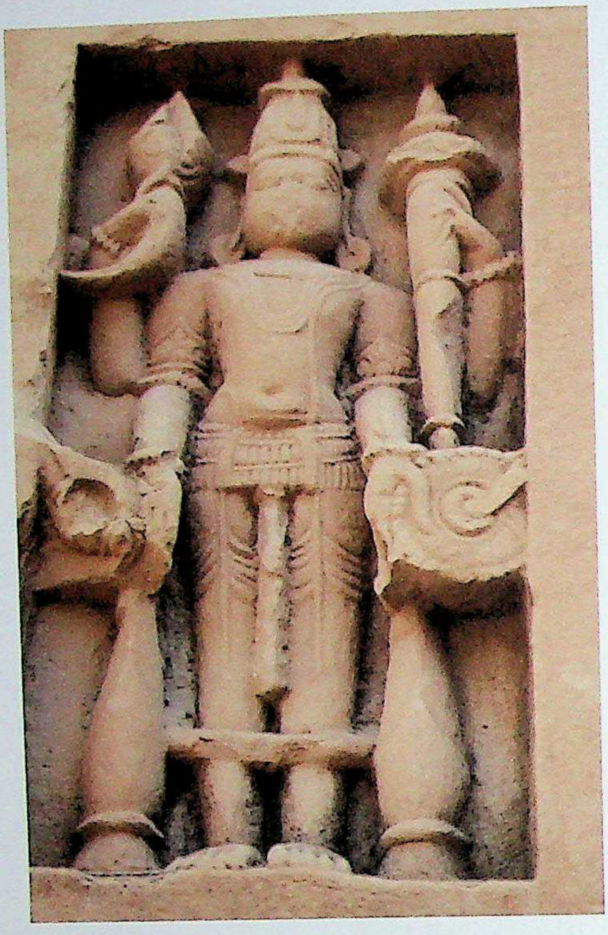

चित्र 23 - स्थानक विष्णु, नरेसर

चित्र 24 - गरुड़ासीन विष्णु, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

चित्र 25 - आसनस्थ विष्णु, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

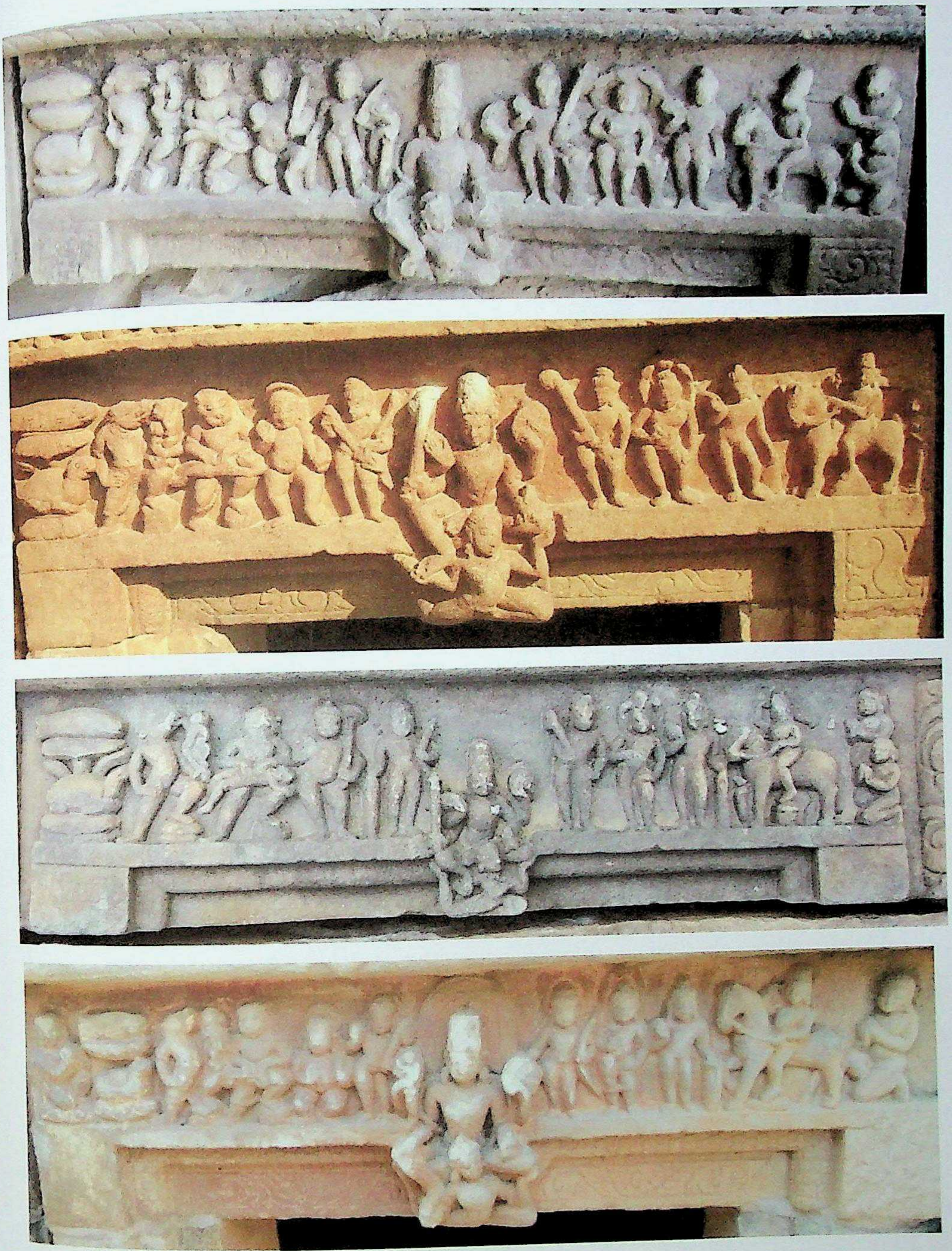

चित्र 26 - दशावतार फलक, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

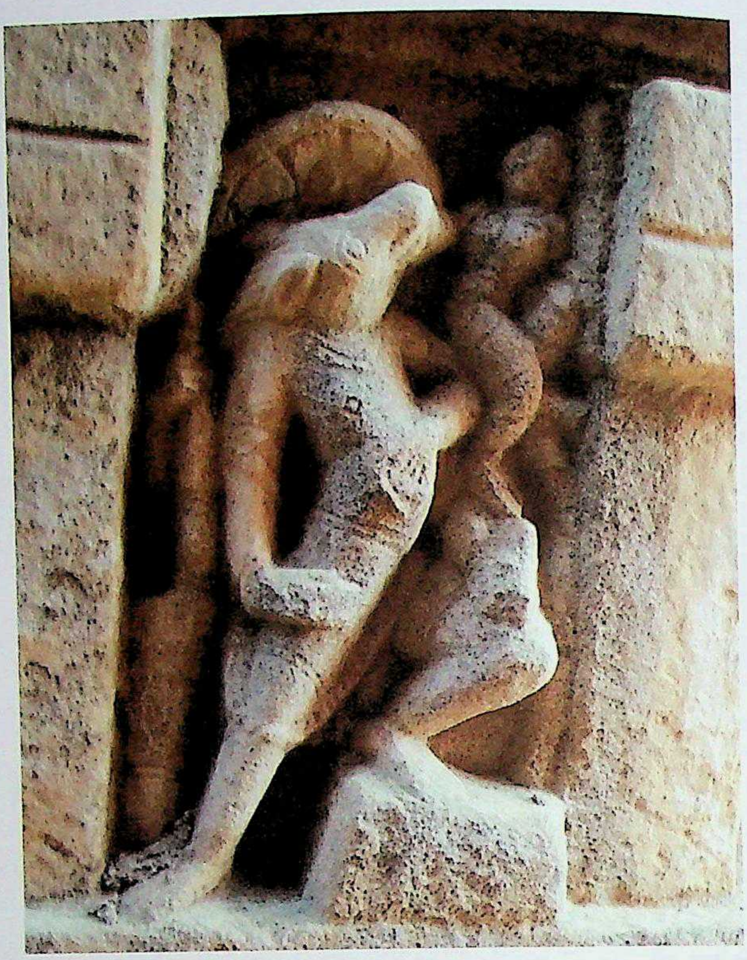

चित्र 27 - नृवराह अवतार, बटेश्वर

चित्र 28 – कृष्ण जन्म, चांचुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

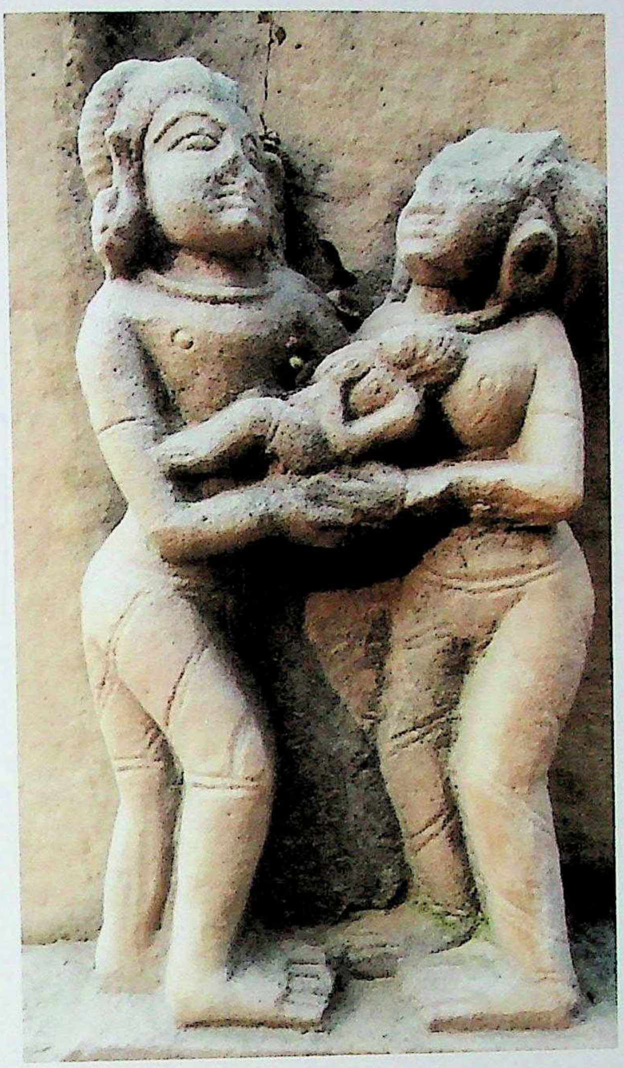

चित्र 29 – वसुदेव को नवजात शिशु कृष्ण सौंपती हुई देवकी, बटेश्वर

चित्र 30 – दधि मंथन, चांचुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 31 – पूतना वध, बटेश्वर

चित्र 32 – गोवर्धन धारण, चांचुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 33 – तृणावर्त वध, बटेश्वर

चित्र 34 – प्रलंबासुर वध, बटेश्वर

चित्र 35 – अरिष्टासुर वध, बटेश्वर

चित्र 36 – केशी वध, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 37 – सूत लोमहर्षण वध, बटेश्वर

चित्र 38 – तपस्यारत पार्वती, बटेश्वर

चित्र 39 – महिषासुरमर्दिनी, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 40 – सप्तमातृका फलक, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 41 – द्विभुजी स्थानक गणेश, बटेश्वर

चित्र 42 – अष्टभुजी नृत्यरत गणेश, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

चित्र 43 – षटभुजी नृत्यरत गणेश, बटेश्वर

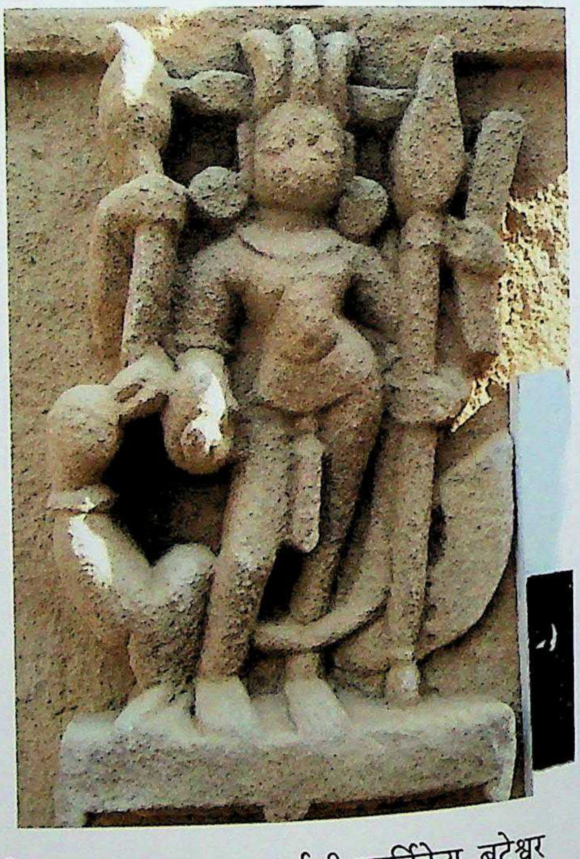

चित्र 44 – स्थानक चतुर्भुजी कार्तिकेय, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 45 – मयूरासीन चतुर्भुजी कार्तिकेय, बटेश्वर

चित्र 46 – नवग्रह फलक, बटेश्वर

चित्र 47 – सूर्य, बटेश्वर

चित्र 48 – सूर्य, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 49 – सूर्य , बटेश्वर

चित्र 50 – इन्द्र, भूतेश्वर मन्दिर, बटेश्वर

चित्र 51 – अग्नि, भूतेश्वर मंदिर, बटेश्वर

चित्र 52 – यम, भूतेश्वर मन्दिर, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 53 – वरुण, बटेश्वर

चित्र 54 – वायु, बटेश्वर

चित्र 55 – कुबेर, बटेश्वर

चित्र 56 – ईशान, बटेश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

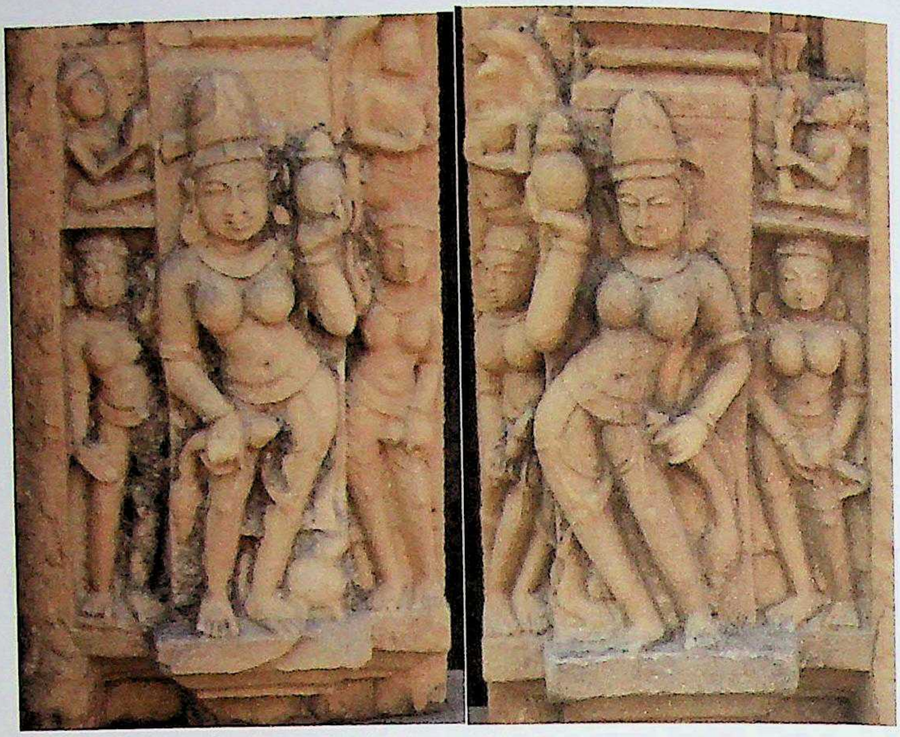

चित्र 57 – गंगा-यमुना, बटेश्वर

चित्र 58 – ककनमठ मंदिर, सिहोनिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 59 – स्तंभों पर आधारित मंडप एवं शिखर,ककनमठ मंदिर

चित्र 58 – मुख्य मंदिर के बाहर स्थित मंदिर के भग्नावशेष, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

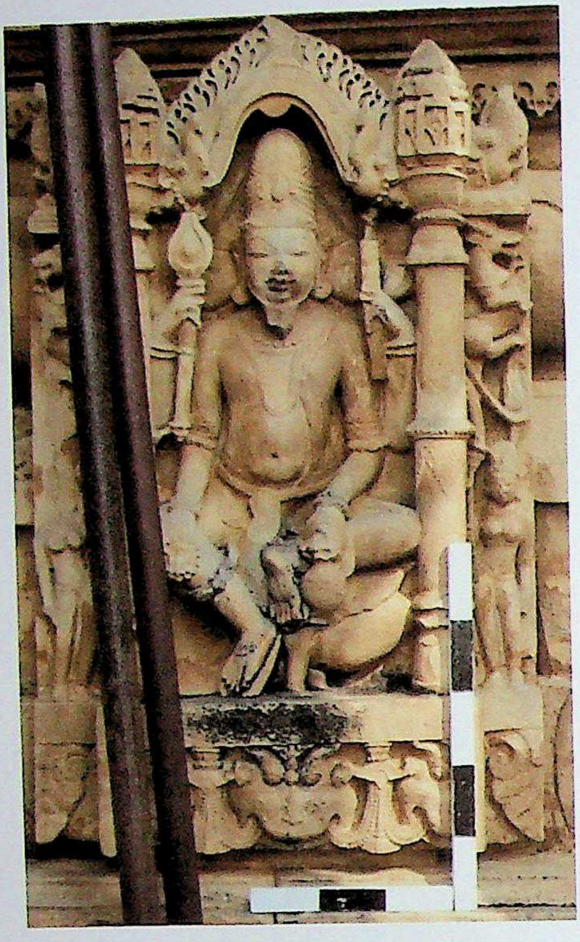

चित्र 59 –ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

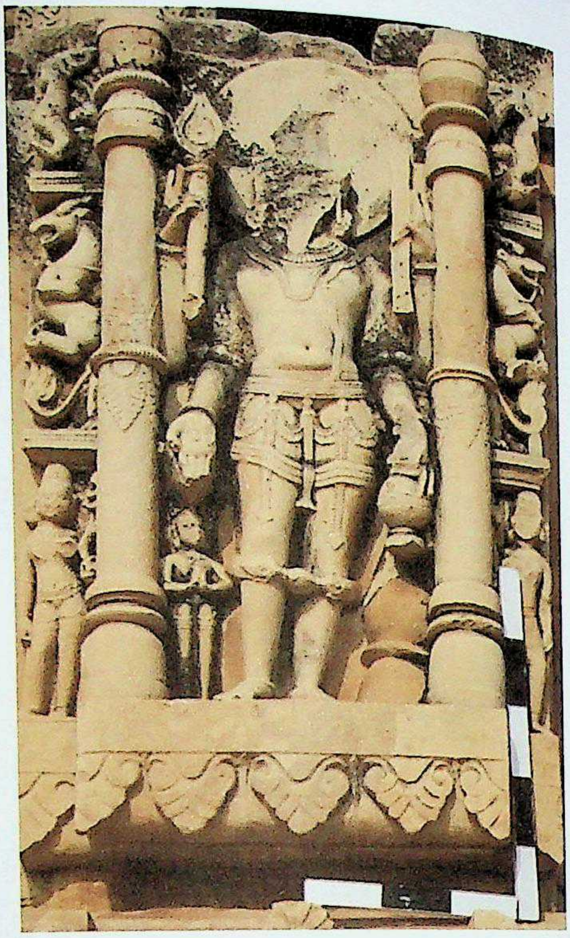

चित्र 60 –ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

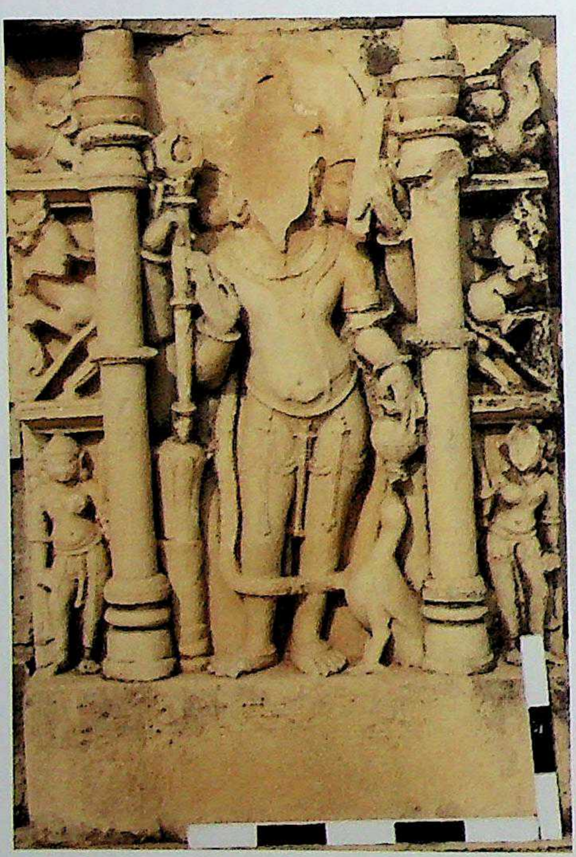

चित्र 61 –ब्रह्मा, ककनमठ मंदिर

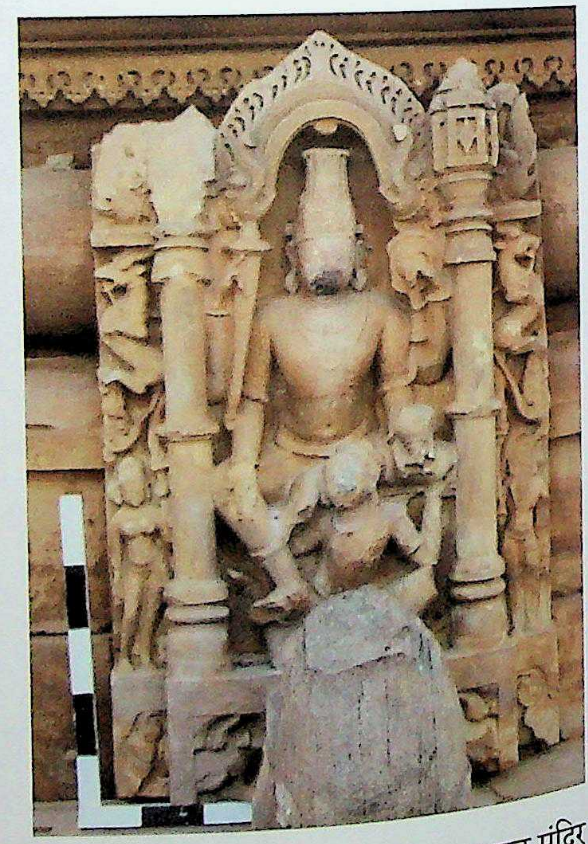

चित्र 62 –विष्णु,ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

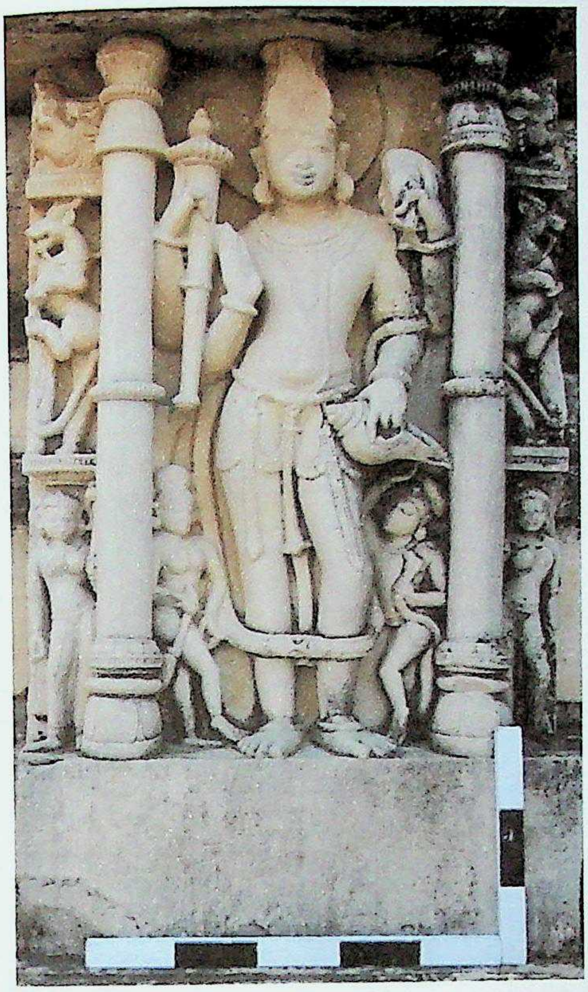

चित्र 63 –विष्णु,ककनमठ मंदिर

चित्र 64 –गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग,ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

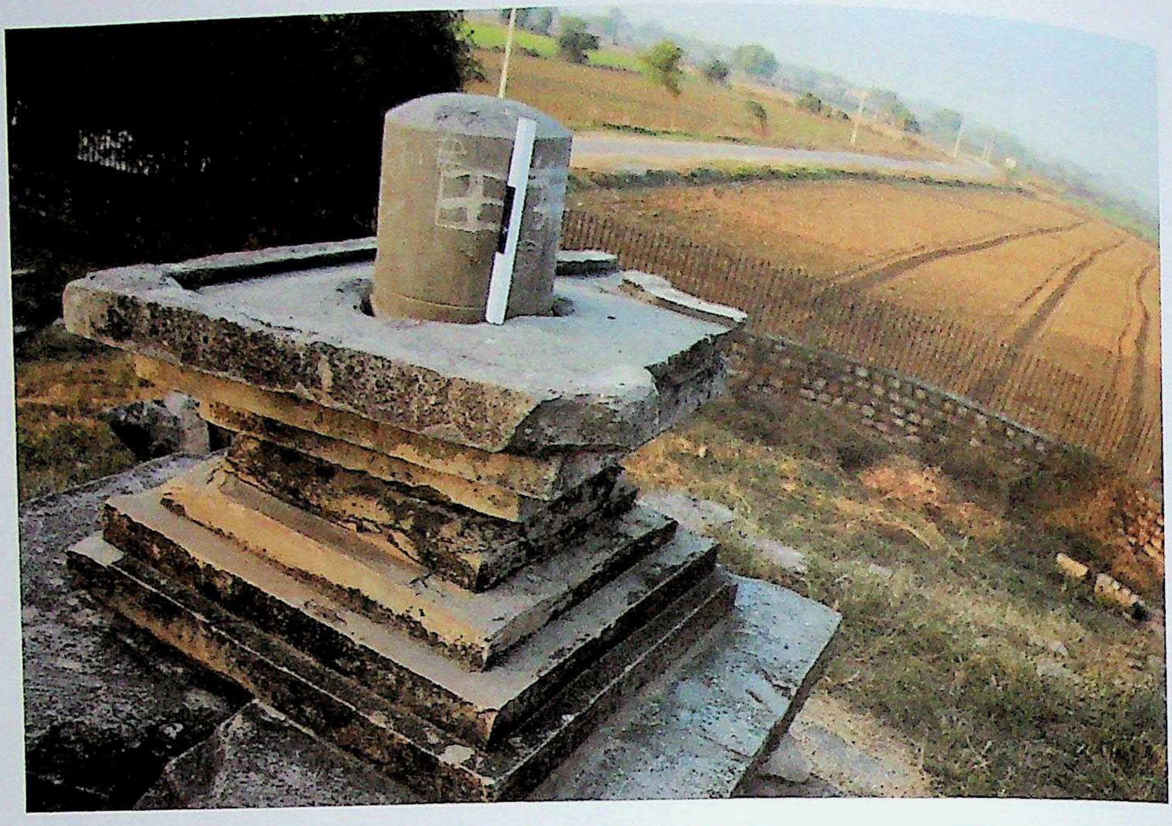

चित्र 65 –मंदिर के भग्नावशेषों पर स्थित शिवलिंग,ककनमठ मंदिर

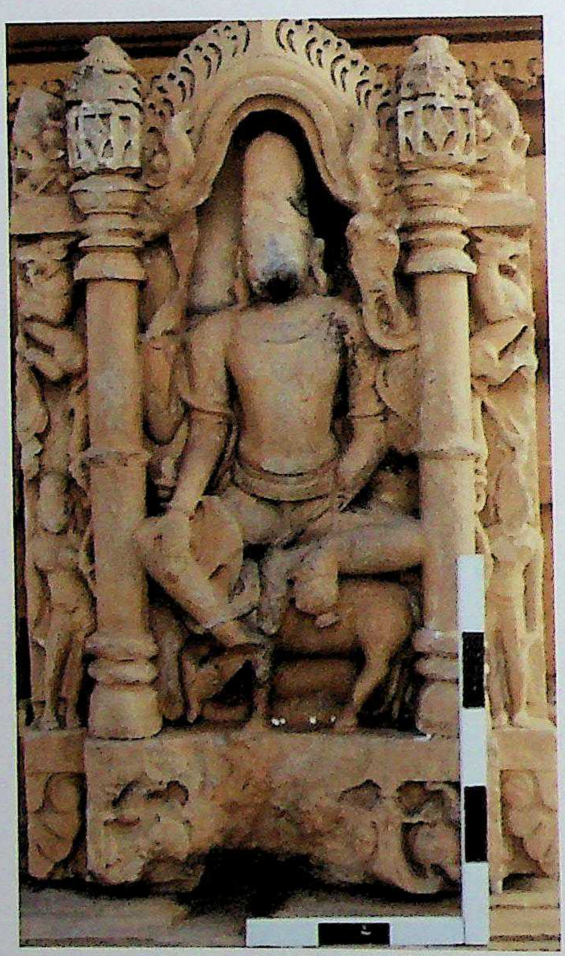

चित्र 66 –आसनस्थ शिव,ककनमठ मंदिर

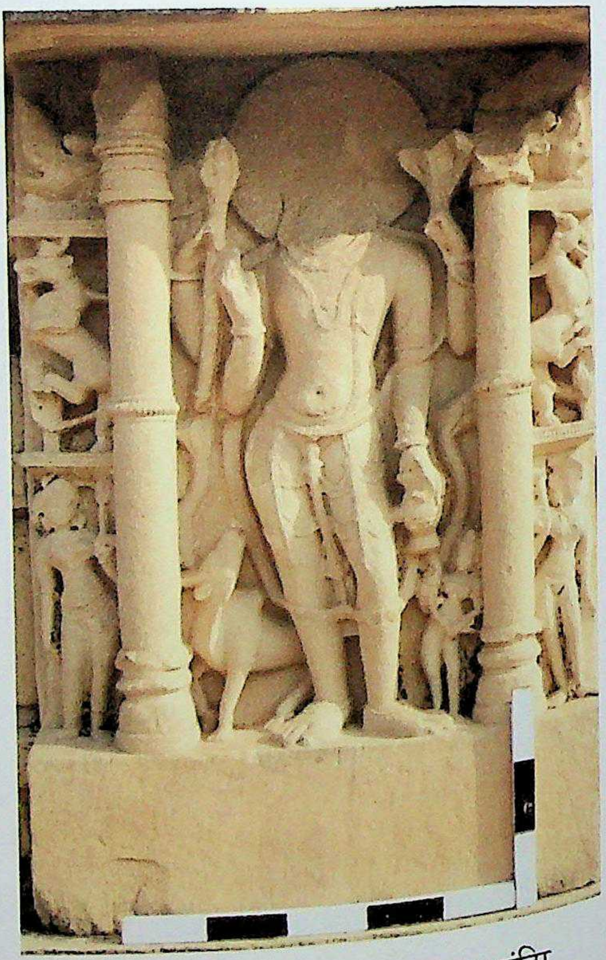

चित्र 67 –स्थानक शिव, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

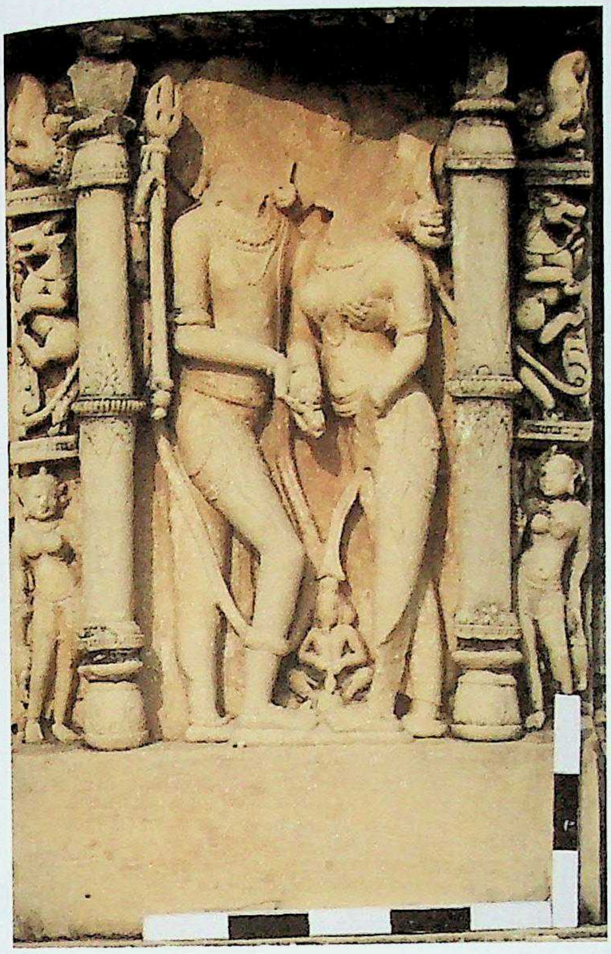

चित्र 68 –पार्वती परिणय मूर्ति,ककनमठ मंदिर

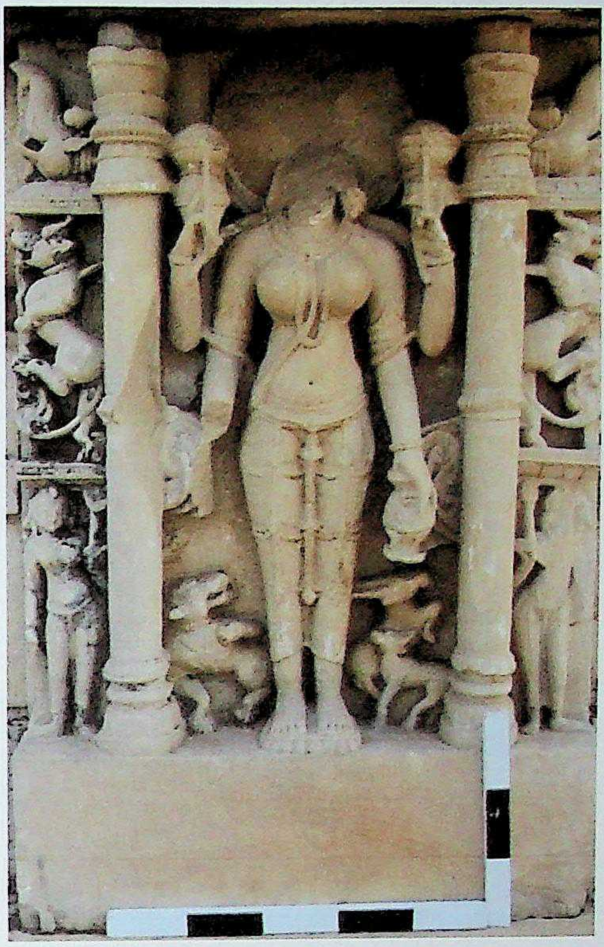

चित्र 69 –पार्वती,ककनमठ मंदिर

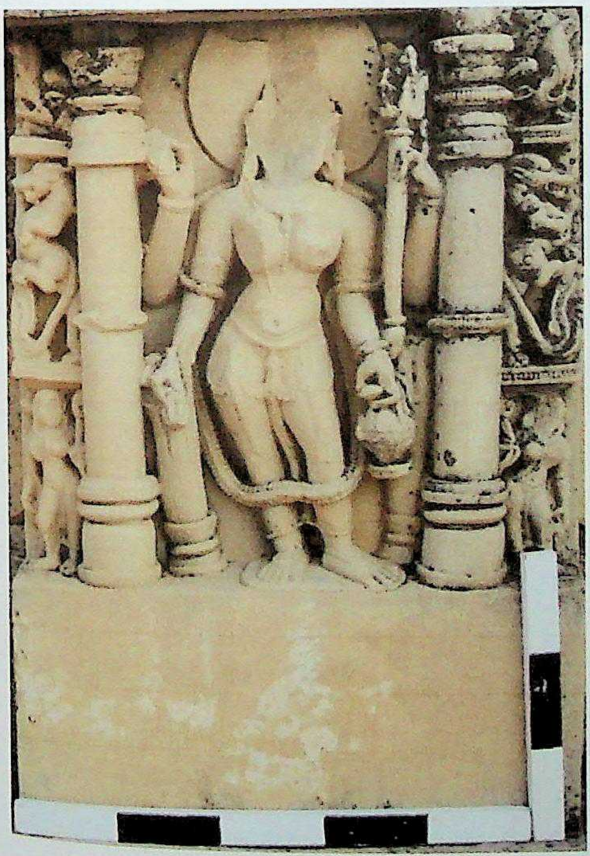

चित्र 70 –माहेश्वरी, ककनमठ मंदिर

चित्र 71 –माहेश्वरी,ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 72 –माहेश्वरी,ककनमठ मंदिर

चित्र 73 – दुर्गा ,ककनमठ मंदिर

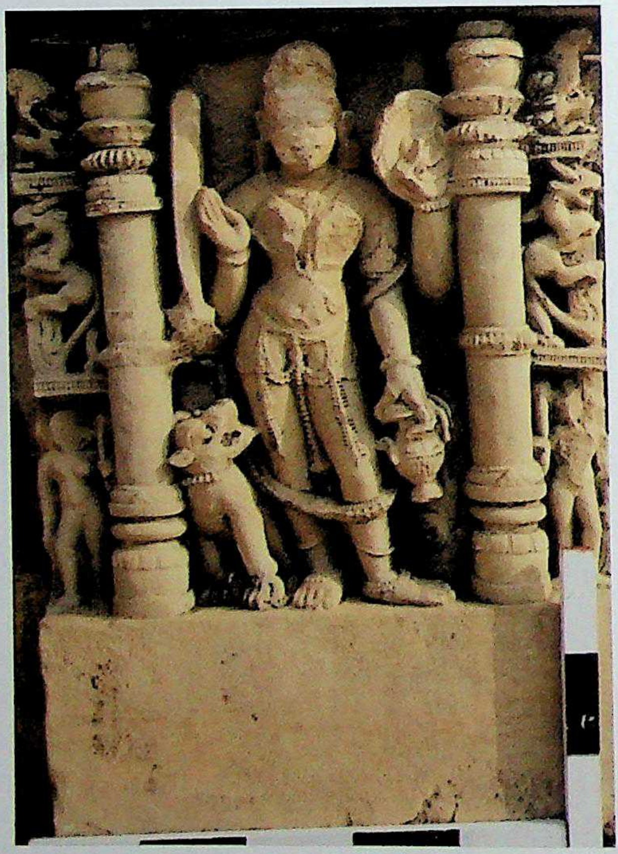

चित्र 74 –दुर्गा,ककनमठ मंदिर

चित्र 75 – दुर्गा,ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

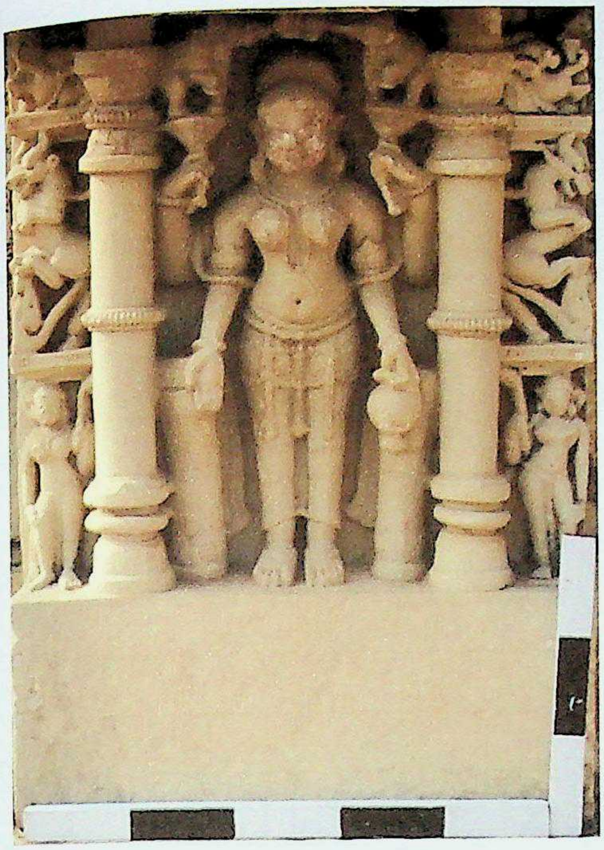

चित्र 76 –गजलक्ष्मी, ककनमठ मंदिर

चित्र 77 – सरस्वती,ककनमठ मंदिर

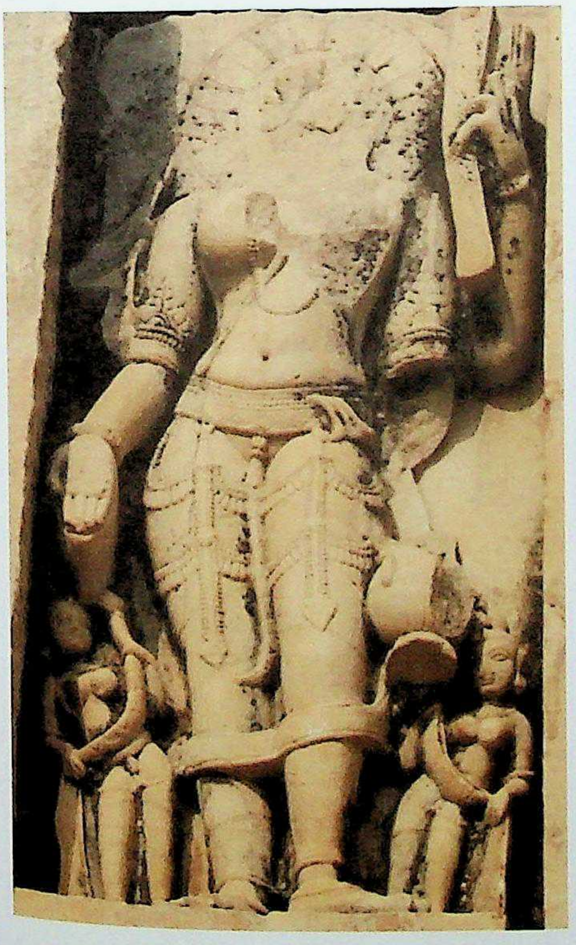

चित्र 78 – सरस्वती, ककनमठ मंदिर

चित्र 79 – कौमारी, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 80 –वारुणी, ककनमठ मंदिर

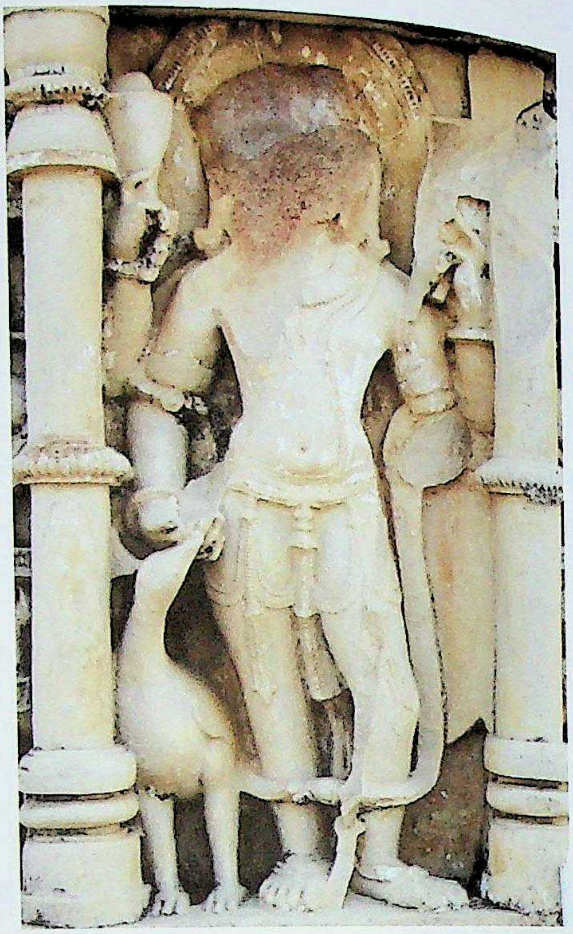

चित्र 81 – कार्तिकेय, ककनमठ मंदिर

चित्र 82 –गणेश, ककनमठ मंदिर

चित्र 83 – इन्द्र, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 84 –अग्नि, ककनमठ मंदिर

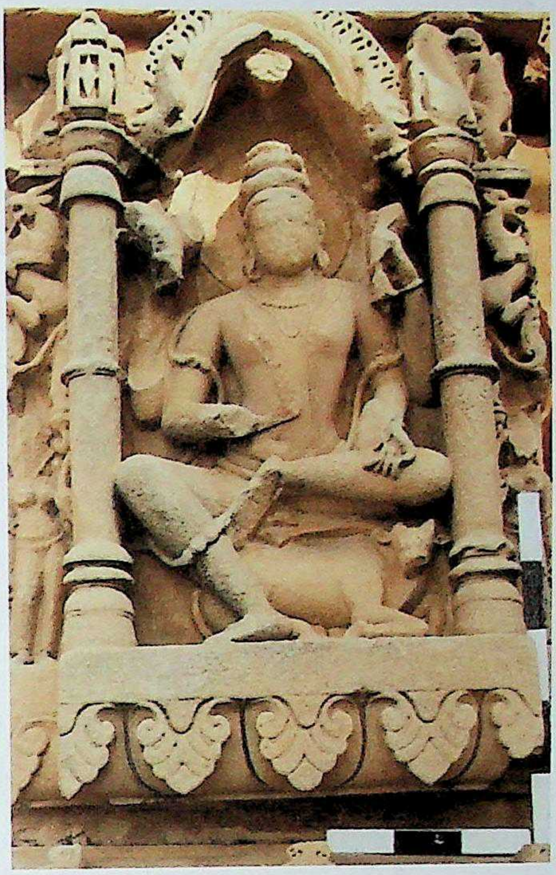

चित्र 85 – यम, ककनमठ मंदिर

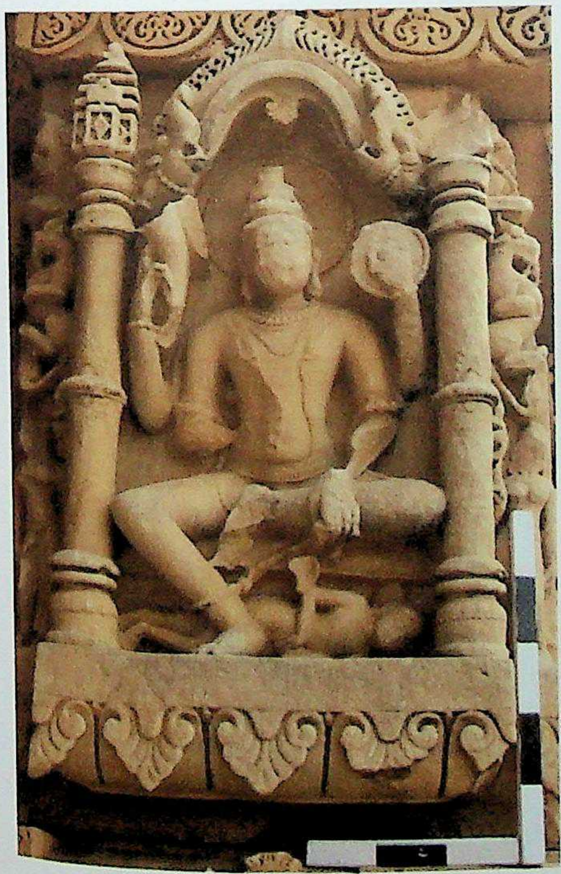

चित्र 86 –निऋति, ककनमठ मंदिर

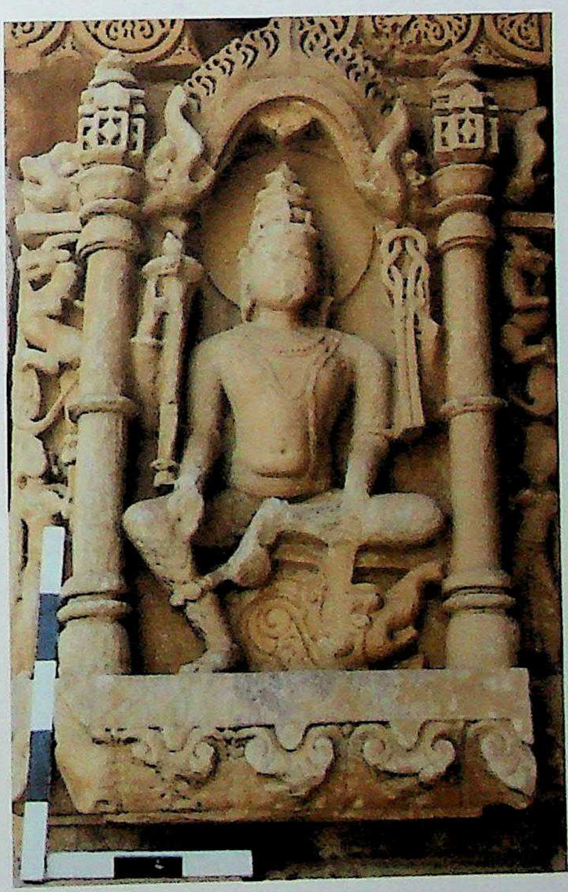

चित्र 87 – वरुण, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

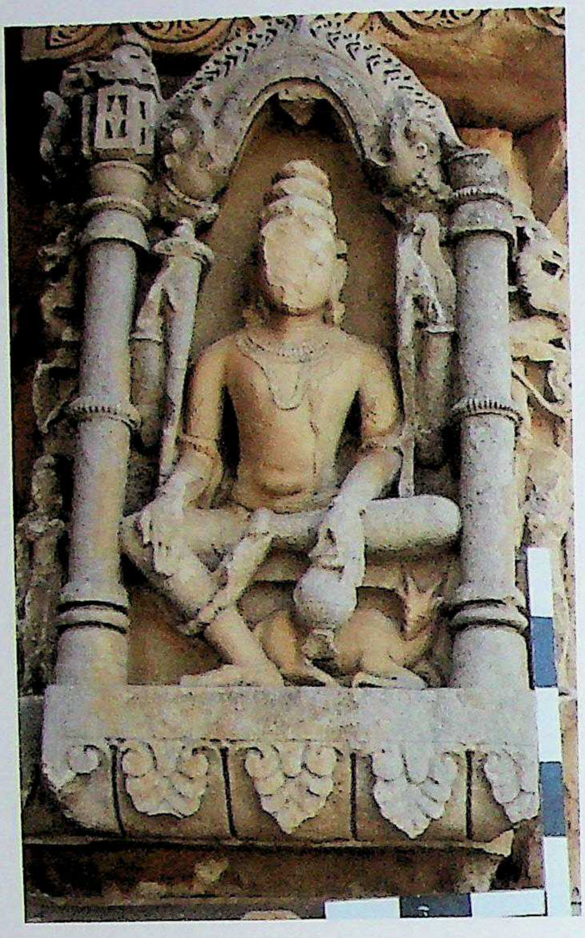

चित्र 88 –वायु, ककनमठ मंदिर

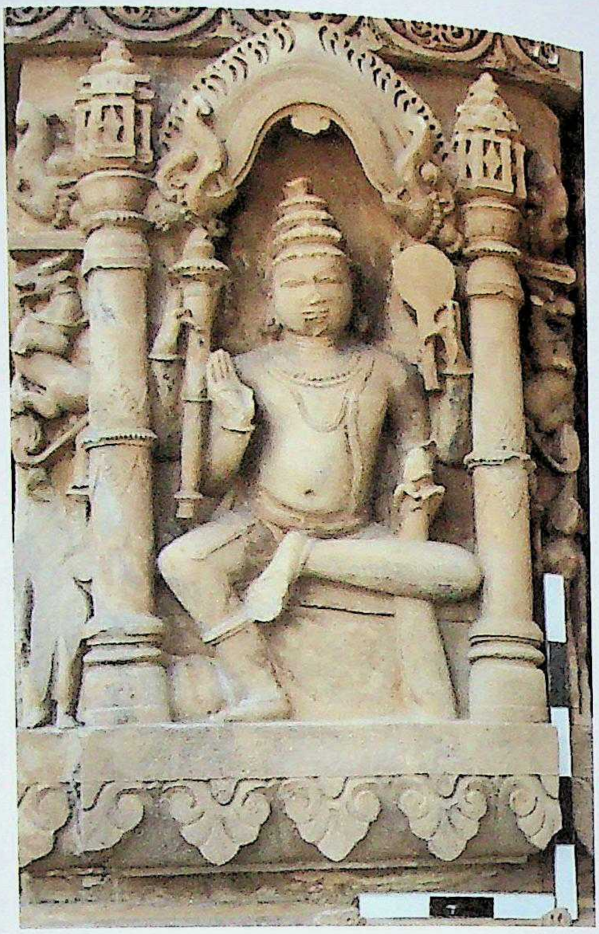

चित्र 89 – कुबेर, ककनमठ मंदिर

चित्र 90 –ईशान, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र 91 – व्याल मूर्तियाँ, ककनमठ मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 54/2 अप्रैल-जून 2021 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 01342-263232, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)
फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार
डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए
संस्थागत : छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए
यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुपमा बरगोहाई और मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारीवाद/ **सुमि शर्मा** 132
नरेंद्र कोहली एवं उनकी साहित्य-साधना/ **प्रतिभा** 139
असम की राभा जनजाति : एक अवलोकन/ **डॉ॰ राजकुमारी दास** 151
आधारभूत संरचना के विकास में बजट 2021 का योगदान/ **डॉ॰ राजेंद्र कुमार** 155
मानवाधिकार का अर्थ एवं महत्त्व/ **पूजा कुमारी** 161
मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण स्त्री का संघर्ष/ **डॉ॰ बिजेन्द्र कुमार** 165
ज्ञानप्रकाश विवेक के साहित्य में आधुनिक युगबोध/
नीरू रानी, डॉ॰ कामराज सिंधु 171
बालश्रम और कानूनी अधिकार/ **वंदना** 174
बौद्ध पालि साहित्य में वर्णित महात्मा बुद्ध का कृषिविषयक दृष्टिकोण/
डॉ॰ प्रशांत कुमार, डॉ॰ अजीत कुमार राव 177
मानवीय चेतना पर दस्तक देते कुसुम अंसल के नारीपात्र/
डॉ॰ विक्रम सिंह, डॉ॰ सुनीता 183
धरती से जुड़े कवि : भगवतीलाल व्यास/ **डॉ॰ नीतू परिहार** 187
अलका सरावगी के कथासाहित्य में सामाजिक परिदृश्य/ **दिनेशचंद्र भट्ट** 192
परिसर बादशाहीथौल टिहरी परिसर, गढ़वाल/ **प्रो॰ कुसुम डोभाल मिश्र** 192
प्रसाद के नाटकों के पात्रों में अंतर्द्वंद्व/ **डॉ॰ वीना सोनी** 196
कोविड-19 के दौरान ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की चुनौतियाँ एवं समाधान/
अशोक कुमार, डॉ॰ सुधीर मलिक 202
लघुकथाओं का सुंदर गुलदस्ता : आस्था के फूल/ **प्रो॰ नीरू** 206
मुरैना के ककनमठ मंदिर में अंकित दिक्पाल देवता इंद्र का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप/
गौरव सिंह, प्रो॰ प्रभात कुमार 211
श्रीकृष्णचंद्रिका : एक अद्भुत रचना/ **डॉ॰ निर्भय शर्मा** 216
संत कबीर का समाजदर्शन/ **डॉ॰ लक्ष्मी गुप्ता** 221
भारतीय धर्म (संस्कृति) और अंबेडकर की दृष्टि/ **उमेश कुमार** 227
कोरोना महामारी के परिप्रेक्ष्य में संत कबीर के समाज सुधारक रूप की उपादेयता/
डॉ॰ नवनाथ गाड़ेकर/
समकालीन हिंदी कविता में अंबेडकरवादी चिंतन, **डॉ॰ संजय नाईनवाड़** 238
'उर्वशी' काव्य में चित्रित कामाध्यात्म का दर्शन : वर्तमान संदर्भ/ **रमेशचंद सैनी** 244
आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोविकार संबंधी निबंधों की सामाजिक दृष्टि/
सैफ रजा खान 249
काशी का अस्सी : सारांशिक रूप/ **नेहा गुप्ता** 254
सुनीता जैन द्वारा लिखित उपन्यास 'मरणातीत' : एक विश्लेषण/ **नीलम देवी** 258
मानवीय संवेदनाओं का अभाव : हृदयेश कृत 'हत्या' उपन्यास के विशेष संदर्भ में/
ज्योतिदेवी, डॉ॰ सुधारानी सिंह 263

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुरैना के ककनमठ मंदिर में अंकित दिक्पाल देवता इंद्र का प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप

(पुराणों के विशेष संदर्भ में)

गौरव सिंह
शोधछात्र, प्रा॰भा॰इति॰सं॰ एवं पुरातत्त्व विभाग
प्रो॰ प्रभात कुमार
प्रोफेसर, प्रा॰भा॰इति॰सं॰ एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक है। भारतीय मूर्तिकला का विकास धर्म के साथ-साथ होता आया है। भारतीय धर्म का आरंभिक स्रोत ऋग्वेद संहिता को माना जाता है। तथापि भारतीय धर्म को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले ग्रंथ हैं–पुराण। पुराणों में वर्णित कथाओं, ईश्वर के अवतारों एवं धर्म से संबंधित विभिन्न परंपराओं-निर्देशों का प्रभाव मात्र भारतीय समाज पर ही नहीं पड़ा, अपितु प्राचीन भारतीय कला पर इसका विशेष प्रभाव देखा जाता है। प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य एवं मूर्तिकला में प्रधान देवताओं के साथ-साथ अष्टदिक्पालों का विशेष महत्त्व रहा है। मंदिर की बाह्य भित्तियों पर आठों दिशाओं में अष्टदिक्पालों का अंकन किया जाता था। ऐतिहासिक काल में अष्टदिक्पालों में से पूर्व दिशा का देवता इंद्र को माना गया है जिन्हें मूर्तिकला में विभिन्न आयुधों, वस्त्राभूषणों एवं वाहन के साथ प्रदर्शित किया गया है। जिसका आधार पुराण एवं स्थापत्य से संबंधित विभिन्न ग्रंथ हैं जिनमें इंद्र के प्रतिमा-स्वरूप का वर्णन दिया गया है। प्राचीन भारतीय मंदिर स्थापत्य कला में दस दिशाओं में से ऊपर और नीचे को छोड़कर मंदिर के चारों ओर आठ दिशाओं में अष्टदिक्पालों की संकल्पना की गई है। इंद्र के विषय में हमें सर्वप्राचीन वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक काल में इंद्र की प्रतिष्ठा में परिवर्तन देखने को मिलता है। पौराणिककाल में इंद्र का स्वरूप पूर्व से पूर्णतः भिन्न मिलने लगता है। मुरैना जनपद में स्थित राजपूतकालीन ककनमठ मंदिर में भी अष्टदिक्पालों की भव्य प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। जिसमें देवता इंद्र की प्रतिमा भी दर्शनीय है। प्रस्तुत शोध पत्र में पुराणों को आधार बनाकर ककनमठ मंदिर में स्थित इंद्र देवता की प्रतिमा के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

मूल शब्द–पुराण, प्रतिमाशास्त्र, इंद्र, देवता, दिक्पाल, मूर्तिकला, प्राचीन भारत।

अष्टदिक्पाल और लोकपाल एक ही हैं। इनकी संख्या आठ है जो विश्व की अष्ट संख्यक दिशाओं के संरक्षक हैं। ये निम्नलिखित हैं–पूर्व–इंद्र, पश्चिम–वरुण, उत्तर–कुबेर, उत्तर-पूर्व–ईशान, उत्तर-पश्चिम–वायु, दक्षिण–यम, दक्षिण-पूर्व-अग्नि, दक्षिण-पश्चिम–निऋति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन परंपराओं के अनुसार इन दिक्पालों के नाम और संख्या में भेद पाए जाते हैं। जैन ग्रंथों के दस दिक्पालों के नाम और संख्या में भेद पाए जाते हैं। पर यह कहा जा सकता है कि इनमें इंद्र, यम, अग्नि और वरुण निश्चित रूप से प्राचीनतम देवता हैं।[1] जैन परंपरा के दस दिक्पाल निम्नलिखित हैं[2]–

पूर्व–इंद्र, दक्षिण–पूर्व–आग्नेय/अग्नि, दक्षिण–यम, दक्षिण–पश्चिम–नैऋत्य/नैऋत, उत्तर–पश्चिम–वायव्य/पवन, पश्चिम–वरुण, उत्तर–कुबेर, उत्तर–पूर्व–ईषान/ईशान, ऊर्ध्व–सोम, अधो–धरणेंद्र।

बौद्ध परंपरा में दिशाओं के अधिपतियों के रूप में चतुर्महाराजों की संकल्पना की गई हैं–उत्तर–वैश्रवण, दक्षिण–विरूढक, पूर्व–धृतराष्ट्र, पश्चिम–विरुपाक्ष

प्राचीन भारतीय ब्राह्मण धर्म संबंधी मूर्तिकला में आठ दिशाओं के लिए आठ रक्षक/अधिपति देवताओं की संकल्पना कर उनकी मूर्तियों का निर्माण किया गया था। इंद्र की गुप्त पूर्व काल की ब्राह्मण धर्म की प्रतिमाएँ ज्ञात नहीं हैं, परंतु महामाया के गर्भ से बुद्ध के जन्म, संकिसा में बुद्ध के स्वर्ग से अवतरण धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए बुद्ध की प्रार्थना, इंद्रशिला गुफा का प्रसंग आदि बौद्ध कथाओं को अंकित करने वाले दृश्यों में इंद्र के प्रचुर दर्शन होते हैं। दक्षिण भारत में इंद्र का प्राचीनतम अंकन भाजा की गुफाओं में मिलता है। यहाँ पर इनके मस्तक पर उष्णीष का अंकन प्राप्त होता है। ऐलोरा की इंद्रसभा गुफा की गजारूढ़ इंद्र की प्रतिमा गुप्तोत्तरकाल की है जो कि उनके देवराज पद का पूर्ण परिचय प्रस्तुत करती है।

वैदिक देवताओं में इंद्र का स्थान बहुत ऊँचा था, परंतु पौराणिककाल में इनकी स्थिति में परिवर्तन आया। इंद्र को सोम, विश्वपुरुष एवं प्रजापति से उद्भूत माना जाता है। उनके मुख्य आयुध वज्र एवं अंकुश हैं। कथा है कि वृत्र नामक असुर का वध करने के लिए दधिची ऋषि की अस्थियों से वज्र का निर्माण किया गया था। प्राचीन मूर्तियों में मानवरूप में दिखलाई पड़ने वाले इंद्र की पहचान, उनके ऊँचे उष्णीष या मुकुट, हाथ में वज्र एवं ऐरावत हाथी से की जाती थी। पुराणानुसार इंद्र देवताओं के अधिपति एवं स्वर्गलोक के स्वामी हैं। अपने पद के प्रति सदैव जागरूक रहनेवाले इंद्र का मुख्य कार्य वर्षा करना है। पौराणिक युग से पूर्व इंद्र की पूजा का प्रचलन अत्यधिक था किंतु इस काल में कृष्ण एवं वैष्णवधर्म की लोकप्रियता ने इंद्र की उपासना की समाप्ति करवा दी।

प्रतिमा लक्षण

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार[3]–

चतुर्दन्ते गजे शक्रः श्वेतः कार्यः सुरेश्वरः। वामोत्संगता कार्या रक्षमाणा तथा शची।।
नीलवस्त्रः सुवर्णाभः सर्वाभरणवांस्तथा। तिर्यग्ललाटगेनाक्ष्णा कर्त्तव्यश्च विभूषितः।।
शक्रश्चतुर्भुजः कार्यो द्विभुजा च तथा शची। पद्मांकुशौ तु कर्त्तव्यौ शक्रदक्षिणहस्तयोः।।
वामं शचीपृष्ठगतं द्वितीयं वज्रसंयुतम। वामे शच्याः करे कार्या रम्या सन्तनमञ्जरी।।
दक्षिणं पृष्ठविन्यस्तं देवनाथस्य कारयेत। ब्रह्मणैव विनिर्दिष्टं तस्याभरणधारणम्।।

इंद्र को चार दाँत वाले हाथी के ऊपर बैठे हुए तथा श्वेत वर्ण का बनाना चाहिए। उनकी बाईं गोद में संरक्षित शची का निर्माण किया जाए। इंद्र के वस्त्र को नीलवर्ण का उनको सुवर्ण के

 ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान कांति वाला तथा सभी आभूषणों से सुसज्जित बनाना चाहिए। उनके ललाट को तिरक्षा नेत्र से अलंकृत किया जाए। इंद्र को चार भुजाओं वाला तथा शची को दो भुजाओं वाली बनाएँ। इंद्र के दाहिने हाथ में पद्म तथा अंकुश उपस्थित रहेंगे। बायाँ एक हाथ शची की पीठ पर रखा हुआ तथा दूसरा हाथ वज्र से युक्त रहेगा। शची के बाएँ हाथ में मनोहर संतान वृक्ष की मंजरी का अंकन किया जाए। शची के दाहिने हाथ को देवराज की पीठ पर रखे हुए बनाएँ।

तेनैव तस्य कथितं तथा बाहुचतुष्टयम्। त्रिनेत्रता च तस्योक्ता देवदेवेन शम्भुना।।
रूमाभवर्णता तस्य तेजसां धमकारणात्। यन्नीलं वसनं तस्य तदाकाशं प्रकीर्तितम्।।
आज्ञा तस्यांकुशो हस्ते सर्वभूतवशंकरी। पद्मस्थां सहपद्मेन विभूतिं भुवनाधिप।।[4]

इस ग्रंथ में बह्मा द्वारा इंद्र का वर्णन करते हुए उन्हें चार भुजाओं वाला बताया गया है। देवों के देव शंकर जी ने इंद्र को तीन नेत्रों वाला कहा है। इंद्र के प्रतिमालक्षणों में प्रयुक्त सभी गुणों को व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि इंद्र की सुवर्ण के समान कांति तेजों के आश्रय होने के कारण है। इंद्र का नीला वस्त्र संपूर्ण आकाश की ओर संकेत करता है। वे देवराज हैं संपूर्ण लोक पर उनकी आज्ञा श्रेष्ठ है इस कारण उनके हाथ में विद्यमान अंकुश ही सभी लोकों को अपने वश में रखने वाली आज्ञा है। लक्ष्मीजी के साथ विद्यमान पद्म के द्वारा उनकी विभूति है।

करेण धरयञ्छ्रीमान्मघवान् सुरसत्तमः। दुष्टसंशमनं क्रोधो वज्रः शक्रकरः स्मृतः।।
वासुदेवः स्मृतः शक्रस्तेन लक्ष्मीः शची मता। तस्याः करे च सन्तानं ज्ञेया सन्तानमञ्जरी।।
अर्थस्त्वैरावणो ज्ञेयो दन्तास्तस्य तु कीर्तिताः। दैवमन्त्रप्रभूत्साहशक्तयस्तु महाबलाः।।[5]

देवताओं में श्रेष्ठ ऐश्वर्य संपन्न दुष्टों का शमन करने वाले इंद्र का क्रोध ही उनके हाथ में वज्र के रूप में विद्यमान है। भगवान वासुदेव को इंद्र कहा गया है अतएव शची लक्ष्मी रूप से अभिमत हैं। शची के हाथ में विद्यमान संतान वृक्ष की मंजरी ही संतान है। ऐरावत को ही अर्थ जानना चाहिए, उसके महाबलवान चारों दाँतों को ही देवशक्ति, मंत्रशक्ति, प्रभुशक्ति एवं उत्साहशक्ति जानना चाहिए।

त्रिदशेष इंद्र की प्रतिमा में हजार आँखें, एक हाथ में वज्र, दूसरे में गदा, पुष्टांग शरीर, विशाल भुजाएँ, सिर पर किरीट मुकुट, शरीर पर दिव्याभरण एवं अलंकारों के साथ-साथ यज्ञोपवीत भी प्रदर्श्य है।[6]

मत्स्यपुराण के अनुसार[7]–

सहस्त्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्। पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्।।
किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्। वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्।।
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेविताम्। छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्।।
सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुत्तम्। इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम्।।

मत्स्यपुराण में इंद्र को हजार नेत्रों वाला तथा मत्त गयंद पर विराजमान बताया गया है। उनके ऊरु, वक्षस्थल और मुख विशाल बनाए जाने का निर्देश है। साथ ही कंधे सिंह के समान हों, उनकी भुजाएँ विशाल हों, वे किरीट और कुंडलों सहित हों। जघनस्थल, भुजाओं तथा आँखों में स्थूलता हो, साथ ही उनके हाथों में वज्र एवं कमल का अंकन किया जाए। वे विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित तथा देवताओं एवं गंधर्वों द्वारा पूजित एवं अप्सराओं द्वारा सेवित दर्शाए जाने चाहिए। उनके पार्श्व में छत्र और चामर धारण करने वाली स्त्रियों को प्रदर्शित किया जाना चाहिए। उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहासन पर विराजमान, बाईं ओर कमल धारण किए हुए इंद्राणी एवं गंधर्वों से घिरे हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

अग्निपुराण के अनुसार–

इंद्रो वज्री गजारूढ़च्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान।[8]

इंद्र हाथी पर सवार तथा वज्रधारण करने वाले देव हैं। अग्निपुराण में इंद्र की पत्नी के रूप में ऐंद्री का विवरण मिलता है।

ऐन्द्री गजे वज्रहस्ता सहस्त्राक्षी तु सिद्धये।[9]

अर्थात् ऐंद्रीदेवी हाथी पर सवार रहती हैं। वे हाथों में वज्र धारण करती हैं। उनके एक हजार नेत्र हैं तथा उनकी सिद्धि-प्राप्ति के लिए उपासना की जानी चाहिए।

ककनमठ मंदिर में उत्कीर्ण इंद्र का प्रतिमा स्वरूप

मुरैना जनपद के सिहोनियां ग्राम में स्थित राजपूतकालीन ककनमठ मंदिर की जंघा भाग पर अष्टदिक्पालों का अंकन प्राप्त होता है जिनमें पूर्व दिशा के स्वामी इंद्र की सुंदर प्रतिमा भी यहाँ देखने को मिलती है। ककनमठ मंदिर में स्थित इंद्र की प्रतिमा चतुर्भुजी है जिसकी तीन भुजाएँ एवं उनमें उपस्थित आयुध खंडित अवस्था में हैं। बाईं ओर की पिछली भुजा सुरक्षित है, यद्यपि इसमें उपस्थित आयुध भी खंडित अवस्था में ही हैं, किंतु प्रतिमाशास्त्रीय वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि यह आयुध अंकुश रहा होगा। इंद्र पर्यंकासन में गज के ऊपर आरूढ़ हैं। उनकी अन्य तीन भुजाओं में किन आयुधों का अंकन किया गया, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। यह प्रतिमा रूप-सौंदर्य की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। इंद्र को मस्तक पर ऊँचा मुकुट धारण किए हुए दिखाया गया है। यह मुकुट उनकी जटाओं के द्वारा ही निर्मित किया गया है। जटाओं को बाँधे रखने के लिए मनकों एवं रत्नों से निर्मित विभिन्न लड़ियों का प्रयोग किया गया है। लड़ियों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के पदकों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। कानों में चक्राकार कुंडलों का अंकन किया गया है। इंद्र के गले में भव्य कंठाभूषणों का अंकन किया गया है जिसमें तीन स्तरों वाला एक चौड़ा ग्रैवेयक तथा एक बड़ी माला का सम्मिलित है। साथ ही कंधे पर अलंकृत यज्ञोपवीत भी उपस्थित है। इनकी भुजाओं में भुजबंद का प्रयोग भी देखने को मिलता है, जो कि पदकयुक्त बड़ा भुजबंद है। इसके साथ ही भुजा के कलाई वाले भाग में मोतियों से निर्मित एक कड़ा पहने दिखाया गया है। इंद्र की कमर पर कमरबंद के रूप में मेखला का अंकन किया गया है। मेखला मोतियों से अलंकृत है, जिसके मध्य में एक सुंदर फूल के आकार का पदक भी जोड़ा गया है। संभवत: मेखला के दोनों सिरे इसी पदक में आकर जुड़ते हैं। मेखला के सिरों की रस्सी पदक से नीचे लटकती हुई दिखती है। मेखला के साथ ही आबद्ध मुक्तादम और उरुदम का अंकन भी इस प्रतिमा में किया गया है। इंद्र को प्रतिमा में वनमाला धारण किए हुए भी दिखाया गया है। प्रारंभ में वनमाला का अंकन विशेषत: विष्णु की प्रतिमाओं के साथ किया जाता था परंतु राजपूतकाल तक आते-आते सौंदर्यवृद्धि हेतु यह अधिकांश देवताओं के साथ प्रयोग की जाने लगी थी। इंद्र को पैरों में अलंकृत मोटे पादकटक पहने हुए दिखाया गया है। वे गज पर विराजमान हैं एवं अलंकृत वस्त्राभूषणों से यह प्रतिमा संपन्न है।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि राजपूतकालीन ककनमठ मंदिर में स्थित इंद्र की

 ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिमा कुछ भिन्नताओं के साथ पुराणों में बताए गए प्रतिमाशास्त्रीय निर्देशों से मेल खाती है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार इंद्र को यहाँ पर सभी आयुधों के साथ प्रदर्शित किया गया है। साथ ही उनके शरीर की कांति स्वर्ण की भाँति ही प्रतीत होती है। वे आभूषणों से सुसज्जित हैं परंतु यहाँ पर अग्निपुराण में बताए गए इंद्र की प्रतिमा में स्थूलता जैसे गुणों का अभाव है। इसका कारण संभवत: यह है कि यहाँ पर इंद्र को दिक्पाल अर्थात् दिशा के रक्षक के रूप में प्रदर्शित किया गया है, जिस कारण उनका शरीर चुस्त एवं योगी के समान दर्शाया गया है। उनके शरीर पर बहुत अधिक वस्त्रों का प्रयोग नहीं हुआ है और न ही मस्तक पर किरीट ही है। इसके स्थान पर जटामुकुट का प्रयोग यह दर्शाता है कि इंद्र यहाँ पर विलासी प्रवृत्ति के देवता न होकर सजग एवं शक्तिशाली दिक्पाल के रूप में हैं। दिक्पाल होने के कारण ही यहाँ पर इंद्र के साथ ऐंद्री का अंकन भी नहीं किया गया है, जिसका वर्णन मत्स्यपुराण में किया गया है।

संदर्भ

1. जोशी, एन॰ पी॰, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2000, पृ॰ 175
2. मुनि, आचार्य देवनंदिन, देव शिल्प मंदिर वास्तु एवं स्थापत्य, श्रीप्रज्ञाश्रमण दिगंबर जैन संस्कृति न्यास, नागपुर, 2000, पृ॰ 304
3. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 50/1-5
4. वही, 50/7-9
5. वही, 50/10-12
6. शुक्ल, द्विजेंद्रनाथ, भारतीय वास्तुशास्त्र एवं प्रतिमाविज्ञान, वास्तु वांङ्मय प्रकाशन शाला, लखनऊ, 1956, पृ॰ 286
7. मत्स्यपुराण, 260/67-70
8. अग्निपुराण, 51/14
9. वही, 50/21

गौरव सिंह
बी-83, त्रिलोक नगर,
श्यामाचरण एन्क्लेव,
(निकट गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय)
जगजीतपुर, हरिद्वार 249404
मो॰ 8126739165, 9557386642
ईमेल : gaurav.uk.08@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यमिक स्तर के हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव: एक अध्ययन–विमला कुर्रे; डॉ. सुनील कुमार सेन 1862

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित वर्त्तमान परिदृश्य–डॉ० पठान रहीम खान 1869

राजस्थान में पशुपालन का महत्व: एक भौगोलिक मूल्यांकन व विश्लेषण–नीलू चतुर्वेदी 1873

हिन्दी लघुकथा में वृद्ध संवेदना का चित्रण–सरिता कुमावत 1878

रीवा सम्भाग में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों में पर्यावरण चेतना: एक भौगोलिक अध्ययन –अरूणेन्द्र बहादुर सिंह; सितेश भारती 1882

मानव जीवन मे आकांक्षा एवं आकांक्षा स्तर की उपदेयता–विनोद कुमार; डॉ० कुमुद त्रिपाठी 1886

प्रवासी जीवन की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में उषा प्रियंवदा के कथा साहित्य में परम्परा और प्रगति का अध्ययन–सोनी यादव 1890

नरेश मेहता द्वारा रचित धूमकेतु और अरण्या का विवेचनात्मक अध्ययन–अशोक कुमार यादव 1893

''वर्तमान सन्दर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता''–डॉ० बन्दना सिंह 1896

काशीनाथ सिंह की कहानियों में यथार्थवाद का चित्रण–देवव्रत यादव 1899

उच्च शिक्षा तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति–डॉ० ममता मणि त्रिपाठी 1902

नैषधीयचरितम् महाकाव्य में नल के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० अमृत कौशल 1905

मीनाक्षी स्वामी के उपन्यास 'भूभल' में स्त्री चेतना–विजय कुमार पाल 1909

डॉ० नगेन्द्र द्वारा रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में मौलिक विचारों का अध्ययन–विशाल मिश्र 1913

हिंदी साहित्य में स्त्री -विमर्श–डॉ० दिनेश श्रीवास 1916

राजस्थान के बाढ़ सम्भाव्य पूर्वी मैदानी कृषि जलवायु प्रदेश में फसल प्रतिरूप परिवर्तन का भौगोलिक अध्ययन–अमिता बाई यादव 1919

जैन-तीर्थ-स्थलों से जुड़े प्रबन्धन में स्वार्थ-परक राजनीति का प्रवेश–पवन कुमार जैन 1926

कुसुम अंसल साहित्य में पारिवारिक रिश्तों का बदलता स्वरूप–डॉ० विक्रम सिंह; डॉ० सुनीता 1928

"मुरैना जनपद के मन्दिरों में प्रतिबिम्बित प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य का विकासक्रम"–प्रो० प्रभात कुमार; गौरव सिंह 1930

कोरोना संकट का भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव–डॉ० संतोष कुमार लाल 1934

सूर्यबाला की कहानियों में वृद्ध और आधुनिकता के व्यंग्यात्मक पहलू–नरेंद्र कुमार स्वर्णकार 1937

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम में 'जेण्डर पाठ्यक्रम' की आवश्यकता क्यों–वन्दना शर्मा; प्रो० वन्दना गोस्वामी; डॉ० अजय सुराणा 1940

व्याकरण शास्त्रे प्रमाणम्–डॉ० सुभाषचन्द्र मीणा 1943

एक राष्ट्र एक चुनाव: एक विश्लेषण–गुलशन कुमार; डॉ० मानसी सिन्हा 1947

आधुनिक शिक्षा प्रणाली का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन–डॉ० सुशील कुमार सिंह 1950

तुलसीदास के काव्य में लोकमंगल–डॉ. राम टहल दास 1954

हठयोग: आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता–ज्योति शर्मा; प्रो. गणेश शंकर गिरि 1959

कृष्णा सोबती का अंतिम उपन्यास 'चन्ना': विश्लेष्णात्मक अध्ययन–पूजा मिश्रा 1962

शोध विषय : नासिरा शर्मा के उपन्यासों में स्त्री जीवन की समस्या–सूर्यकांत एम.बी. 1966

हरियाणा की प्रतिनिधि हिंदी कहानियां–डॉ. ओम प्रकाश सैनी 1969

भारतीय संदर्भ में आतंकवाद के कारण: एक अध्ययन–सुरेन्द्र प्रसाद 1973

योगिता यादव की कहानियों 'अनहोनी' तथा 'भेड़िया' मे नारी अस्मिता का मुद्दा–प्रेम सिंह 1977

आनंदमठ उपन्यास की समीक्षा–डॉ० प्रीति राय 1980

मधुकर अष्ठाना के नवगीतों में यथार्थबोध–डॉ० प्रीति राय; हरकेश कुमार 1983

सामाजिक परिवर्तन के वाहक बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर एक अवलोकन–सुरेन्द्र सिंह 1988

डॉ० भीमराव आम्बेडकर का राष्ट्रवाद–डॉ० चन्द्रशेखर आजाद 1992

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जल संग्रहण की प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन–हरिओम; डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा 1995

योगिता यादव के कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति–सुमन 1997

हरियाणा पर्यटन:- चुनौतियां एवं सुझाव–राजेश कुमार; डॉ० प्रदीप कुमार शर्मा 2000

नागरिकता (संशोधन) अधिनियम 2019–डॉ० अविनाश कुमार लाल; श्रीमती अविंदना जॉन 2005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुरैना जनपद के मन्दिरों में प्रतिबिम्बित प्राचीन भारतीय मन्दिर स्थापत्य का विकासक्रम"

प्रो० प्रभात कुमार

प्रोफेसर, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

गौरव सिंह

शोध छात्र, यू. जी. सी. नेट, प्रा0 भा0 इ0 सं0 एवं पुरातत्त्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

सारांश

मुरैना जनपद मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित है। चम्बल नदी के किनारे बसा यह जनपद ऐतिहासिक दृष्टि अत्यन्त महतवपूर्ण है। सभ्यता के जन्म एवं विकास के अनेक प्रमाण मुरैना में मिलते हैं। यहां पर मन्दिरों का निर्माण कार्य आठवीं शताब्दी के बाद प्रारम्भ हुआ, जो कि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर गया। मुरैना में आरम्भिक मन्दिरों का निर्माण प्रतीहार काल में हुआ जबकि भव्य मन्दिर निर्माण का काल कच्छपघात राजवंश का था प्रमुख मन्दिर समूहों में नरेसर मन्दिर समूह, बटेश्वर मन्दिर समूह, ककनमठ मन्दिर एवं गढ़ी पडावली का मन्दिर है, जो स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं। सभी मन्दिर नागर शैली के हैं। जीर्णावस्था में स्थित मन्दिर ककनमठ, नागर शैली की मन्दिर स्थापत्य कला के सभी लक्षणों से आबद्ध है। मुरैना जनपद में विभिन्न कालों में निर्मित हुए मन्दिरों एवं मन्दिर समूहों का अध्ययन करने से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मुरैना जनपद की समस्त धरोहरें भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक पक्ष का स्थाई स्मारक हैं। जिनसे प्रतीहार एवं कच्छपघात राजवंशों के धार्मिक विश्वासों, आध्यात्मिकता, कला, दर्शन एवं चिन्तन की व्याख्या वर्तमान में भी हो रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में मुरैना जनपद में स्थित मन्दिरों को आधार बनाकर यह सपष्ट किया जायेगा कि किस प्रकार उत्तर भारतीय मन्दिर निर्माण शैली का विकास हुआ था। मन्दिर स्थापत्य की नागर शैली की विकास श्रृंखला के विभिन्न चरणों का क्रमागत संयोजन हमें मुरैना के मन्दिरों में देखने को मिलती है।

मूल शब्द - मन्दिर स्थापत्य, कला, नागर शैली, प्राचीन भारत, मूर्तिकला, मुरैना।

मुरैना में मानव सभ्यता के पदचिन्ह तो अत्यन्त प्राचीन हैं। प्रागैतिहास काल से मानव सभ्यता यहां पल्लवित-पुष्पित हो रही है। पुरातात्त्विक अन्वेशणों में ऐतिहासिक काल के अनेक सामग्री प्रकाश में आयी है। किन्तु यहां मन्दिरों की स्थापना का कार्य आठवी सदी से ही प्रारम्भ हुआ है। यहां स्थित मन्दिर एवं प्रतिमाएं आठवीं से बारहवीं सदी के मध्य के सांस्कृतिक जीवन का निरूपण हैं। लगभग चार शताब्दियों में मुरैना पर शासित राजवंशों के महत्ति प्रयास का परिणाम यह रहा कि आज हमें मुरैना में बहुसंख्यक मन्दिर देखने को मिलते हैं। इन मन्दिरों में संख्या की दृष्टि से प्रतीहार कालीन मन्दिर सर्वाधिक हैं जबकि आकार एवं भव्यता की दृष्टि से कच्छपघात कालीन मंदिर बेजोड़ हैं। बटेश्वर और नरेसर मन्दिर समूहों का निर्माण प्रतीहार काल में हुआ था। इनके अतिरिक्त सिहोनियां के ककनमठ मन्दिर एवं पडावली के शिव मन्दिर का निर्माण कच्छपघात राजवंश के समय पर हुआ था। दोनों ही कालों के मन्दिर आकार एवं भव्यता में पर्याप्त अन्तर रखते हैं साथ ही मंदिरों के निर्माण सम्बन्धी एक निश्चित विकासक्रम को भी प्रदर्शित करते हैं। इस विकासक्रम को समझने के लिए हमें गुप्त कालीन मन्दिरों की अगली कड़ी में मुरैना के प्रतीहार कालीन मन्दिर एवं उसके बाद कच्छपघात कालीन मंदिरों का अवलोकन करना पड़ेगा। इस श्रृंखला के अनुसार मंदिरों के अध्ययन का क्रम इस प्रकार रहेगा - गुप्त कालीन गुहामंदिर एवं सपाट छत वाले मंदिर - नरेसर मंदिर समूह - बटेश्वर मंदिर समूह - ककनमठ मंदिर एवं पडावली का शिव मंदिर।

सामान्यत: भारतीय मंदिरों को शैलीगत विविधताओं के कारण तीन शैलियों में विभाजित किया गया है- नागर, बेसर और द्रविड़ शैली। उत्तर भारत में निर्मित मंदिरों की संरचना नागर शैली हेतु निर्दिष्ट वास्तुशास्त्रीय नियमों के आधार पर की गई थी। नगर संरचना के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक उल्लेख वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में मिलता है। इसी संदर्भ में मंदिरों की बनावट व स्थिति पर उचित चर्चा की गई है। इस प्रकार नगर की बनावट एवं स्थिति के अनुसार बने हुए मंरि ही नागर शैली में निर्मित मंदिर होते थे। 'कालिकागम' नामक ग्रन्थ में नागर शैली में निर्मित मंदिरों के लक्षण एवं विशेषतायें इस प्रकार दिये गये हैं-"संरचना की दृष्टि से ये मंदिर विशेष प्रकार के होते हैं। ये आधार से शिखर तक चौपहला या वर्गाकार होते हैं। ऊंचाई में यह अष्टवर्गा होता है। इन आठ वर्गा के नाम इस प्रकार हैं- मूल (आधार), मसरक (नींव और दीवारों के बीच का भाग), जंघा (दीवारें), कपोत्र (कोर्निस)। ये चारों खड़े रहकर शेष चारों भागों- शिखर, गल, आमलसारक और कुम्भ का भार धारण करते हैं।[1] नागर शैली में निर्मित शिखर की संरचना गर्भगृह की चिपटी छत से प्रारम्भ होती है। शिखर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बनावट चारों कोनों से एक ही समय आरम्भ होती है। धीरे-धीरे तिरछी होती हुई शिखर का आकार धारण करती है और ऊपर जाकर एक ही बिन्दु पर मिल जाती है। शिखर के सबसे अंतिम भाग को कलश और निचले भाग को आमलक कहते हैं। गुप्तकालीन मंदिरों को देखने पर ज्ञात होता है कि 6 शताब्दी ई. से नागर शिखर शैली का प्रयोग भारतीय वास्तुकला में होने लगा और शिखर ईंटों के बनने लगे। इसके उदाहरण देवगढ़ के दशावतार मंदिर तथा कानपुर के भीतरगांव मंदिर में देखने को मिलते हैं। राखालदास बनर्जी के अनुसार गुप्त कालीन देवगढ़ मन्दिर में ही शिखर का प्रादुर्भाव हुआ।[2]

मन्दिर स्थापत्य कला का विकास शनैः-शनैः विभिन्न चरणों में देखने को मिलता है। प्रारम्भिक मन्दिरों का दर्शन गुप्त काल में मिलता है। गुप्त शासकों द्वारा भागवत धर्म को प्रश्रय दिये जाने से इष्टदेव की प्रतिमा की स्थापना नये-नये रूपों में की जाने लगीं तथा इन प्रतिमाओं हेतु मन्दिर-निर्माण की परिकल्पना भी सार्थक होने लगी। सांची से मिले दो कमरे, जिनका निर्माण स्तम्भों पर किया गया है ये गुप्तकालीन मन्दिरों का प्रथम सोपान माने जाते हैं।[3] जिस स्थान पर प्रतिमा को स्थापित किया जाता था उसे 'गर्भगृह' कहा गया। गुप्तकाल में मन्दिरों के निम्नलिखित स्वरूप सामने आते हैं - गुहा मन्दिर, सपाट छत वाले मन्दिर, शिखर युक्त मन्दिर।

गुहाएं जो कि अभी तक बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित रही थीं, गुप्तकाल में गुहाओं का सम्बन्ध ब्राह्मण धर्म से भी होने लगा। चन्द्रगुपत द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के काल में इस प्रकार की वृहत संरचना का निर्माण विदिशा के निकट उदयगिरि की पहाड़ियों में कराया गया था। इन गुहाओं तथा सांची के आरम्भिक मन्दिरों के समान ही एक साधारण गर्भगृह तथा एक स्तम्भाधारित लघुमण्डप जैसी संरचना मिलती है।[4] गर्भगृह के भीतर की छत प्राय: कमलांकृत मिलती है। मध्यप्रदेश के तिगवा में भी मंदिर का ऐसा ही सादा रूप मिला है। उसके द्वारस्तम्भों पर गंगा एवं यमुना दोनों ही नदियों का अंकन मिलता है। वहीं उदयगिरी की प्रसिद्ध वराह गुहा में गंगा-यमुना के हाथों में घट धारण किए हुए दिखाया गया है। वहीं गुहा संख्या 6 का निर्माण लगभग 400 ई. में हुआ था। उसमें गुहा द्वार पर नीचे आयुध-पुरुषों को तथा स्तम्भ शीर्षों पर नदी देवताओं को दिखाया गया है। इन गुहा मंदिरों की विशेषता यह है कि ये मंदिर गुहा के भीतर ही बनाये गये हैं। मन्दिर स्थापत्य के आरम्भिक अवयव जैसे- गर्भगृह एवं मण्डप आदि चट्टान के भीतर ही निर्मित है। कुछ गुहामंदिरों में बाहर ही स्तम्भों से युक्त बरामदा भी देखने को मिलता है।

गुहामंदिरों की अगली कड़ी के रूप में मुरैना के बरेठा नामक ग्राम के उत्तर पश्चिम में स्थित नरेसर मन्दिर समूह में उन मन्दिरों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनका निर्माण के लिए चट्टानों को विभिन्न स्तरों पर काटकर समतल आधार का निर्माण किया गया था। उदयगिरि की गुहा में मन्दिरों के निर्माण के लिए चट्टानों को काटकर समतल आधार नहीं बनाया गया था। नरेसर में निर्मित सभी मन्दिर एक ही काल के समय के नहीं हैं, इनकी निर्माण शैली में भिन्नताएं देखने को मिलती है। यहां पर छोटे से बड़े आकार के मन्दिरों को देखा जा सकता है। छोटे आकार के केवल गर्भगृह वाले मन्दिर यहां देखे जा सकते हैं। यहां के अधिकांश मंदिरों में त्रि-रथ शैली के शिखरों का प्रयोग किया गया है।[5] छोटे आकार के मन्दिरों की जंघा एवं दीवारे प्राय: सादा एवं बिना अलंकरण की हैं। जबकि बड़े आकार के मन्दिरों की दीवारों पर मूर्तिकला के प्रमाण देखने को मिलते हैं। इन मंदिरों पर हम गुप्तयुगीन कला का पूर्ण प्रभाव पाते हैं। उदाहरणस्वरूप नरेसर मंदिर समूह के देवालय संख्या 1 की द्वारा शाखाएं अलंकरणीहीन हैं। नीचे निर्दिष्ट स्थान से द्विभंग गंगा, यमुना घट सहित प्रदर्शित हैं। आभूषणों का अलंकरण उच्च कोटि का है। ललाटबिंब में गणेश उत्कीर्ण हैं। नरेसर में ऊंचाई पर स्थित एक तालाब के किनारे बायीं ओर चार मंदिर स्थित हैं। ये मंदिर फांसना शैली में निर्मित हैं तथा मध्य मंदिर निर्माण योजना एवं अलंकरण के अभिप्रायों में मंदिर क्रमांक 1 के सदृश हैं। इन मंदिरों के गर्भगृह वर्गाकार एवं अलंकरणहीन हैं। द्वार में तीन शाखाएं हैं नीचे गंगा, यमुना, अपनी स्वाभाविक मुद्रा में अंकित हैं। इनके ललाटबिंब पर भी गणेश उत्कीर्ण हैं। इन देवालयों में वेदिबंध नहीं तथा जंघा पूर्णत: सादी है।[6] कुछ बड़े मन्दिरों में यथा देवालय क्रमांक 20 एवं 21 में त्रिरथ एवं पंचरथ निर्माण योजना के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इन मन्दिरों में भी अंतराल एवं गर्भगृह ही सम्मिलित हैं, किन्तु इनकी वेदिवंध में खुर, कुंभ, तथा कलश बंधनों का समावेश देखने को मिलता है।[7] जंघा सादी है। ये मन्दिर छोटे मन्दिरों से सम्भवत: बाद में बनाये गये थे, क्योंकि इनमें मन्दिर स्थापत्य की नागर शैली से समबन्धित विभिन्न लक्षण यथा वेदिबन्ध के विभिन्न अवयव एवं दीवारों पर मूर्ताकन की परम्परा देखने को मिलती है। नरेसर मन्दिर समूह में कुछ मन्दिरों का निर्माण चट्टान को काटकर किया गया है। गुप्तकालीन मन्दिरों में हम पाते हैं कि कुछ आरम्भिक मन्दिर गुहाओं में ही बनाये गये हैं। किन्तु नरेसर के मन्दिरों का गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि ये गुहा मन्दिरों से ठीक अगले सोपान हैं। जिसमें चट्टान को काटकर उसके अनुदिश मन्दिर का निर्माण किया गया है। जिसका आकार बहुत बड़ा नहीं है। मन्दिरों को शिखर युक्त भी बनाया गया है।

नरेसर मन्दिर समूह से कुछ दूरी पर ही स्थित बटेश्र मन्दिर समूह मन्दिर स्थित है। बटेश्वर मन्दिर समूह का निर्माण भी प्रतीहार राजवंश के काल में ही हुआ था। इसी कारण नरेसर एवं यहां के मन्दिरों में कतिपय समानताओं के साथ-साथ मन्दिर निर्माण के प्रगतिशील तत्वों को भी देखा जा सकता है। (चित्र सं. 1) बटेश्वर महादेव मंदिर का निर्माण पंचरथ निर्माण योजना के तहत हुआ है जिसमें अंतराल एवं गर्भगृह उपस्थित हैं। जंघा अन्य देवालयों की अपेक्षा अधिक ऊंची है। भद्ररथों में चैत्य उद्गमों से आच्छादित एक-एक देवकोष्ठ है। इनमें कार्तिकेय, यम, शिव आदि की प्रतिमाओं का अंकन किया गया है। द्वारशाखाओं पर गंगा-यमुना, नाग-नागी सहित लतापत्र, खल्व, पुष्प, घटपल्लव तथा लतापत्र युक्त संचरनाएं विद्यमान हैं। आयताकार अंतराल में चार स्तम्भ हैं, द्वार से संलग्न स्तम्भ सादे हैं तथा गर्भगृह से संलग्न स्तम्भों में पूजकों तथा वादकों का मोहक अंकन है। समतल वितान के मध्य पूर्ण विकसित कमल पुष्प उत्कीर्ण है। परन्तु वर्गाकार गर्भगृह की भित्तियां अलंकरणहीन हैं। मंदिर में उत्कीर्ण लिपि के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यह संभवत: आठवीं शती ई. में निर्मित किया गया था। बटेश्वर मंदिर में समूह में इसके अतिरिक्त कुछ और मंदिर भी पंचरथ योजना में निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर त्रिरथ शैली में निर्मित मंदिर भी विद्यमान हैं जिनमें अंतराल एवं गर्भगृह का दर्शन होता है। इनकी वेदीबंध में खुर, कुंभ, कलश का समावेश है। जंघा सदी है, भद्ररथ स्थित देव कोष्ठों में हिन्दू देवी-देवताओं का प्रदर्शन है। तीन सादे बंधनों युक्त खुरछाद्य के ऊपर शिखर है। त्रिअंडक शिखर के मध्य चौत्यालंकरण भी उपस्थित है। अनेक मन्दिरों के आमलक एवं शिखर ध्वस्त हो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

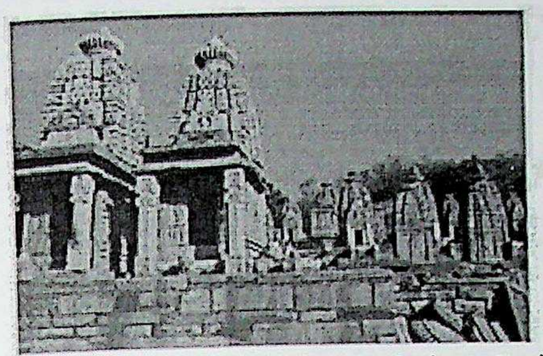

चित्र संख्या 1.
बटेश्वर मन्दिर समूह

बटेश्वर के मन्दिरों में हमें छोटे से बड़े आकार के मन्दिरों के प्रमाण देखने का मिलते हैं। बड़े मन्दिरों में नागर शैली के कुछ अवयव देखने को मिलते इनकी स्थापत्य सम्बन्धी विकास की परिणति मुरैना जनपद में सिहोनियां के ककनमठ मन्दिर में देखने को मिलती है। जिसमें नागर शैली की उत्कृष्ट विशेषताओं को देखा जा सकता है। कच्छपघात युगीन कला के प्रतिनिधि के रूप में ककनमठ मन्दिर विद्यमान है। यद्यपि मन्दिर आज जीर्णावस्था में स्थित तथापि मंदिर स्थापत्य सम्बन्धी अवयवों को इसमें देखा जा सकता है। इसका निर्माण 1044 ई. में राजा कीर्तिराज के द्वारा करवाया गया था। ककनमठ मंदिर एक पूर्वाभिमुख मन्दिर है जो कि ऊंची जगती पर बना है। इसकी जगती की लम्बाई 300 फीट, चौड़ाई 150 फीट और ऊंचाई 12 फीट है। जगती पूर्व दिशा में नंदी मण्डप का निर्माण किया गया था। मंदिर में अर्द्धमण्डप, मुखमण्डप, महामण्डप, अंतराल एवं गर्भगृह हैं। जगती पर खुर, कुम्भ, कलश, ...का, तालपत्र, कपोतिका, बसंतपट्टिका एवं पर्णबन्ध युक्त हैं। जगती की विशाल रथिकाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का अंकन किया गया मूल प्रासाद में वेदिबंध पीठ की भांति है। इसे खुर, अंतरपत्र, पद्मपत्र युक्त जांग्यकुम्भ, कलश, तालपत्र, पर्णबंध व कपोतिका से अलंकृत किया गया है। ...का के ऊपरमण्डप के आसनपट्ट व कक्षासन का निर्माण है। आसनपट्ट के ऊपर भद्रक स्तम्भ का निर्माण किया गया है। धरणी का आश्रय देते मण्डप स्तम्भ अर्द्धपद्म, कीर्तिमुख, घटपल्लव, पट्टिका एवं अलंकृत कोष्ठ से युक्त है। मण्डप के दोनों पार्श्व में सम्मुख मुख चतुष्की एवं भद्र मण्डप जोड़ने से ...का आकार महामण्डप का प्रतीत होता है। यह चारों आरे से खुला है। महामण्डप 50 फीट ऊंचा, 50 फीट लम्बा एवं 50 फीट ऊंचा है। महामण्डप का ...ण 44 स्तम्भों पर किया गया है। ये स्तम्भ भव्य, सुन्दर एवं अलंकृत हैं। मन्दिर का प्रदक्षिणा पथ खुला है, यह खजुराहो के मन्दिरों से भिन्न है। खजुराहो मन्दिरों के प्रदक्षिणा पथ बन्द हैं। गर्भगृह की बाह्य भित्तियों पर सर्वत्र विभिन्न अष्टदिक्पाल, सप्तमातृका, सुर-संदरी, देवी-देवताओं, व्याल प्रतिमाओं, स्वतंत्र ...-पुरुष प्रतिमाओं का अंकन किया गया है, जबकि गर्भगृह की आंतिरिक भित्तियां पूर्ण रूप से सपाट एवं सादा हैं। इनमें किसी प्रकार का कोई भी अलंकरण ...त नहीं होता है। गर्भगृह की लम्बाई 13 फीट, चौड़ाई 13 फीट और ऊंचाई 20 फीट है। गर्भगृह की द्वारशाखा पर गंगा एवं यमुना के साथ-साथ अनेक ...यों की प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण की गई हैं। वर्तमान में मंदिर का शिखर जीर्णावस्था में है। इसकी ऊंचाई लगभग 100 फीट थी। मन्दिर का महामण्डप द्वितलीय जिसके शिखर पर भी आमलक एवं कलश की स्थापना की गई थी। प्रतीत होता है कि यह खजुराहो के कंदरिया महादेव मन्दिर के समान बढ़ते शिखर पद्धति पर बनाया गया देवालय था।

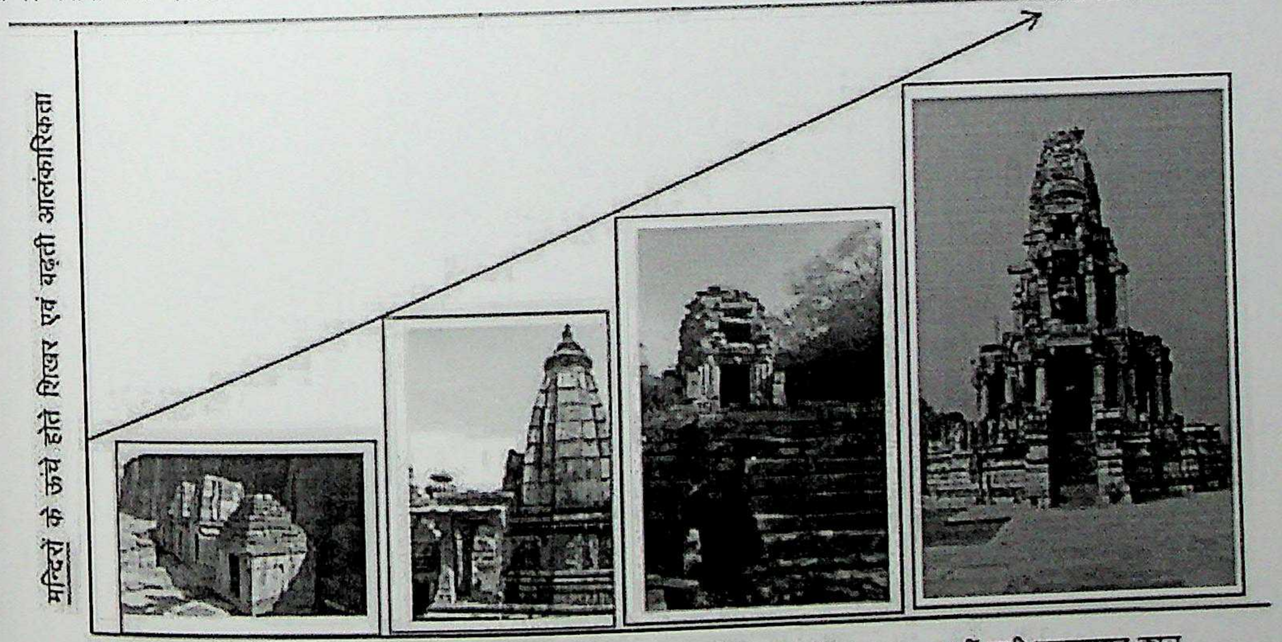

7–8वीं सदी प्रतिहारकाल
नरेसर मन्दिर समूह

8–10वीं सदी प्रतीहारकाल
बटेश्वर मन्दिर समूह

9–10वीं सदी प्रतीहारकाल
बटेश्वर मन्दिर समूह

11वीं सदी कच्छपघात काल
ककनमठ मन्दिर

चित्र सं. 2– मुरैना में विभिन्न कालों में निर्मित मन्दिर एवं उनकी भव्यता

मुरैना जनपद मे बढ़ते कालक्रम के साथ जिन मन्दिरों का निर्माण किया गया वे वास्तव में मन्दिर स्थापत्य सम्बन्धी बढ़ती तकनीकि, कला एवं जानकारी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। (चित्र संख्या 2) मन्दिर स्थापत्य के आरम्भिक चरण को नरेसर के मन्दिरों (7-9वीं सदी) में देखा जा सकता है, जो अत्यन्त साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से बनाये गये हैं। उनके बाद अस्तित्व में आये बटेश्वर के मन्दिर (8-10 वीं सदी) समूह में गोपाद्रि शैली, फासनां शैली एवं पंचायतन शैली के साथ-साथ विख्यात भव्य नागर शैली के प्रारम्भिक दर्शन होने लगते हैं। ऊंची जगती, पूर्ण शिखर, अलंकृत रथिकाओं एवं द्वारशाखाओं के दर्शन यहां के मन्दिरों में भलिभांति होते हैं। इसके बाद 11वीं शताब्दी में निर्मित ककनमठ मन्दिर में नागर शैली की भव्यता को पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। जिसमें वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में बताई गई मूल से शिखर तक की समस्त विशेषताओं को देखा जा सकता है। इस प्रकार मुरैना में मन्दिरों में नागर शैली की विकासयात्रा के क्रमवद्ध चरणों के दर्शन होते है।

सन्दर्भ

1. उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला का इतिहास, किताब महल, नई दिल्ली, 1981, पृ. 98
2. बैनर्जी, राखालदास, द एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस, 1933, पृ. 148
3. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, 1972, पृ0 204
4. वाजपेयी, कृष्णदत्त, भारतीय वास्तुकला का इतिहास, लखनऊ, 1972, पृ0 105
5. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ नॉर्थ इण्डिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, न्यू देहली, 1969, पृ. 21
6. त्रिवेदी, सुधीर कुमार, मध्य भारत की प्रतीहारकालीन कला एवं स्थापत्य, पृ. 45
7. वही, पृ. 47

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indian Council of Social Science Research

असतो मा सद्गमय

On

Social Media : Society and Culture

(04th December 2021)

Organised By

Department of History, Harsh Vidya Mandir (P.G.) College, Raisi, Haridwar

(Uttarakhand Government Aided College)

Sponsored By

Indian Council of Social Science Research (ICSSR), New Delhi

Certificate

This is to certify that Dr/Sri/Ms GAURAV SINGH of Gurukul Kangri Deemed to be University, Haridwar has attended/presented a Research Paper (Oral/ Poster) entitled "मुरैना स्थित बटेश्वर मन्दिर समूह का कलात्मक वैभव" during the National Seminar on "**Social Media : Society and Culture**" held on 04th December 2021 at Harsh Vidya Mandir (P.G) College, Raisi, Haridwar, Uttarakhand.

Dr. Ranvir Singh
Organising Secretary

Dr. Prashant Kumar
Convener

Dr. Rajesh Chandra Paliwal
Principal

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

NATIONAL CONFERENCE
ON
"SCIENCE & TECHNOLOGY : RURAL DEVELOPMENT"

February 15-16, 2020

Organized by

The Indian Science Congress Association:Haridwar Chapter

Hosted by

Department of Chemistry and Department of Physics
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Certificate

This is to certify that Prof. /Dr. /Mr./Ms. गौरव सिंह *of* गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखण्ड *has Participated/ Presented a Paper (Oral/ Poster)/ Invited lecture/ Key-Note Address/ Plenary Lecture/ Chaired Technical Session entitled* मुरैना जनपद के हिन्दू देवालयों का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व *in the National Conference on "Science & Technology for: Rural Development" held at Department of Chemistry and Department of Physics, Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar on February 15-16, 2020.*

(Prof. R.D. Kaushik)
Conference Chair

(Prof. L.P. Purohit)
Convener

(Dr. Jaspal Singh)
Organizing Secretary

The Indian Science Congress Association ... Chapter

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar